वर्ष: 44, अंक: 1, जनवरी-फरवरी 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

विदेश मंत्रालय व भारतीय दूतावासों और कार्यालयों द्वारा 10 जनवरी 2021 को विश्व हिन्दी दिवस के रूप में मनाए जाने के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई।

विश्व पटल पर भारत की मजबूत पहचान के साथ हिन्दी ने निरंतर प्रगति की है, और आज यह विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में शामिल है।

भारत भूमि अनेक संस्कृतियों, भाषाओं व बोलियों की धरा रही है। यह गर्व का विषय है कि यहां पुष्पित-पल्लवित कला व ज्ञान से संपूर्ण मानवता को लाभ हुआ है। विविधिता में एकता की हमारी परंपरा को हिन्दी भाषा ने सतत् समृद्ध किया है।

हिन्दी भाषा की सहजता इसे विशिष्ट बनाती है। हम दुनिया के किसी भी कोने में हों, जब हमारे कानों में कहीं से हिन्दी के शब्द पड़ते हैं तो एक विशेष स्नेह का भाव हमारे मन में आता है।

तेजी से बदलते विश्व में हिन्दी पारंपरिक के साथ ही डिजिटल माध्यम से अधिकाधिक लोगों तक प्रभावी रूप से पहुंच रही है। कोरोना महामारी के दौरान लोगों तक शीघ्रता से जानकारियां पहुंचानी हों या शिक्षण, प्रशिक्षण, कौशल और व्यवसाय से जुड़े कार्य हों, हिंदी की सरलता और व्यापकता को सभी ने एक नए सिरे से अनुभव किया है।

अपनी भाषा को हम आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाते हुए, इसके अधिकतकम प्रयोग को सुनिश्चित करके इसे आगे बढ़ा सकते हैं। मुझे विश्वास है कि देश-विदेश में रह रहे सभी हिन्दी प्रेमी इसके व्यापक प्रचार-प्रसार और इससे अधिकाधिक लोगों को जोड़ने के लिए लगातार कार्य करते रहेंगे।

विश्व हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में देश-विदेश में आयोजित किए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों के सफल आयोजन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
पौष 17, शक संवत् 1942
07 जनवरी, 2021

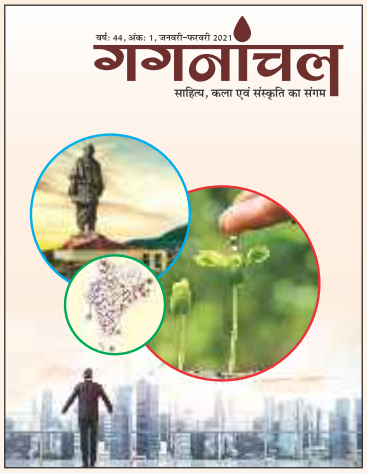

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 44, अंक: 1, जनवरी-फरवरी 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

तवांग की यात्रा

आत्मनिर्भर भारत के लिए

याददाश्त वापस लौट रही है

पांडेय जी और उनका छज्जा

जेल में संगीत, संवाद और मीडिया

भारतीय संस्कृति, मूल्यबोध एवं विश्व मानवता

मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य

हिंदी साहित्य के फलक पर घासलेटी आंदोलन की हलचल

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 44, अंक 1, जनवरी-फरवरी 2021

प्रकाशकीय

3 **नया वर्ष, नई उम्मीद, नई दुनिया**
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 **संस्कृति : मानसिक एवं मानवीय विस्तार**
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

7 **केरल : संस्कृति और साहित्य की समृद्ध परंपरा**
धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

जीवन-दर्शन

11 **जीवन के लिए चाहिए हरित मानसिकता**
प्रो. गिरीश्वर मिश्र

जेल-साहित्य

13 **जेल में संगीत, संवाद और मीडिया**
डॉ. वर्तिका नन्दा

कथा-सागर

15 **याददाश्त वापस लौट रही है**
अलका सिन्हा

17 **घात-प्रतिघात**
प्रभा ललित सिंह

19 **किधर**
जय वर्मा (इंग्लैंड)

सांस्कृतिक-विरासत

35 **भारतीय संस्कृति, मूल्यबोध एवं विश्व मानवता**
प्रियंका यादव

दृष्टि-सृष्टि

38 **हिंदी साहित्य के फलक पर घासलेटी आंदोलन की हलचल**
डॉ. कुमुद शर्मा

चिंतन-मंथन

43 **मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य**
डॉ. नूतन पाण्डेय

48 **21वीं सदी के कवितामयी दो दशक**
डॉ. रचना बिमल

शोध-संसार

54 **मानवीय मूल्यों का विघटन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध**
नेहा चतुर्वेदी

59 **नरेन्द्र कोहली कृत अभ्युदय का वस्तु विन्यास**
कीर्ति त्रिपाठी

साहित्य-वैविध्य

63 **पर्यावरण-चिंता, भूमंडलीकरण और हिंदी कविता**
डॉ. नीरज

यात्रा-संस्मरण

68 **तवांग की यात्रा**
विरेन्द्र कुमार यादव

व्यंग्य-वीथिका

71 **पांडेय जी और उनका छज्जा**
लालित्य ललित

73 **रामबाबू और घटते पानी की मछली**
अनीता यादव

लघुकथा-सरोवर

75 बलराम अग्रवाल

पुस्तक-समीक्षा

77 **चक्रव्यूह के घेरे में**
सुमन कुमारी

79 **पीठ पर रोशनी : जनपक्षधरता और प्रेम को अभिव्यक्त करती कविताएँ**
डॉ. नीलोत्पल रमेश

वोकल फॉर लोकन

81 **आत्मनिर्भर भारत के लिए**
संजय कुमार मिश्र

योग एवं उपचार

84 **थायरायड : अभ्यास एवं औषधि**
विराज आर्य

काव्य-मधुबन

85 उषा उपाध्याय
86 माधव कौशिक
87 विजय स्वर्णकार
88 क्षमा पाण्डेय
89 आरती सिंह 'एकता'
90 कोमल वर्मा

हिंदी-संसार

91 **विश्व हिंदी दिवस : एक दृष्टि**
नेहा गौड़

92 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

प्रकाशकीय

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

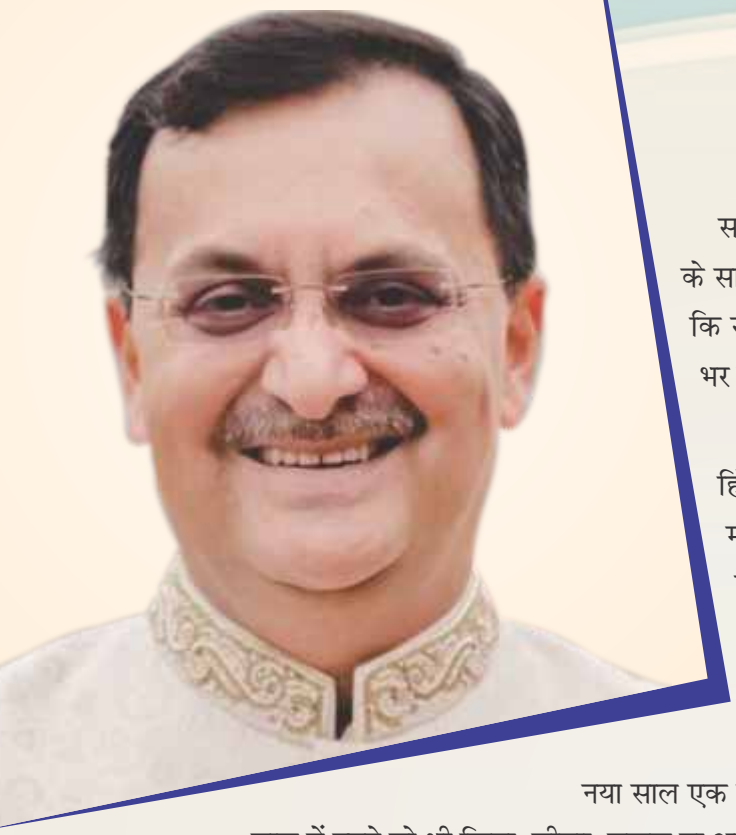

नया वर्ष, नई उम्मीद, नई दुनिया

साल का शुभारंभ है। इसलिए नई उम्मीदें, नए सपने, नए लक्ष्य, नए विचारों के साथ इसका स्वागत किया जाना चाहिए। नया साल मनाने के पीछे मान्यता है कि साल का पहला दिन अगर उत्साह और खुशी के साथ मनाया जाए तो साल भर इसी उत्साह और खुशियों के साथ ही बीतेगा।

हालाँकि हिंदू पंचांग के अनुसार नया साल 1 जनवरी से शुरू नहीं होता। हिंदू नववर्ष का आरंभ गुड़ी पड़वा से होता है। लेकिन 1 जनवरी को नववर्ष मनाने से विश्व बंधुत्व की भावना उत्पन्न होती है और यही भावना भारतीय सनातन परंपरा वसुधैव कुटुंबकम को परिभाषित करती है। 31 दिसंबर की रात से ही कई स्थानों पर अलग-अलग समूहों में इकट्ठा होकर लोग नए साल का उत्सव मनाना शुरू कर देते हैं और रात 12 बजते ही सभी एक दूसरे को नए साल की शुभकामनाएँ देते हैं।

नया साल एक नई शुरूआत को दर्शाता है और हमेशा आगे बढ़ने की सीख देता है। पुराने साल में हमने जो भी किया, सीखा, सफल या असफल हुए उससे सीख लेकर, एक नई उम्मीद के साथ आगे बढ़ना चाहिए। जिस प्रकार हम पुराने साल के समाप्त होने पर दुखी नहीं होते बल्कि नए साल का स्वागत बड़े उत्साह और खुशी के साथ करते हैं, उसी तरह जीवन में भी बीते हुए समय को लेकर हमें दुखी नहीं होना चाहिए। जो बीत गया उसके बारे में सोचने की अपेक्षा आने वाले अवसरों का स्वागत करें और उनके माध्यम से जीवन को बेहतर बनाने की कोशिश करें। वर्ष 2020 कोरोना काल के रूप में जाना जाएगा। इस वर्ष आपदा से घिरी मनुष्यता पहले से और अधिक समृद्ध और बेहतर हुई है। ऐसे में नया वर्ष इस आपदा से बाहर निकलने और नई रोशनी वाला सिद्ध हो, मेरी यही कामना है।

10 जनवरी का दिन पूरी दुनिया में विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसका मकसद विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जागरुकता पैदा करना और हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करना है। इस दिन विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में विशेष कार्यक्रम होते हैं, साथ ही देश के सरकारी दफ्तरों में हिंदी में व्याख्यान आदि आयोजित किए जाते हैं।

लंबे संघर्ष के बाद भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों ने अंततः 15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी दिलाई। आजादी के लगभग ढाई साल बाद यानी कि 26 जनवरी 1950 को भारत का अपना संविधान लागू हुआ और भारत ने खुद को एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में घोषित कर दिया। भारत के लिए तैयार किए गए संविधान को हमारी संसद ने लगभग 2 साल 11 महीने और 18 दिनों में पूरा कर 26 जनवरी 1950 को पारित किया। इस तरह भारत ने खुद को एक संप्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया। इसके बाद 26 जनवरी को भारत के लोगों द्वारा गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

नववर्ष के इस अवसर पर मैं गगनांचल से जुड़े सभी लेखकों का आभार प्रकट करता हूँ और विश्व हिंदी दिवस एवं गणतंत्र दिवस की शुभकामनाओं के साथ आप सबका अभिनंदन करता हूँ।

दिनेश कुमार पटनायक

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

संस्कृति : मानसिक और मानवीय विस्तार

"वसुधैव कुटुंबकम्" भारतीय संस्कृति की मूल भावना है। किसी देश की संस्कृति को व्यक्त करने के लिए धर्म, दार्शनिक चिंतन, साहित्य, संगीत, कला एवं शासन-प्रबंध की व्याख्या अत्यंत आवश्यक है। मनुष्य कैसे अपने धर्म का विकास करता है, किन-किन मूल बिंदुओं पर चिंतन करके अपने दर्शन-शास्त्र को समृद्ध करता है। साहित्य, संगीत और कला का कैसे सृजन एवं विकास करता है। अपने समाज एवं राष्ट्र के भविष्य को सर्व लोकहितकारी एवं संतोषप्रद बनाने के लिए जिन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सामरिक संस्थाओं व प्रथाओं को वह विकसित करता है उन सबके आकलन के पश्चात जो समावेशी निष्कर्ष निकलता है वही उस राष्ट्र की संस्कृति का आधार होता है। इन सभी बिंदुओं पर अगर हम विचार करें तो एक विचार सर्वमान्य रूप से निकल कर आता है कि इस सारे उपक्रम की अभिव्यक्ति कैसे हो? इनका संप्रेषण कैसे हो? अपनी बात अर्थात विचार, दर्शन, कला, साहित्य, संगीत, प्रबंधन आदि-आदि को अभिव्यक्त करने के लिए अथवा संप्रेषित करने के लिए एक सहज, सरल एवं वैज्ञानिक भाषा की आवश्यकता होती है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि प्राचीन काल से ही भारतीय भाषाएँ अत्यंत समृद्ध रहीं तथा अपने विकास की यात्रा के क्रम को बनाए रखा। भारतीय संस्कृति लोक-भाषा, लोक गीतों-कथाओं के माध्यम से देशांतरों की यात्रा करती रही और प्रचार-प्रसार पाती रहीं। उदाहरण स्वरूप रामचरित मानस को ही ले लें। तुलसी के रामचरित मानस ने लोक-साहित्य को माध्यम बनाकर यात्रा की और विश्व का कंठाहार बन गयी। परंतु आज मैं अपनी बात को हिंदी तक ही सीमित रखूँगा।

प्रकृति संस्कृति का मूलाधार है। प्रकृति तीन गुणों से बनती है। सत्व, रज एवं तम। भारत सात्विक गुण भावना प्रधान देश है, अत: यहाँ की संस्कृति उच्चतम एवं सुखमय है। इसी सात्विक गुण के कारण भारत में अनंत काल से आध्यात्मिकता का प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। उपनिषद की अवतारणा इस देश में हुई है। यह ऋषि मुनियों की धर्मभूमि है।

संस्कृति अपने आप में अत्यंत गंभीर और व्यापक शब्द है। इसको व्यक्त करना इतना सरल नहीं है। संस्कृति का अर्थ एक वाक्य में कहें तो "समय के सापेक्ष जो भी सकारात्मक सीख अथवा शोध कर भविष्य के लिए संग्रहित करते हैं उसे हम संस्कृति कहते हैं।" संस्कृति यानी 'समस्त सीखा हुआ व्यवहार', अर्थात वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति शब्द परंपरा का पर्याय है। शरीर और आत्मा की भाँति सभ्यता एवं संस्कृति जीवन के दो भिन्न आचरण को व्यक्त करती है। सभ्यता जीवन का रूप है। संस्कृति उसका सौंदर्य है।

सृष्टि ने मनुष्य जाति को दो महान चमत्कारी शक्तियाँ प्रदान की है-प्रथम विचार एवं द्वितीय संवेदना। इनके माध्यम से मनुष्यों में समझ, अनुभव, सुख-दु:ख, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, यश-अपयश तथा जीवन-आनंद का ज्ञान हो सका। विचार ही वह महान साधन है जो एक मनुष्य को दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा अध्यात्मवेत्ता बनाकर उसे महानता की श्रेणी में

प्रतिस्थापित एवं प्रतिष्ठित करता है। "राम सृष्टि के विचार के आविष्कारक रहे हैं। विचार ही जन्म है, विचार ही जीवन है और विचार ही मृत्यु है।"

संस्कृति ही किसी राष्ट्र या समाज की अमूल्य निधि होती है। युग-युगांतर के अनवरत अध्यवसाय, प्रयोग, अनुभवों का कोष है संस्कृति और राम उसके नायक।

संस्कृति किसी एक व्यक्ति के प्रयत्नों का परिणाम नहीं है या किसी एक युग की ही उपज नहीं होती है। मनुष्य और परिवार, काल कवलित होते चले जाते हैं। समाज बनते हैं, बिगड़ते हैं किंतु संस्कृति न तो एक युग में बन जाती है और न बिगड़ती ही है। वह युगों-युगों में होने वाले उत्थान, पतन आघात, अवरोधों का इतिहास होता है।

संस्कृति की नींव

संस्कृति ही किसी देश, समाज या जाति का प्राण है। वहीं से इन्हें जीवन मिलता है। किसी भी देश की सामाजिक प्रथाएँ, व्यवहार, आचार-विचार, पर्व, त्योहार, सामुदायिक जीवन का संपूर्ण ढाँचा ही संस्कृति की नींव पर खड़ा रहता है। इसलिए संस्कृति की अजस्र धारा जिस दिन टूट जाती है, उसी दिन से उस समाज का बाह्य ढाँचा भी बदल जाता है। संस्कृति के नष्ट होते ही उस सभ्यता का भवन भी लड़खड़ा कर गिर जाता है।

प्रश्न यह है कि संस्कृति बचती कैसे है?

संस्कृति की अमरता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह कितनी विकासोन्मुखी है। स्मरण रहे प्राचीन परंपराओं, रूढ़िवाद या बँधे-बँधाए नियमों को संस्कृति नहीं माना जा सकता। मेरी दृष्टि में राम से विकासोन्मुखी कोई और विचारधारा हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति एक निरंतर बहने वाली विकासोन्मुखी धारा है जो प्रत्येक युग के सीमा पर अपनी स्थिति में परिवर्तन कर लेती है और कालसापेक्ष स्वयं को सिद्ध कर देती है। जिस संस्कृति में युग की मांग के अनुसार विकसित और रूपांतरित होने की क्षमता नहीं होती वह संस्कृति पिछड़ जाती है और एक दिन नष्ट हो जाती है।

यहाँ यह बात बहुत गौर करने वाली है कि संस्कृति का एक समान पैटर्न नहीं है। यह उन सभी पर समान प्रभाव डालती है जो इसके संपर्क में हैं। यह ध्यान में रखना अनिवार्य है कि एक व्यक्ति का सामाजिक जोखिम संस्कृति में निहित संस्कृति में नहीं बल्कि उस विशेष समूहों की संस्कृतियों के लिए है, जिसमें वह रहता है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि बड़े समाज में, प्रत्येक व्यक्ति के कई समूह होते हैं। उदाहरण के लिए, हम भारतीय समाज के सदस्य हैं और इसलिए भारतीय संस्कृति में हिस्सा लेते हैं, लेकिन हम बड़े समाज के भीतर छोटे जनसंख्या खंड के सदस्य भी हैं। हमारे क्षेत्रीय समूह, धार्मिक समूह, राष्ट्रीय समूह, नस्लीय समूह, व्यावसायिक समूह, वर्ग समूह, जाति समूह, शहरी समूह, ग्रामीण समूह इत्यादि ऐसे जनसंख्या खंडों का प्रतिनिधित्व करते हैं और ये अलग-अलग हो सकते हैं।

इस तरह के प्रत्येक समूह की अपनी संस्कृति है। ऐसी संस्कृति को 'उप-संस्कृति' के रूप में जाना जाता है। ये उप-संस्कृतियाँ राष्ट्रीय संस्कृति के हिस्से हैं। सुथरलैंड, वुडवर्ड और मैक्सवेल के अनुसार, मुख्य उप-संस्कृतियाँ हैं- क्षेत्रीय उप-संस्कृति, जातीय या राष्ट्रीय उप-संस्कृति, शहरी और ग्रामीण उप-संस्कृति, वर्ग उप-संस्कृति, व्यवसायिक उप-संस्कृति और धार्मिक उप-संस्कृति। जब समग्र पहचान बनाने में ये सफल होती हैं तो एक वृहद संस्कृति बनती है। इसलिए "संस्कृति भौतिक नहीं होती है, यह एक मानसिक और मानवीय विस्तार है।"

पश्चिम ने हमारे योग को उधार लिया है, हरे राम हरे कृष्ण और आयुर्वेद को अपनाया, तो क्या उनकी संस्कृति खत्म हो रही है? नहीं, ऐसा नहीं है। दरअसल, जब एक संस्कृति किसी दूसरी संस्कृति से मिलती है तो मूल संस्कृति में और गुणात्मक सुधार हो जाता है। इसलिए यह जरूरी है कि आप सांस्कृतिक परिवर्तन और परावर्तन के अंतर को समझें। दुनिया एक वैश्विक गाँव में परिवर्तित होती जा रही है, इसलिए हमें इसका आस्वादन करना चाहिए और सार्थक परिवर्तन में सहयोगी बनना चाहिए।

हमारी संस्कृति हो या विश्व के किसी अन्य देश की संस्कृति, इसे केवल जुड़कर ही नहीं, बल्कि अन्य संस्कृतियों से जोड़ कर देखना होगा। वास्तव में हमारी संस्कृति के सनातन होने की पहचान और सांस्कृतिक-प्राण यही है। इसलिए संस्कृति को समझने के लिए हमें ज्ञान चाहिए।

साहित्य लोकरंजन से लोकमंगल की यात्रा है। संस्कृति लोक मंगल के मार्ग को प्रशस्त करने का सबसे सशक्त माध्यम।"

आइये कुछ स्थाई और उन मुद्दों की और चर्चा कर लें जो पिछले कई दशकों से निरंतर चर्चा में बने हुए हैं, मसलन भाषावाद, उदारवाद और अंग्रेजी। ये सभी बड़े मुद्दे हैं। जिन पर रोज आपको कोई न कोई चर्चा-परिचर्चा सुनने-पढ़ने को मिल जाएगी, परंतु समाधान नहीं। विचारकों की चिंता की लकीरें गहराती जाती हैं और असली मुद्दे अंधी गलियों में भटकने को मजबूर हो जाते हैं। चूँकि वर्षों से चल रही निष्कर्ष रहित चर्चा के कारण आम जनमानस इन मुद्दों के प्रति लापरवाह एवं अचेतन होता जा रहा है। ऐसा नहीं है कि भारत की जनता को आजादी का अर्थ नहीं मालूम, भाषा के महत्त्व को नहीं समझती परंतु आम जनमानस उस अघोषित अभियान की चपेट में आ चुका है जो आजादी के दशकों पहले से शुरू हो चुकी थी और आजादी के दशकों बाद भी निंरतर जारी है। मेरा तात्पर्य यह है कि इस देश पर होने वाले भाषाई, सांस्कृतिक आक्रमणों, उनके कृत्यों, विध्वंस को एक खास वर्ग द्वारा जायज ठहराने का सिलसिला आज भी जारी है। उनके आक्रमणों को 'मंगलाचरण' सिद्ध करने की होड़ सी मची है। कुतर्कों को तर्क का अमली जामा पहनाकर सब ठीक है, यही समय की मांग है आदि-आदि से भरमाया जाता है। यही कारण है कि आम-आदमी यानि साधारण जन-मानस के मन में अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य के प्रति वह अभिरुचि, वह चेतना नहीं दिखाई पड़ती जो होनी चाहिए थी।

भाषा, भूषा, भोजन ये सब विरासत की थाती हैं। यही राह किसी भी राष्ट्र का नैसर्गिक शृंगार होता है, संस्कृति का मूल होता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है पिछले कुछ दशकों से अंग्रेजी के गुणगान में कसीदे पढ़े जा रहे हैं। भारत में अंग्रेज और अंग्रेजी नहीं आती तो इस मुल्क का क्या होता? क्या जागरुकता नहीं आती? भारत आज यहाँ नहीं होता, भारत वहाँ नहीं गया होता आदि-आदि। हमारे यहाँ तो कुछ ऐसे तथाकथित राष्ट्रभक्त नेता भी हुए जो ऑक्सफोर्ड में कह आए कि "आपने हमें एक देश दिया है, एक अर्थतंत्र, भाषा और संस्कार दिया है, आपका बड़ा एहसान है।" सचमुच ऐसे बयानों से सिर शर्म से झुक जाता है। जब राष्ट्र को आजाद कराने के लिए अपना सबकुछ न्योछावार कर देने वाले शहीदों के संस्कार एवं मूल्यों को सरेआम नीलाम किया जाता है।

समय बदलेगा। परिवर्तन संसार का नियम है। लेकिन सिर्फ समय के बदलने से परिवर्तन नहीं आने वाला। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम और आप भी बदलें। अपनी भाषा को अपना संस्कार समझें और उन भाषाओं को जिनके माध्यम से वैश्विक स्तर पर हम मुकाबला करने में सक्षम हों उसे एक संपत्ति के रूप में अपने पास रखें। यानी अपनी नीयत को नियति का शिकार न होने दें। अन्यथा समय हमें कभी क्षमा नहीं करेगा और भारत की गौरवशाली परंपरा आने वाले कुछ ही वर्षों में लुप्त होती नजर आने लगेगी। आइए हम सब मिलकर अपना-अपना धर्म निभाएँ और राष्ट्र-निर्माण के लिए अपना श्रमदान (मानसिक, शारीरिक) दें। यही राष्ट्रशक्ति है। यही नवनिर्माण का नवाचार है।

डॉ. आशीष कंधवे

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

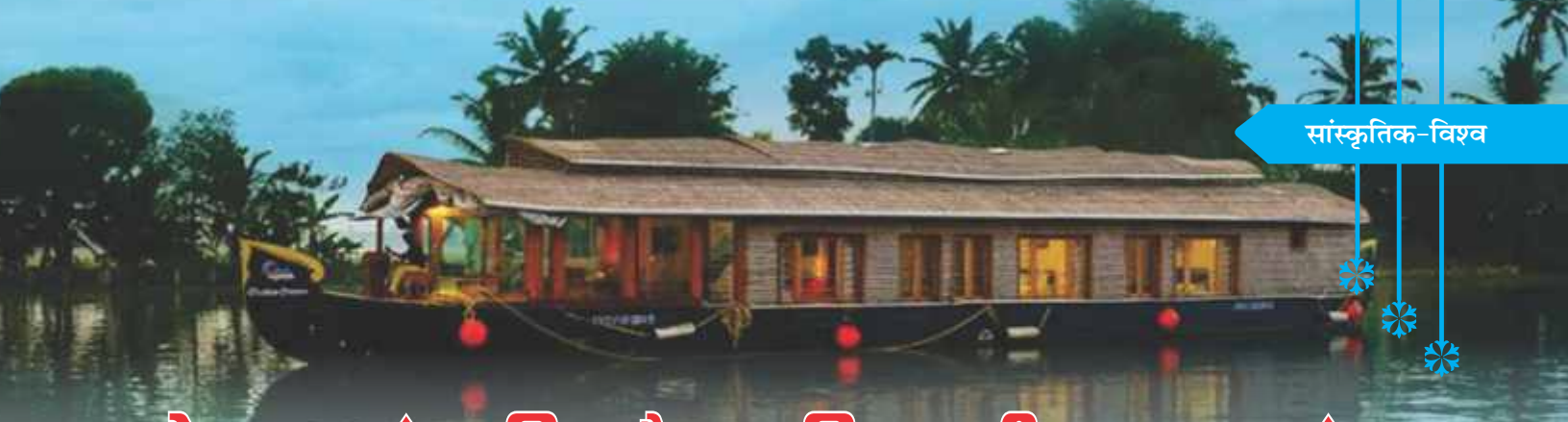

केरल : संस्कृति और साहित्य की समृद्ध परंपरा

— धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

इतिहास लेखन में शिलालेखों को अधिक प्रामाणिक माना जाने लगा और एपिक्स के प्रमाण पर इतिहास लेखकों द्वारा कम ध्यान दिया गया। हालांकि प्राचीन इतिहास लेखन के समय जीवनी और गाथाओं को प्रमाण के रूप में स्वीकार तो किया गया लेकिन इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य छोड़ दिए गए। उनका कालांकन नहीं किया गया। इतिहासकारों ने स्थापना दी कि दक्षिण में नैटिव द्रविड़यन थे और संस्कृत भाषा उत्तर भारत से आई थी जो सप्त ऋषियों में से एक अगत्स्य लेकर आए थे। लोक मान्यता है कि अगत्स्य ऋषि उत्तर भारत से दक्षिण भारत गए। इससे यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि अगत्स्य ऋषि ने उत्तर-दक्षिण को सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का काम किया। इसका उल्लेख 'अगत्स्य संहिता' में मिलता है लेकिन यह ग्रंथ आज तक मूल रूप में नहीं मिला है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में राम सीता और लक्ष्मण को अगत्स्य की महिमा बतलाते हैं।

केरल भारतीय संस्कृति का प्रतिरूप है। भारतीय संस्कृति केरल की आत्मा में बसती है। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता इसकी एकता में है और वैविध्य इसे विशिष्ट बना देता है। यह वैविध्य और विशिष्टता केरल में भी देखने को मिलता है। खान-पान, भाषा, पहनावा, भौगोलिक संरचना आदि वैविध्य मलयाली संस्कृति में विद्यमान है। यहाँ शंकराचार्य के साथ नारायण गुरु की परंपरा विद्यमान है। शंकराचार्य की अगुआई में आठवीं सदी में बहुत बड़ा सांस्कृतिक आंदोलन हुआ। संस्कृत और मलयालम दोनों ही भाषाओं के विद्वान यहाँ आज भी मौजूद हैं। यहाँ वाम और दक्षिण दोनों पंथ को मानने वाले लोग हैं। यह भारत की अपनी विशेषता है जो केरल में भी पाई जाती है। एक तरह से केरल की संस्कृति भारत की संस्कृति का संक्षिप्त प्रतिरूप है।

जन्म और नामकरण :

केरल के नामकरण के मुख्यत: तीन आधार हैं- पौराणिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक। पौराणिक कथाओं के आधार पर केरल को परशुराम के परशु से जन्मा बताया जाता है। कथा प्रचलित है कि जब परशुराम ने संपूर्ण भूमि क्षत्रियों से जीतकर ब्राह्मणों को दान में दे दी तब उनके स्वयं के रहने के लिए कोई जगह नहीं बची। उन्होंने वरुण देवता की उपासना की और उन्हीं के परामर्शानुसार अपना फरसा फेंका। फरसा जहाँ पर जाकर गिरा वह जगह छोड़कर समुद्र पीछे हट गया और वह केरल कहलाया। ऐतिहासिक आधार पर चेरि वंशी राजाओं के नाम पर इसका नाम केरल पड़ा-चेर (चेरि वंशी)+अलम् (प्रदेश)=चेरलम्-चेर वंशी राजाओं का प्रदेश। चेरलम् ही बाद में केरलम् कहलाया। 1 नवंबर 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा मद्रास का कुछ जिला जो मलयालम भाषी था, कोचीन और त्रावणकोण को मिलाकर निवर्तमान केरल राज्य का गठन किया गया। भौगोलिक आधार की बात की जाए तो केरल का मूल नाम केराल (नारियल)+यम् (प्रदेश)=केरालयम् अर्थात् नारियल का प्रदेश। संस्कृत में नारियल के लिए नारिकेल, नारिकेर, नालिकेल जिसका अर्थ है जल में केलि या क्रीड़ा। नारियल वृक्षों की अधिकता, जीवन के सभी क्षेत्रों में इसका महत्त्व होने के कारण इसका नाम केरल पड़ा।

पौराणिक आख्यानों में केरल :

इतिहास लेखन में शिलालेखों को अधिक प्रामाणिक माना जाने लगा और एपिक्स के प्रमाण पर इतिहास लेखकों द्वारा कम ध्यान दिया गया। हालाँकि प्राचीन इतिहास लेखन के समय

जीवनी और गाथाओं को प्रमाण के रूप में स्वीकार तो किया गया लेकिन इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य छोड़ दिए गए। उनका कालांकन नहीं किया गया। इतिहासकारों ने स्थापना दी कि दक्षिण में नैटिव द्रविड़यन थे और संस्कृत भाषा उत्तर भारत से आई थी जो सप्त ऋषियों में से एक अगत्स्य लेकर आए थे। लोक मान्यता है कि अगत्स्य ऋषि उत्तर भारत से दक्षिण भारत गए। इससे यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि अगत्स्य ऋषि ने उत्तर-दक्षिण को सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का काम किया। इसका उल्लेख 'अगत्स्य संहिता' में मिलता है लेकिन यह ग्रंथ आज तक मूल रूप में नहीं मिला है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में राम सीता और लक्ष्मण को अगत्स्य की महिमा बतलाते हैं। लोककथा यह भी है कि वे विन्ध्याचल होते हुए दक्षिण भारत पहुँचे। विन्ध्याचल गर्व से इतना ऊँचा हो गया था कि उस क्षेत्र में सूर्य का प्रकाश आना बन्द हो गया और अंधेरा छा गया। विन्ध्याचल अगत्स्य मुनि का बहुत सम्मान करता था। जब वह अगत्स्य मुनि के सम्मान में नतमस्तक हुआ तो ऋषि श्रेष्ठ विन्ध्याचल को वापस लौटने तक झुके रहने का आदेश देकर दक्षिण में चले गए और विन्ध्याचल आज भी उनके इंतजार में झुका हुआ है।

इस लोककथा को बताने का आशय केवल इतना कहना है कि अगत्स्य ऋषि ने उत्तर-भारत के मध्य सामाजिक-सांस्कृतिक सेतु का काम किया। संपूर्ण भारत में महात्माओं द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान वैदिक काल से होता रहा है। यह कोई नई बात नहीं थी। भारत में ऋषियों का नियम भ्रमण का रहा है। वे चौमासे के अतिरिक्त अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं ठहरते थे। शंकराचार्य जिनका जन्म केरल के कराड़ी गाँव में हुआ था उनके संबंध में प्रचलित है कि-'करतलु भिक्षा तरु-तरु वास' अर्थात् मुट्ठी भर भिक्षा और वृक्ष के नीचे सोना। शंकराचार्य पैदल चलकर चार दिशाओं में चार मठ की स्थापना करते हैं। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान का बेहतरीन उदाहरण है। गौतम बुद्ध भी यही काम डेढ़ हजार वर्ष पूर्व करते हैं। दक्षिण में बुद्ध के प्रतिनिधि बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए गए। यह तथ्य प्रामाणिक है कि समय-समय पर राजाओं ने ब्राह्मणों को जगह-जगह बसाया। उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या बसाया था। भारत में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हमेशा से होता रहा है और उत्तर के लोग दक्षिण में दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत आते-जाते रहे हैं।

नवरत्नों की परंपरा :

नवरत्नों की परंपरा अकबर के यहाँ कोई नई नहीं थी। इससे पहले भी भारत में यह परंपरा विद्यमान थी। इसके सूत्र हमें मानविक्रम के समय से खोजने चाहिए। केरल के राजा मानविक्रम के यहाँ कवि-कलाकार रत्नों की परंपरा थी। मानविक्रम की सभा में अठारह रत्न हुआ करते थे और वे प्रत्येक वर्ष कवि गोष्ठी का आयोजन करते थे। उस समय यह परंपरा डेढ़ सौ वर्षों तक लगातार चलती रही। आज गोष्ठियों का आयोजन कोई नई पहल नहीं है बल्कि यूँ कहना चाहिए कि अब गोष्ठियों का रूप पहले की अपेक्षा संकुचित होता जा रहा है। विरोधाभासों को वहन करने की क्षमता आज की गोष्ठियों में नहीं दिखाई देती जो पहले हुआ करती थी और जिससे नए विचार उत्पन्न होते थे।

व्यापारिक केंद्र :

ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष में भी केरल मसालों का केंद्र माना जाता था। यह अकस्मात् पन्द्रहवीं सदी में नहीं हुआ कि पुर्तगाली/डच ने यहाँ आकर मसालों का व्यापार करना शुरु किया। केरल ईरान, अफगानिस्तान जैसे खाड़ी के देशों में सिंदूर, शीशा, हीरा, सोना, रत्न, मलमल के कपड़े, मसाला आदि का निर्यातक हमेशा से रहा है। आज भी केरल की समृद्धि का कारण इसका अन्य देशों से संबंध है। केरलवासी बहुल संख्या में खाड़ी के देशों में रोजगार के लिए जाते हैं। केरल में नारियल की वृक्षों की अधिकता है और ये वृक्ष गृहस्थों की समृद्धि का आधार है-आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणांश्च धनप्रद:। इससे रस्सी, थैला, पायदान, चटाई, झाड़ू, छप्पर आदि न जाने कितने रोजमर्रा प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ के लोग नारियल का प्रयोग प्राय: सभी व्यंजनों में करते हैं।

त्योहार, वेशभूषा और खानपान :

ओणम केरल का सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार है जो मलयालम के चिंगम माह के ओणम नक्षत्र से शुरू होकर 10 दिन तक विविध प्रकार के कार्यक्रमों के साथ राजा महाबली के स्वागत में मनाया जाता है। मान्यता है कि महाबली वर्ष में एक बार अपनी प्रजा से मिलने के लिए आते हैं और उनके स्वागत के लिए सभी घरों में पूकलम (फूलों की रंगोली) बनाई जाती है। इस अवसर पर केले के पत्तों पर सद्य: (दावत) होती है। इसके साथ ही अराणमुला नौका दौड़ का आयोजन होता है जो केरल की सबसे प्राचीन नौका दौड़ है। मीनम (अप्रैल) माह में 'विषु' त्यौहार

मनाया जाता है। खेतों में उत्पादित खाद्य सामग्री से 'विषुक्कणी' (झाँकी) तैयार की जाती है और घर के सदस्य सुबह उसे देखते हैं। ऐसी मान्यता है कि आने वाले वर्ष का भाग्य इस दर्शन पर निर्भर होता है। यह मलयालम कैलेंडर का प्रथम दिवस अर्थात् नए वर्ष का पहला दिन होता है। इस अवसर पर लोग पटाखे फोड़ते हैं और घर के बड़े-बुजुर्ग द्वारा बच्चों को पैसा देना शुभ माना जाता है। रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर लोग धूमधाम से यह पर्व मनाते हैं।

केरल के पुरुष मुंड और शर्ट पहनते हैं जो यहाँ की पारंपरिक पोशाक है। घर पर लुंगी पहनी जाती है जो कमर से लेकर टखने तक होती है। महिलाओं के लिए गोल्डेन बार्डर वाली सफेद साड़ी और ब्लाउज पारंपरिक पोशाक है। महिलाएँ कांचीपुरम रेशमी वस्त्र भी धारण करती हैं। लड़कियाँ 'सेट पावड़ा' पहनती हैं। घर के बूढ़े लोगों में पुरुष मुंड एवं धोती पहनते हैं और स्त्रियों के लिए मुंड और नीरियाथुम वेशभूषा है।

भोजन के लिए खेती में उत्पादित चीजें जैसे चावल, सब्जियाँ, नारियल आदि से तैयार खाद्य पदार्थ केले के पत्ते पर खाना एक पारंपरिक शैली है। नाश्ते में कुछ पुट्ट और डोसा लेते हैं जो चावल से बनाया जाता है। पायसम (खीर) सभी त्योहार के अवसर पर पारंपरिक भोजन है जो टूटे चावल, इलायची, दूध आदि के द्वारा बनाया जाता है। इसके साथ लोग खाने में मछली का प्रयोग भी करते हैं।

मलयालम भाषा का विकास :

संस्कृत और द्रविड़ भाषा का विकास दक्षिण में समानांतर हुआ। संस्कृत आर्यन भाषा थी। आर्य भाषा और संस्कृति बहुत दूर तक फैली और जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिकन ये सभी आर्यन शाखाएँ हैं। रामविलास शर्मा इस स्थापना का पूर्णत: खण्डन करते हैं कि आर्यन विदेशी थे। आर्यन संस्कृति का उत्पत्ति स्थल भारत रहा। वे तर्क देते हैं कि अपनाई गई भाषा का उच्चारण के माध्यम से पता चल जाता है जो उसकी उत्पत्ति और स्वीकार्यता में अंतर दर्शाता है। संस्कृत और द्रविड़ दोनों भाषाओं का उद्गम समानांतर ही हुआ और द्रविड़ से ही तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम का विकास हुआ। केरल का अरब सागर का मलाबार हिस्सा मलयालम भाषी है और यह भाषा संस्कृत की भांति ही समृद्धशाली है। समृद्धि से आशय साहित्य और सांस्कृतिक वैभव से है। यह प्रागैतिहासिक काल की भाषा है। उच्चारण के सबसे बड़े व्याकरणाचार्य दक्षिण भारत में हुए जिनका महत्त्व पाणिनी से कहीं ज्यादा था। यास्क से वैदिक/संस्कृत शब्दों को समझने के लिए 'निघण्टु' लिखा। इसकी व्याख्या करने वाले रचनाकार केरल के ही मेल पत्तूर नारायण भट्टतिरि थे जिसकी रचना 'प्रक्रिया सर्वस्व' है। कहने का आशय यह है कि द्रविड़ या मलयालम भाषा का संस्कृतकरण नहीं किया गया। संस्कृत के बहुतायत शब्द मलयालम में हैं लेकिन इसके आधार पर यह नहीं कहा जाता सकता कि मलयालम का विकास संस्कृत भाषा से हुआ है। मलयालम, तमिल, तेलुगू और कन्नड़ का विकास साथ-साथ हुआ इसीलिए ये भाषाएँ आपस में निकट का संबंध रखने के साथ ही एक-दूसरे से प्रभावित भी हैं।

मलयालम साहित्य :

मलयालम साहित्य के प्रारंभिक छह सौ वर्षों में इसके नैटिव द्रविड़यन में पट्टू (लोकगीत) लोकप्रिय था। पट्टू का विषय फसल, कृषि, जाति, सर्प झाड़ने का मंत्र, त्यौहार, जानवर, धरती गान आदि थे। मलयालम साहित्य पर दृष्टि डाली जाए तो चीरामन ने 'रामचरितम्' नामक ग्रंथ की रचना की जो इसका प्राचीनतम ग्रंथ है और इसमें 1814 छंद हैं। चीरामन का पूरा नाम वीरराम वर्मन था जो 1195 ई. में त्रावणकोर का राजा था। मलयालम में एक अन्य काव्यधारा बहुत प्रचलित हुई जिसे 'मणिप्रवालम्' कहा जाता है। अन्य मलयालम काव्यधाराओं की अपेक्षा 'मणिप्रवालम्' में संस्कृत शब्दों की अधिकता है। इस काव्यधारा में सैकड़ों ग्रंथों का सृजन हुआ जो छायावाद की भाँति रोमैंटिक हैं और जिसमें अधिकांश संदेशकाव्य थे। इतिहासकारों की यह अवधारणा पूरी तरह निराधार है कि उत्तर भारत में पितृसत्तात्मक समाज था और दक्षिण भारत में मातृ सत्तात्मक। 'मणिप्रवालम्' और दक्षिण के राजवंश इस बात को सिद्ध करते हैं। कुछ राजवंशों में पितृसत्तात्मक के समानांतर मातृसत्तात्मक समाज था। दक्षिण में उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक रानियों के हाथ में बागडोर रही लेकिन इसका आशय यह कदापि नहीं कि पूरा समाज मातृसत्तात्मक था। चेरि, चोल और पाण्ड्य ये तीन प्रकार के शासक यहाँ रहे। पट्टू जनसाधारण का गीत था और मणिप्रवालम् उच्च वर्ग में प्रचलित था। इसको लिखने वालों में ज्यादातर लम्बूदरी ब्राह्मण थे। मणिप्रवालम् का ही नाट्य रूप 'ऊथू' कहलाया जिसे सबसे पहले कोडियट्टम ने दिया। नवीं सदी में आलवारों में केरल में ही राजा कुलशेखर हुए जो प्रत्येक वर्ष कवि सम्मेलन करवाया करते थे और जो विजयी होता था उसे 'भट्ट' उपाधि देते थे। यह परंपरा डेढ़ सौ वर्षों तक निरंतर चलती रही। यह बहुत बड़ा सांस्कृतिक कार्यक्रम होता है। कवि

सम्मेलन की परंपरा कोई आज की परंपरा नहीं है। मणिप्रवालम् के अंतर्गत तेरहवीं सदी में 'वैशेषिक तंत्र' लिखा गया। 'वैशेषिक तंत्र' में संस्कृत मीटर का ध्यान रखा गया जो देवदासी परंपरा से संबंधित थी। इसमें माँ अपनी बेटी को नृत्य की सलाह देती है। इसमें 200 छन्दों में नृत्यगान तुक और लय के साथ समाहित है। केरल की रायल परिवार से अमरूदानी लाक्षी ने 14वीं सदी में 'उन्नूनीलि संदेशम्' चंपू काव्य की तरह लिखा। 'मेघदूत' के सदृश इसमें संदेश है तथा यह संदेश मनुष्यों द्वारा दिया गया है। आयापिल्लैआसन नामक कवि ने 'रामायनकाव्यम्' मलयालम में लिखा। इन्हें मलयालम का होमर कहा जाता जाता था। इसके आधार पर यह पट्टू के रूप में भी प्रचलित था। इसी तरह राम पडिक्कडड़ ने 'कन्नड़रामायणम्' कन्नड़ में लिखा और इन्हें कन्नड़ का स्पेन्सर कहा जाता था। कहने का आशय यह है कि पूरे दक्षिण भारत की भाषा बहुत समृद्ध थी। यहाँ भी तुलसी और सूरदास जैसे रचनाकार हुए। पन्द्रहवीं सदी में कृष्ण काव्यधारा चली। आलवार चेरू शेरि ने 'कृष्णगाथा' लिखी। सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक भक्तिकाव्य का निरंतर विकास हुआ। मेलपटटूर नारायण भट्टतिरि ने 'नारायणीयम्' ग्रंथ लिखा।

सत्रहवीं सदी में कथकली का विकास हुआ। 'कथ' का आशय कथा और 'कली' नृत्य से संबंधित है। यह किसी कहानी पर केंद्रित होता था। नृत्य में आट्टकथा का विकास हुआ। नृत्य कली में आट्टकथा गाई जाती थी। लम्बूदरी ब्राह्मणों के मध्य संघाकली नामक नृत्य होता था। कथकली की तरह क्रिश्चियन के मध्य मार्गम कली का विकास हुआ। विवाह के अवसर पर ब्राह्मण्य पट्टू और देवता स्तुति इस प्रकार से भद्रकालिक पट्टू देव स्तुति शास्ताप पट्टू गाया जाता था। त्रावणकोर में केरल के ही पाड़री (788 ई.) थे जिन्होंने वृहद आरण्यक उपनिषद और छान्दोग्य उपनिषद, ईशावास्योपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र प्रस्थानत्रयी को आधार बनाकर भाष्य लिखा और उसमें अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया और बौद्ध धर्म का खंडन किया। विभिन्न विदेशी जातियाँ इस्लाम, चीनी आक्रमण, डच, पुर्तगाली, अंग्रेज के आने के बावजूद भारत एक सूत्र में बँधा रहा तो इसका बहुत बड़ा श्रेय शंकराचार्य को है। शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वर ने 'नैश्कण्य सिद्धि' नामक ग्रंथ लिखकर शंकराचार्य के सिद्धांतों की व्याख्या की। पद्मपाक पंचपादिका ने शंकराचार्य के भाष्य पर टीका लिखी। केरल के राघवानंद मुनि ने 'सर्वमत संग्रह' लिखा जो पूरे हिंदू दर्शन का सार है। नाथमुनि का 'योग रहस्य' जो विशिष्टाद्वैत की भूमिका बनाता है और 1018 में रामानुज ने 'श्रीभाष्य' में विशिष्टाद्वैत की स्थापना की। केरल के हेमाद्रि ने 6000 पृष्ठों की 'चतुरवर्ग चिन्तामणि' लिखा जिसमें अलग-अलग जातियों, कर्मों, व्रत, दान, तीर्थ, मोक्ष आदि का प्रतिपादन किया। केरल में भागवत पुराण की तरह 'नारायणीयम्' पूजा जाता है जिसमें मलयालम में एक हजार छंद हैं। वररुचि के खगोलशास्त्र पर केन्द्रित 'चन्द्रवाक्य' नामक ग्रंथ में उनका शोध है। आठवीं सदी में रवि वर्मा ने वेदशाला स्थापित किया और कोल्लम् संवत चलाया। मंदिरों की लंबी परंपरा है। मंदिर पूजन और कर्मकांड पर ईशान शिव गुरु ने 'पद्दति' लिखा जिसमें 18000 श्लोक हैं। शंकराचार्य से बल्लभाचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य आदि सभी दक्षिण के थे जिन्होंने पूरे भारत को सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। इसमें बारह आलवारों और बासठ नायनमारों की भूमिका को भी कमतर नहीं आँका जा सकता।

निष्कर्ष :

'संस्कृति' निरंतर संस्कारित होने की प्रक्रिया का प्रतिफलित रूप है। इसमें खानपान, रहन-सहन, पहनावा, बोली-बानी, भाषा, विचार, तीज-त्योहार आदि सभी शामिल हैं। भारत जैसे देश में जहाँ अलग-अलग धर्म, संप्रदाय और जातियों के लोग रहते हैं वहाँ की संस्कृति एकरूपी नहीं हो सकती। भारत की श्रेष्ठता इसकी एकता में बसती है। एकता का आशय यह कदापि नहीं है कि सभी एक तरह से हो जाएँ, एक ही तरह का भोजन करें, एक ही तरह के कपड़े पहनें, एक ही भाषा का प्रयोग करें या सभी का व्यवहार एक समान हो। भारतीय संस्कृति की परंपरा वाद-विवाद-संवाद की परंपरा है। इसमें सभी को अपनी बात रखने और व्यवहार करने की जगह है जिसका आज के समय में अभाव दिखाई दे रहा है। भारतीय संस्कृति का निर्माण इसी रूप में हो रहा है। एकता से आशय ऐसे एकीकरण से बिल्कुल नहीं है जिसमें लोगों की अस्मिता खत्म हो जाए। लोग एक तरह के कपड़े पहने, एक ही भाषा बोलें, एक तरह का भोजन करें। विलीन होना भारतीय संस्कृति का लक्षण नहीं है। यह सब अलग होते हुए इसमें समन्वय का भाव ही इसकी विशेषता है और केरल में भारतीयता के सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं।

❖

सहायक प्राध्यापक, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय
तेजस्विनी हिल्स, पेरिया डाक, कासरगोड, केरल-671320

जीवन के लिए चाहिए हरित मानसिकता

— प्रो. गिरीश्वर मिश्र

देश में पर्यावरण, प्रदूषण, वन, नदी, जल, वन्य जंतु, समुद्र, पर्वत आदि को लेकर अनेकानेक सरकारी महकमे बने हुए हैं जिनमें मंत्री और बड़े छोटे अधिकारी वर्ग का भारी लाव लश्कर भी कार्यरत है। हम मुस्तैदी से समस्या के समाधान पर विचार करने और उस विचार पर योजना तैयार करने के लिए तमाम सेमिनार और गहन विचार-विमर्श करते ही रहते हैं। इनकी रपटें भी यदा-कदा प्रकाशित होती हैं। मंत्रीगण इन सबसे कृतकृत्य रहते हैं। दूसरी ओर धरती, हवा, पानी, पेड़-पौधे और आदमी सबका स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ता ही जा रहा है। विकराल होता प्रदूषण इन सबसे बेखबर अपनी जगह ज्यों का त्यों सिर्फ काबिज ही नहीं है उसमें निरंतर इजाफा ही दिख रहा है। अन्न हो या सब्जी, दूध हो या पानी, दवा हो या दारू, या फिर हवा ही आप जो भी ग्रहण करते हैं सभी में मिलावट और जहरीले रासायनिक तत्वों के सहारे बीमारी का प्रत्यारोपण का कार्य नियमित रूप से चल रहा है।

कोरोना की महामारी ने जहाँ सबके जीवन को त्रस्त किया है वहीं उसने हमारे जीवन के यथार्थ के ऊपर छाए भ्रम भी दूर किए हैं जिनको लेकर हम सभी बड़े आश्वस्त हो रहे थे। विज्ञान और प्रौद्यौगिकी के सहारे हमने प्रकृति पर विजय का अभियान चलाया और यह भुला दिया कि मनुष्य और प्रकृति के बीच परस्पर निर्भरता और पूरकता का संबंध है। परिणाम यह हुआ कि हमारी जीवन पद्धति प्रकृति के अनुकूल नहीं रही और हमने प्रकृति को साधन मान कर उसका अधिकाधिक उपयोग करना शुरू कर दिया। जल, जमीन और जंगल के प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण शुरू हुआ और उनके प्रदूषण का आरंभ हुआ। धीरे-धीरे अन्न, फल , दूध, पानी और सब्जी आदि सभी प्रकार के सामान्यत: उपलब्ध आहार में स्थाई रूप से विष का प्रवेश पक्का हो गया। इन सबका स्वाभाविक परिणाम हुआ कि शरीर की जीवनी शक्ति और प्रतिरक्षा तंत्र दुर्बल होता गया।

आज सबके मन में पर्यावरण को लेकर एक खौफ बैठा हुआ है। ओजोन की पर्त में छेद से होकर आने वाली सूर्य की रश्मियाँ खतरनाक हो रही हैं। हमारे खाद्य पदार्थ कीट नाशकों और अन्य रसायनों से प्रदूषित हो रहे हैं। पीने के लिए निर्मल शुद्ध जल प्राय: अनुपलब्ध है। जलवायु-परिवर्तन के क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं इसकी झलक आए दिन मौसम में हो रहे बदलावों से मिलती है। इनसे हरित गैसों से तप्त धरती का क्या हाल होगा इसकी चेतावनी भी मिलती है। घर और बाहर की हवा हानिकारक रसायनों से भरी रहती है और सांस लेना दूभर होता जा रहा है। भोज्य पदार्थ की आनुवांशिक इंजीनियरिंग और बीजों के पेटेंट होने से प्राकृतिक भोज्य पदार्थों तक हमारी पहुँच घटती जा रही है और विश्व की अधिकांश जनसंख्या के लिए भोजन के साधन भी घट रहे हैं। जिस वेग से वैश्विक गर्मी बढ़ रही है वह दुनिया को ऐसे बिंदु पर पहुँचा रही है जिससे बाढ़, भोजन और जल की कमी, विस्थापन, संसाधनों के लिए हिंसात्मक संघर्ष अवश्यम्भावी होता जा रहा है। सिर्फ अमेरिका में नौ बिलियन पशु प्रतिवर्ष भोजन के काम आते हैं। इसके चलते अनेक जीव जंतुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। जल-प्रदूषण, मल और अपशिष्ट के निरंतर एकत्र होते रहने, वनों की कटाई आदि से ओजोन की पर्त को भी सतत हानि हो

रही है। वर्षा-वन और समुद्र के भीतर का जीव-जगत है, जो विविध जीव-प्रजातियों के संरक्षण का स्रोत है और जिससे जीवन के जटिल रूपों का विकास होता है वह भी मनुष्य द्वारा दोहन के कारण बुरी तरह दुष्प्रभावित हो रहा है। धरती पर उपलब्ध संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक है और यह स्थिति सफल जीवन जीने के लिए उपयुक्त नहीं बैठ रही है। संतुष्टि न हो सकने वाली हमारी उपभोग-वृत्ति और लोभ के कारण निकलता कूड़ा और अपशिष्ट का स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कैंसर जैसे असाध्य रोग की बहुतायत चिंताजनक हो रही है। पहाड़ों, नदियों, घाटियों और वनों वाले प्रकृति के रम्य सौंदर्य स्थल जो आध्यात्मिक ऊर्जा के स्रोत हैं खत्म होते जा रहे हैं। नाभिकीय ऊर्जा से सब कुछ समाप्त करने वाला शस्त्रास्त्र बनाने की होड़ थमने का नाम नहीं ले रही है।

आज हम प्रौद्योगिकी की बदौलत लाखों लोगों को बंदी बना सकते हैं और लोगों के व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं परंतु हमारी बुद्धि और लोभ के ये तकनीकी उत्पाद इस पृथ्वी को एक सुरक्षित स्थान नहीं बना पा रहे हैं। कुल मिलाकर परिवर्तन इतने बड़े पैमाने पर हो रहे हैं कि आदमी के लिए स्वाभाविक नैसर्गिक दशा में जीना और अपनी क्षमताओं का उपयोग करना असंभव-सा हो रहा है। यह सब करते हुए हम अपनी मुख्य भूमिका से चूक गए। हमारी सामाजिक रचनाएँ जो तथाकथित रूप से सत्य और उचित के निश्चय के लिए हैं। मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों की खुशहाली के बारे में मौन हैं क्योंकि सोच-विचार की धारा परिस्थितियों के दुरुपयोग की ओर ले जाती है। एक निपट अकेले व्यक्ति का विकास ही उसके केंद्र में है और उसी की आत्मकेंद्रित सर्जनात्मकता पर बल दिया जाता है। मनुष्य और पशु-पक्षी तथा भौतिक पदार्थों के बीच एक कृत्रिम विभाजक रेखा बनाई गई जो व्यापक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। हमारे पास एक टिकाऊ विश्व व्यवस्था की कोई स्वीकार्य दृष्टि नहीं है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी और व्यापार घोर वैयक्तिकता वाली विश्व दृष्टि पर टिके हुए हैं। यह नियति का खेल है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण के नियम कार्पोरेट के संरक्षण में सहयोगी बनाते हैं ताकि उन्हें मुक्त व्यापार की छूट मिल सके जो मूलत: संस्कृति के संरक्षण और पर्यावरण की सुरक्षा के विरुद्ध हैं।

उल्लेखनीय है कि वैश्विक दबाव सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को समाप्त करते हैं। वे एकरस मानसिक संस्कृति (मोनो कल्चर) रचते हैं। यह सभी अनुभव कर रहे हैं कि विज्ञान और तकनीकी का विकास वस्तु की दुनिया पर स्वामित्व पाने के लिए है। परंतु स्पर्धा की दौड़ में जितना भी हासिल किया जाए वह प्रतियोगी लोगों के बीच अपनी स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए हमेशा ही नाकाफी रहेगा। इस तरह की संस्कृति में प्रचंड उपभोग के लक्ष्य तृप्त न होने के कारण सदैव काम्य बने रहते हैं। इसीलिए सत्ता संचित होती है जो मनुष्य की संभावना को नष्ट करती है। आज का सभ्य आदमी अपने ही द्वारा पैदा की गई प्रौद्योगिकी की व्यवस्था से जूझने में ज्यादा समय बिताता है। भोजन, यात्रा, संचार सब तरह के काम के लिए विशेषज्ञ की जरूरत पड़ती है। हमें प्रतियोगी इस लिए बनाया जा रहा है कि हम विस्तृत होते उस अर्थ तंत्र के हिस्से बन जाए जो धरती की नैसर्गिक संपदा का खतरनाक ढंग से दोहन करता है और सिर्फ उत्पादन और उपभोग को ही महत्त्व देता है। वह स्थानीय लोगों और आदिवासियों के हित की रक्षा नहीं करता है। इन सबके चलते वन की कटाई, धरती की ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी, औषधीय वृक्षों का उन्मूलन, जल प्रदूषण, तनाव, हिंसा, गरीबी आदि व्यक्ति और धरती के रिश्ते को त्रस्त कर रहे हैं।

देश में पर्यावरण, प्रदूषण, वन, नदी, जल, वन्य जंतु, समुद्र, पर्वत आदि को लेकर अनेकानेक सरकारी महकमे बने हुए हैं जिनमें मंत्री और बड़े छोटे अधिकारी वर्ग का भारी लाव लश्कर भी कार्यरत है। हम मुस्तैदी से समस्या के समाधान पर विचार करने और उस विचार पर योजना तैयार करने के लिए तमाम सेमिनार और गहन विचार-विमर्श करते ही रहते हैं। इनकी रपटें भी यदा-कदा प्रकाशित होती हैं। मंत्रीगण इन सबसे कृतकृत्य रहते हैं। दूसरी ओर धरती, हवा, पानी, पेड़-पौधे और आदमी सबका स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ता ही जा रहा है। विकराल होता प्रदूषण इन सबसे

क्रमशः ..... पृष्ठ 31 पर

..... *पृष्ठ 12 का शेष* **(जीवन के लिए चाहिए हरित मानसिकता)**

बेखबर अपनी जगह ज्यों का त्यों सिर्फ काबिज ही नहीं है उसमें निरंतर इजाफा ही दिख रहा है। अन्न हो या सब्जी, दूध हो या पानी, दवा हो या दारू, या फिर हवा ही आप जो भी ग्रहण करते हैं सभी में मिलावट और जहरीले रासायनिक तत्वों के सहारे बीमारी का प्रत्यारोपण का कार्य नियमित रूप से चल रहा है। सभी निरुपाय हैं और असहाय रूप से देख रहे हैं। धनी लोग 'ऑर्गेनिक फूड' और 'एयर प्यूरीफायर' तथा आर.ओ. से आगे बढ़कर विशेष तरह के जल शोधक के उपयोग जैसी युक्तियों का लाभ उठा लेते हैं पर अधिकांश लोग त्रस्त ही हैं। आज जिस तरह कैंसर, मधुमेह, उच्च रक्त चाप आदि के रोग तेजी से बढ़ रहे हैं उसका गहरा संबंध पर्यावरण और आहार की गुणवत्ता के साथ हो रहे समझौते के साथ भी प्रतीत होता है।

इस स्थिति में मनुष्य और प्रकृति के साथ उसके रिश्ते की छानबीन और विकल्पों की तलाश या अपने को सुधारने की दिशा में कदम उठाना तात्कालिक महत्व का हो गया है। अब वैश्विक स्तर पर धरती की व्यवस्था टूटने के कगार पर पहुँच रही है। अमेजन के वर्षा वन और पश्चिमी अंटार्कटिक का शीताच्छादन की समस्या को लेकर कुछ विशेषज्ञ ज्यादा चिंतित नहीं हैं। पर यह मत भी है कि उपलब्ध साक्ष्य इन घटनाओं की संभाव्यता बढा रहे हैं और उनका प्रभाव घातक हो सकता है। जैव भौतिकी के बदलाव कई जैविकीय प्रणालियों से जुड़े हुए हैं। इनसे विश्व में दीर्घकालिक और अपरिवर्तनीय प्रभाव पड़ेगा। सरकारों का अंतरराष्ट्रीय पैनल त्वरित कारवाई के लिए कहता रहा है। अब वैज्ञानिक भी तापमान में वैश्विक वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) को लेकर गंभीर हो रहे हैं। आज की स्थिति यह है कि यदि सभी देश ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को रोकने के अपने वायदे पर कायम रहें तब भी कम से कम तीन डिग्री की वैश्विक गर्मी तो पैदा ही होगी। 2015 के पेरिस समझौते में 2 डिग्री की गर्मी की सीमा पर सहमति थी। कुछ अर्थशास्त्रियों ने महासंकट को 3 डिग्री से अधिक पर ठहराया है।

हम सोचते हैं कि कई हिम मंडल अपनी सीमा पर पहुँच गए हैं। पर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन एकत्र हो कर इसके असर को कम कर रहे हैं। पिछले दशक में हुए शोध ने दिखाया है कि पश्चिमी अंटार्कटिका हिम, समुद्र और धरा अश्म (बेड राक) जहाँ मिलते हैं, वह स्थल पीछे खिसक रहा है। यह सब अपरिवर्तनीय ढंग से हो रहा है। इससे समुद्र की सतह में वृद्धि होती है। नए आंकड़े पूर्वी अंटार्कटिका की शीत आवेष्टन के नष्ट होने के प्रमाण दे रहे हैं। बिल्किस बेसिन अस्थिर होता दिख रहा है। ग्रीन लैंड की बर्फ चादर (आइस शीट) बड़ी तेजी से पिघल रही है। वातावरणीय कार्बन सघनता में तेजी से वृद्धि दर्ज हो रही है। एक मॉडल के अध्ययन का परिणाम है कि 2030 तक स्थिति बेकाबू हो जाएगी। कुल मिलाकर तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री तक सीमित करना होगा। इसके लिए आपातकालीन प्रतिक्रिया जरूरी है। वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी के क्रम से लगता है कि आने वाला समय और भी गर्म होगा। हिम मंडल में परिवर्तन खतरनाक स्तर को छू रहे हैं। जलवायु परिवर्तन और मानवीय हस्तक्षेप आदि के चलते जल जीवों की जैव विविधताएँ भी खत्म हो रही है। वनों की कटाई अमेजन के जंगलों का सफाया कर रही है। पृथ्वी की पूरी प्रणाली तहस नहस होने के कगार पर पहुँच रही है। खतरे बढ़ रहे हैं और हस्तक्षेप करने के लिए उपलब्ध समय सीमा घटती जा रही है। पूरी धरती के ऊपर प्रकृति का आपात काल लगने की तैयारी हो चुकी है न चेतने और जरूरी कदम न उठाने के घातक परिणाम होंगे।

सामाजिक स्तर पर भी देश की यात्रा विषमता से भरी रही। 'ग्राम स्वराज' का विचार भुला कर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण को ही विकास का अकेला मार्ग चुनते हुए हमने गाँवों और खेती किसानी की उपेक्षा शुरू कर दी। गाँव उजड़ने लगे और वहाँ से युवा वर्ग का पलायन शुरू हुआ। शहरों में उनकी खपत मजदूर के रूप में हुई। श्रमजीवी के श्रम का मूल्य कम आँके जाने के कारण मजदूरों की जीवन-दशा दयनीय बनती रही और उसका लाभ उद्योगपतियों को मिलता रहा। वे मलिन बस्तियों में जीवन यापन करने के लिए बाध्य रहे। इस असामान्यता को भी हमने विकास की अनिवार्य कीमत मान लिया। बाजार तंत्र के हावी होने और उपभोग करने की बढती प्रवृत्ति ने नगरों की व्यवस्था को भी असंतुलित किया।

उदारीकरण और निजीकरण के साथ वैश्वीकरण ने विदेशीकरण को भी बढाया और विचार, फैशन तथा तकनीकी आदि के क्षेत्रों में विदेश की ओर ही उन्मुख बनते गए। हमारी शिक्षा प्रणाली भी पाश्चात्य देशों पर ही टिकी रही। इन सबके बीच आत्म निर्भरता, स्वावलंबन और स्वदेशी के विचारों को बाधक मान कर परे धकेल दिया गया।

कोरोना की महामारी ने यह महसूस करा दिया कि वैश्विक आपदा के साथ मुकाबला करने के लिए स्थानीय तैयारी आवश्यक है। विचार, व्यवहार और मानसिकता में अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को पुनः स्थापित करना पड़ेगा, प्रधानमंत्री जी ने स्थानीय के महत्त्व को रेखांकित किया है और आत्म निर्भर बनने के लिए आह्वान किया है। आशा है ग्राम स्वराज के स्वप्न को आकार देने का प्रयास नीति और उसके क्रियान्वयन में स्थान पा सकेगा। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी देश और यहाँ की संस्कृति के लिए प्रासंगिकता पर ध्यान दिया जाएगा। जड़ों की उपेक्षा कर वृक्ष स्वस्थ नहीं रह सकता।

आज एक पारिस्थितिक आत्म या स्व (सेल्फ) की अवधारणा पर विचार करना जरूरी होता जा रहा है जो सभी प्रकार के जीवन का समावेश कर सके और उनके साथ एकता को भी ध्यान में रख सके। आधुनिक जीवन की बढ़ती जटिलताएँ अपने परिवेश को समझने, अधिकार में लेने और नियंत्रण करने की होड़ में हमारे जीवनानुभव के मुख्य हिस्से या जड़ों से दूर होते जा रहे हैं। फलतः आज चिंता, अवसाद, संशय और अकेलेपन से जूझते व्यक्तियों का हुजूम दिख रहा है जो अकेलेपन और असहायता की भावनाओं से विकल हैं। तकनीकी विकास, व्यवसाय में कठिन प्रतिस्पर्धा और वैयक्तिकता के चलते लोग तनाव के शिकार हो रहे हैं। प्रकृति के साथ जुड़ कर एक संतोषदायी जीवन की संभावना आगे नहीं बढ़ रही है। अपने को अलग और सबसे श्रेष्ठ मानने के भ्रम से प्रकृति के साथ परस्पर निर्भरता वाले रिश्ते की अनदेखी हो रही है। फलतः हम पर्यावरण के लिए समस्याओं को पैदा करते जा रहे हैं। यदि हम मांस, प्लास्टिक, जीवाश्म ईंधन के कम उपयोग के साथ जीना सीख लें, यदि हम विषैले रेडियो विकिरण या रासायनिक अपशिष्ट को नियंत्रित करें तो सृष्टि की देखभाल हो सकेगी। ऐसे में खुशहाली की मृग मरीचिका वाली अनंत खोज की जगह दया और करुणा की संवेदना आवश्यक हो गई है। आधुनिक समाज के व्यसन से उबरना होगा। हमारी मानसिकता को हरित बनाना पड़ेगा। मनुष्य को पूरी प्रकृति के साथ जीवंत संबंध रखना होगा। समुद्र, नदी, पशु पक्षियों की आवाजें हमें गहरे छू जाती हैं, बादल, फूल, संध्या काल में डूबता सूरज की आभा मनुष्य की आत्मा को पुनर्नवा करने वाली हैं। मनुष्य होने का अर्थ अन्य मनुष्यों, प्रकृति और सृष्टि के साथ प्रामाणिक रिश्ता बनाना है। हमें सभी जीवन रूपों को आदर देना होगा। वास्तविकता यह है कि मनुष्य की प्रजाति का जीवन परिस्थितिकी के साथ गहरे संबंध की स्थापना की अपेक्षा करता है। ऐसे में हमें व्यापक पारिस्थितिकीय आत्मबोध का विकास करना होगा जिसमें प्रदूषित दुनिया की व्यथा हमारी व्यथा होगी और सामान्य रूप से जीवन का संरक्षण हमारे अपने जीवन को अर्थवान बनाएगा। यह याद रखने वाली बात है कि समकालीन सभ्यता ने इस धरती का नक्शा 200 वर्षों में जितना बदला है वह 2 मिलियन वर्षों में प्रकृति की सभी शक्तियों से होने वाले परिवर्तन से अधिक है। देसी लोग बहुत कम परिवर्तन के वातावरण में रहे और उनकी जीवन शैली में प्रकृति की शक्ति के साथ समरस थे और समायोजन था। इतिहास गवाह है कि सुमेर, बेबिलोन, ट्राय, एथेंस, रोम, सभी उठे, बढ़े और नष्ट हो गए परंतु भारत की सभ्यता और संस्कृति बहुत अंशों में सुरक्षित बची रही। यह उसकी समग्रता पर बल देने वाली जीवन दृष्टि का ही परिणाम था जो सर्वत्र प्रवाहमान किसी अव्यय तत्व की उपस्थिति से अनुप्राणित थी। इस दाय को सँभालते हुए हमें प्रकृति के साथ परपरावलम्बन के आधार को सुदृढ़ करना होगा। इसी में हमारा भविष्य निहित है।

❖

307, टावर-1 पार्श्वनाथ मैजेस्टिक फ्लोर्स, वैभव खंड,
इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201014
मोबाइल : 9922399666 ई-मेल : misragirishwar@gmail.com

जेल में संगीत, संवाद और मीडिया

— डॉ. वर्तिका नन्दा

संगीत एक ऐसी विधा है जिसमें जिंदगी के रुख को बदलने और मानसिक ताकत को भरने की क्षमता है। वह आत्मा की भाषा है। संगीत का असर तकरीबन हर इंसान पर पड़ता है लेकिन बंदियों पर पड़ने वाला इसका असर बहुत गहरा और अर्थपूर्ण हो सकता है। भले ही जेल में म्यूजिक थेरेपी को लेकर पर्याप्त शोध नहीं हुए हैं लेकिन यह सही है कि बंदियों पर संगीत का सकारात्मक असर पड़ता रहा है। यह शोध पत्र भारत की तीन जेलों में संगीत को लेकर किए एक प्रयोग पर आधारित है जिसे इस शोधपत्र की लेखिका ने जेलों पर स्थापित एक विशेष मुहिम-तिनका तिनका-के तहत किया था। इस मुहिम की शुरुआत 2013 में दिल्ली में स्थित दक्षिण एशिया की सबसे बड़े जेल परिसर तिहाड़ से हुई थी जो बाद में उत्तर प्रदेश की दो जेलों में नए स्वरूप में स्थापित हुई और अब भी जारी है। इस शोध के दौरान यह पाया गया कि संगीत जेल में संवाद की जरूरतों को भरने में कारगर रहा है और मीडिया की सीमित लेकिन सकारात्मक भूमिका से ऐसे प्रयोगों को ऊर्जा मिली है।

"संगीत के बिना यह दुनिया पागलपन होगी"
फ्रेडरिक नीत्शे

साल 2013 में तिहाड़ की जेल नंबर 6 से जेल, साहित्य और संगीत को लेकर एक विशेष प्रयोग ने जन्म लिया। जेल नंबर 6 महिलाओं की जेल है। 2013 में भारत में तिनका तिनका परियोजना के तहत एक अनूठा काम किया गया जो एक शृंखला के तौर पर आगे बढ़ता गया। इसके तहत तिहाड़ की महिला बंदिनियों से आग्रह किया गया कि वे जेल की जिंदगी पर कविताएँ लिखें। महीनों की मेहनत के बाद कविताओं को इकठ्ठा किया गया और आखिरकार चार महिला बंदिनियों का चयन किया गया। यह थीं- रमा चौहान, सीमा रघुवंशी, रिया शर्मा और आरती। संपादन के बाद इनकी कविताओं के संकलन को नाम दिया गया-तिनका तिनका तिहाड़। 2013 में राजकमल प्रकाशन से हिंदी और अंग्रेजी में छपी यह किताब महिला बंदिनियों की कविताओं का एक संग्रह है जिसका संपादन वर्तिका नन्दा और विमला मेहरा (आईपीएस, तत्कालीन महानिदेशक, तिहाड़) ने किया। इसमें महिला बंदियों की ही जेल पर खींची तस्वीरें भी शामिल हैं। इससे पहले इस तरह का प्रयोग दुनिया के किसी भी देश में नहीं किया गया।

2013 में देश के गृह मंत्री ने विज्ञान भवन में जब इस किताब का विमोचन किया तो भारत के सभ्य समाज में अचरज से कानाफूसी हुई जेल की महिलाएँ और वो भी कवयित्रियाँ। पर यही सच था। रमा, सीमा, रिया और आरती—इन चारों की कविताओं की जिस किताब के लिए मैंने और विमला मेहरा ने काम किया था, उनमें जिस भाव ने खुद को बार-बार उभारा, वह था-जेल, उम्मीद और प्रेम। हिंदी और अंग्रेजी के अलावा इस किताब का अनुवाद चार भारतीय भाषाओं में हुआ और इतालियन में भी। यही किताब बाद में लिम्का बुक आफ रिकार्ड्स में भी शामिल हुई। किताब के आने के बाद इसी शीर्षक से एक गाना लिखा गया। इसके लिए सात बंदियों का चुनाव हुआ। इनमें चार पुरुष थे (ऋषभ, अमित, सूरज और रवि) और तीन महिलाएँ (मीनू, मोनिका और आरती)। इसी गीत की पृष्ठभूमि में इस शोधपत्र को लिखा गया है।

2014 में मार्च के महीने में तिहाड़ की जेल नंबर 3 में उस दिन महिला और पुरुष कैदी जमा हुए। वहाँ कैमरा था, तकनीकी स्टाफ था। टीवी का मॉनिटर था और उत्सव था। इन बंदियों का समूह पहली बार देश के सबसे अलग पब्लिक सर्विस ब्राडकास्टर–लोकसभा टीवी–के सामने तिनका तिनका तिहाड़ को प्रस्तुत करने वाला था। कपड़े पीले और चटख लाल थे। युवतियों के नाखूनों में नेल पॉलिश। सामने कुछ शीशे जिसमें वे खुद को देख सकते थे (जेल में न शीशे होते हैं, न रंगों की ऐसी गुंजाइश। इसलिए यह दिन उनके लिए यादगार था)। आज उनका मेकअप भी हुआ। उनकी मर्जी के मुताबिक और मेकअप भी किया–एक बंदी ने ही जो जेल में आने से पहले मेकअप आर्टिस्ट थी। इन सबने मिलकर उस दिन भारत में एक इतिहास रचा। किसी जेल से पहली बार इस पैमाने पर एक गाना शूट हुआ। हाँ, यह गाना मैंने लिखा है लेकिन धुन और स्वर इन्हीं बंदियों की है। इस गाने को बाद में जेल का परिचय गीत बना दिया गया।

तिनका तिनका तिहाड़ है, तिनके का इतिहास है,/तिनके का अहसास है, तिनके में भी आस है/हाँ, ये तिहाड़ है, हाँ, ये तिहाड़ है/बंद दरवाजे खुलेंगे कभी/आँखों में न होगी नमी/इक दिन माथे पे अबीर/भरेगी घावों की तासीर/हाँ, ये तिहाड़ है, सबका ये तिहाड़ है।

मई 2015 में लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन ने संसद भवन के अपने कक्ष में इस गाने का लोकार्पित किया और इस कोशिश पर मुहर लगा दी कि बंदियों के इस काम को सरकार की सराहना और रजामंदी मिल रही है।

संगीत के इस प्रयोग ने यह बात साबित की कि जेल प्रवास के दौरान बंदियों को संगीत से जोड़ना प्रशासन और जेल सुधार के मामले मे एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। तिनका तिनका तिहाड़ इन बंदियों की जिंदगी मे खुशी और उम्मीद भरने मे कामयाब रहा। इस गाने के शूट के कुछ ही दिनों बाद इस गाने के प्रमुख गायक ऋषभ ने अपनी एक अलग म्यूजिकल एल्बम भी रिलीज की। तिहाड़ से रिहा होने के बाद उसकी एक और म्यूजिकल एल्बम बाजार में आई। उसके इस काम को मीडिया ने काफी सराहा। इस सराहना ने उसे अपनी जिंदगी मे आगे बढ़ने की हिम्मत दी। तिनका तिनका तिहाड़ के प्रयोग के तहत जब इन बंदियों का सीडी रिलीज किया गया तो इन सब के नाम उसके कवर पर लिखे थे। इस गाने को भारत के जन सेवा प्रसारक माध्यम आकाशवाणी में भी सुनाया गया और बंदियों को उनका श्रेय दिया गया। 2017 में यह गाना लिम्का बुक अश्वफ रिकॉर्ड्स में शामिल हुआ।

2016 में जिला जेल, डासना को एक नए प्रयोग के लिए चुना गया। यह जेल उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले में है। इस प्रयोग के तहत जेल के 18 बंदियों को जोड़ा गया। इनमें 13 पुरुष और 5 महिलाएँ थीं। इस गाने को जेल की प्रमुख दीवार के सामने शूट किया गया जिसे जेल के ही चार बंदियों ने कड़ी मेहनत से तैयार किया था। यह दीवार एक 3–डी पेंटिंग है जो किसी भी जेल की अपनी तरह की एक खास पेंटिंग है। 10 बिंबों को लेकर बनी इस दीवार में 10 स्मृतियाँ उकेरी गईं ऐसी स्मृतियाँ जो हर कैदी की जिंदगी की कहानी होती हैं। इस गाने को उत्तर प्रदेश के जेल मंत्री ने रिलीज किया। गाने के रिलीज के समय एक टीवी चौनल ने इन बंदियों से बात की। उस रिकार्डेड शो में कई बंदियों ने खुलकर कहा कि संगीत ने उनकी जिंदगी को पूरी तरह से बदल दिया है।

पुरुष गायक : शहजाद, धर्मवीर, दिनेश, मांगे, आशा राम, पप्पू, बृजमोहन, गुलजार। महिला गायक : नैन्सी, डॉली, प्रवीण, अंजू

चित्रकार (पुरुष) : विवेक स्वामी, किशन, संजय, दीपक

इस दीवार पर मेरे लिखे गाने के उस हिस्से को भी उकेरा गया जो उम्मीद जगाता है। अब बारी जेल के थीम सांग की थी।

क्रमशः ..... पृष्ठ 33 पर

..... *पृष्ठ 14 का शेष* **(जेल में संगीत, संवाद और मीडिया)**

इस गाने को लिखा मैंने लेकिन उसे लय में बाधा इन बंदियों ने और गाया भी इसे गाने वाले 13 बंदियों में से 10 उस समय आजीवन कारावास पर थे।

दिन बदलेंगे यहाँ भी/पिघलेंगी ये सलाखें भी/ढह जाएँगी ये दीवारें/होंगी अपनी कुछ मीनारें/टूटे फिर भी आस ना/ये है अपना डासना।

भीड़ से भरी 3300 बंदियों की इस जेल मैं, एक दीवार और एक संगीत नयी रौशनी लेकर आया। शूट के दौरान वो चार बंदी भी मौजूद रहे जिन्होंने इस दीवार को पेंट किया था। इस जेल में भी इस गानो को जेल का थीम सांग यानी परिचय गान बनाया गया। इसका मकसद जेल में आशा और सहयोग को बनाना और बंदियों को एक दूसरे के साथ जोड़ कर सकारात्मक दिशा में आगे ले जाना था। इस प्रयोग ने साबित किया कि जेल के अंदर संगीत, लेखन, सुर, रंग, नृत्य ऐसी बहुत-सी कलाएँ है जिनकी तरफ एक आम इंसान का ध्यान नहीं जाता लेकिन उनके सही इस्तेमाल से अपराध की रोकथाम जरूर हो सकती है। इस गाने ने इन बंदियों को एक नयी पहचान और एक नया परिचय दिया, उन्हें सोचने के लिए मजबूर किया और अपराध की तरफ दोबारा न लौटने के लिए सचेत भी। आजीवन कारावास पर बंदी धर्मवीर ने उस दिन कहा-

"जेल में संगीत के इन सुरों ने हमें जीने का मकसद सौंप दिया है। हमारी दुनिया बदल गई है। जेल में यह संगीत हमें भविष्य के सपने देखने की काबिलियत देता है"

डासना जेल में कार्यरत फार्मासिस्ट आनंद पांडे इस पूरी यात्रा के प्रत्यक्षदर्शी थे। भारत की पहली खुली जेल यानी अब के उत्तराखंड में बने संपूर्णानंद शिविर का अनुभव बटोर चुके आनंद पांडे ने संगीत और संवाद के इस मेल-जोल को इस तरह से देखा-

"हमारी जेल में संगीत को लेकर किया गया यह प्रयोग खुद हमारे लिए भी शोध और दिलचस्पी का विषय बना। जेल में संगीत की मौजूदगी भर से माहौल बदलने लगा। 25 बैरकों वाली जेल में बंदी इस गाने को गुनगुनाते रहते। ढोलक और हारमोनियम की टीम पर काम करने वाले आजीवन कारावास के बंदी गाने की नई-नई धुनों को बनाने में मगन हो गए। उन्हें जैसे जेल में ही कोई मकसद मिल गया। जेल में एकाएक हिंसक प्रवृत्तियों में कमी आई। बंदी सृजन में व्यस्त हो गए। जब इनमें से कुछ बंदियों की तस्वीरें अखबारों में छपीं और एक टीवी चैनल ने इन पर एक विशेष कार्यक्रम किया तो पहली बार उन्हें लगा कि कोई उनके काम को भली नजर से भी देख सकता है। हिंदुस्तान टाइम्स के कवर पर छपी खबर को देखकर तो वे बंदी भी उत्साहित हो गए जिन्हें अंग्रेजी पढ़नी भी नहीं आती थी। एक छोटी कोशिश ने जेल को खुशी से भर दिया।"

इसी गाने को बाद मे प्रतिष्ठित नृत्यांगना शोभना नारायण और गायिका कुमुद दीवान ने दिल्ली के बड़े केंद्र मे प्रस्तुत किया। इस गीत को कलात्मक और शास्त्रीय प्रस्तुतिकरण के साथ सामने लाने का प्रयास हुआ। कथक और बनारस की ठुमरी का मेल किया गया और बंदियों की भावनाओं को नृत्य और संगीत के जरिए प्रस्तुत किया गया।

आगरा का केंद्रीय कारागार पुरुष बंदियों की जेल है और इसके सभी बंदी आजीवन कारावास पर हैं। सबका अपना एकाकीपन है, सबकी अपनी कहानी। लेकिन फिर भी कोई एक सूत्र है जो जिंदगी को किसी लय से जोड़े रखता है। तिनका तिनका तिहाड़ और तिनका तिनका डासना से अलग हटकर इस बार बंदियों को ही जेल का थीम सांग लिखने के लिए प्रेरित किया गया। जो गाना चुना गया, उसे इसी जेल में बंदी दिनेश कुमार गौड़ ने लिखा था। साल 2001 से उन्होंने जेल में सत्रह साल बिताए थे। इनमें से सोलह साल आगरा केंद्रीय कारागार जेल में गुजरे। गाने के कुछ शब्द यूँ थे-

आशा और विश्वास की डोरी, तिनका तिनका ने है जोड़ी
बहारें बन जायेंगे गीत, बनेगा जीवन ये संगीत
सभी आपस में होंगे मीत

इस गाने को सोलह बंदियों ने गया था। आठ महीने की मेहनत से तैयार हुए इस गाने मे बंदियों ने अपनी पूरी ताकत लगाई और इसी समय में उन्होंने करीब पचहत्तर ऐसी कविताएँ लिखी जो जेल के उनके अनुभवों से जुडी थी। संगीत को बेहतरीन रूप देने के लिए जेल के अंदर ही हारमोनियम, ढोल, मंजीरे और ड्रमों का इस्तेमाल किया गया। गाने को जेल में बने मंदिर के सामने शूट किया गया।

क्रमशः ..... पृष्ठ 45 पर

गायक : संजय कश्यप, यशपाल त्यागी, जुगनू, विजय राघव, नौशाद, वीरेंद्र सिंह, सोनी, मनोज, शकील अंसारी, प्रेम, प्रवेश, अशोक कुमार, योगेश, सुधीर बाना, नेकपाल, सुरेश एलानी।

इस गाने को सीनियर सुपरिटेंडेंट संत लाल यादव, इस.एच. एम. रिजवी और जेलर लाल रतनगर ने रिलीज किया। सीमित साधनों के बीच एक गाने को थीम सांग के तौर पर बनाना एक मुश्किल काम था लेकिन तब भी यह काम पूरा हुआ। 2016 में दिनेश कुमार गौड़ को उसके इस विशेष योगदान के लिए तिनका तिनका इंडिया अवार्ड दिया गया। जेल से छूटने के बाद उन्होंने एक पत्र में लिखा :

"इस इनाम को जीतने के बाद जिंदगी जीने की तमन्ना बढ़ गयी। मुझे लगा कि कुछ लोग बंदियों के प्रति भी नरम रवैया भी रख सकते है। यह मेरे लिए खुशी और हैरानी दोनों की बात थी। जब इस गाने का वीडियो रिलीज हुआ तो मुझे जेल में डिप्टी जेलर ने अपने कमरे में बुलाकर दिखाया। उसके बाद सभी अधिकारी और सारे जेल के सामने इस गाने को एक पेन ड्राइव के जरिये चलाया गया, और मुझे पहली बार जेल मे रहते हुए अपने किसी काम पर गर्व महसूस हुआ। इस अवार्ड को मिलने के बाद सोलह साल में मुझे पहली बार ऐसा लगा कि जेल में कुछ अच्छा भी हो सकता है। यूट्यूब पर गाने के रिलीज होने के बाद जब जेलर ने मुझे सभी बंदियों के सामने मेरे लिखे हुए गाने को सुनाया तो मुझे लगा कि वह इंसान शायद कोई और ही है।"

दिनेश बताते है कि इस गाने के आने के बाद उनके परिवार और जैसे पूरे समाज में ही उनके प्रति दृष्टिकोण बदल गया। इस गाने के शूट होने और रिलीज होने तक बंदियों का जीवन कई तरह से बदला। इस जेल में सभी बंदी आजीवन कारावास में है। लम्बी सजा के बीच उम्मीदें अपने आप सूखने लगती हैं लेकिन संगीत ने इन उम्मीदों को जिंदा किया। करीब चौदह साल जेल में गुजारने वाले इन लोंगो को यह महसूस हआ कि कला उन्हें बचाये रख सकती है। इस परियोजना के दौरान और बाद में भी जेलों से बंदियों के लिखने और उनके सृजन की निरंतर सूचनाएँ आने लगीं।

भारतीय जेलें भीड़ से भरी हुई है। कोरोना के समय में संक्रमण को जेलों तक पहुँचने से रोकने के लिए सुप्रीम कोर्ट को दखल करना पड़ा और लॉकडाउन की घोषणा के साथ ही कई जेलों से उन बंदियों को रिहा किया गया जो कानूनी दायरे में रिहाई पाने के हकदार थे। लेकिन इस से समस्या का पूरी तरह से अंत नहीं हुआ। जेलों का अकेलापन से भरा माहौल, मूलभूत सुविधाओं की कमी और नकारात्मक प्रवत्तियाँ जेल के जीवन को ज्यादा कठिन और पेचीदा बनाती हैं।

इस दिशा में जिला कारागार आगरा में तिनका तिनका के स्थापित किये गए आगरा जेल रेडियो का जिक्र भी किया जाना जरूरी है। भारत की इस सबसे पुरानी और जीवंत जेल इमारत में इस शोध पत्र की लेखिका ने जुलाई 2019 को जेल रेडियो की शुरुआत की। यह जेल रेडियो और उसस पर सुनाया जाने वाला संगीत कोरोना के समय मुलाकातों के बंद होने पर बंदियों का सबसे बड़ा सहारा बना।

(यह शोध-पत्र ICSSR और मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार की इंप्रैस स्कीम से स्वीकृत भारतीय जेलों में संचार की जरूरतों पर आधारित प्रोजक्ट का एक हिस्सा है।)

संदर्भ :

1. नन्दा, वर्तिका : तिनका तिनका मध्य प्रदेश। तिनका तिनका फाउंडेशन, 2018
2. नन्दा, वर्तिका : तिनका तिनका डासना। तिनका तिनका फाउंडेशन, 2020
3. नन्दा, वर्तिका : तिनका तिनका तिहाड़ : राजकमल प्रकाशन, 2013
4. तिहाड़, डासना और आगरा की जेलों में शूट किए गए वीडियो
5. एबीपी न्यूज : 11 जनवरी, 2016
6. हिंदुस्तान टाइम्स की कवर स्टोरी : 10 जनवरी, 2016 : वैन तलवारर्स ज्वाइंन्ड आर्ट फॉर कॉज़
6. जेल अधिकारी आनंद पांडे से हुई बातचीत
7. बंदी दिनेश गौड़ का वर्तिका नन्दा को लिखा पत्र

❖

लेखिका जेल सुधारक हैं और जेलों में पत्रकारिता को लेकर नए प्रयोग कर रही हैं। देश की जेलों पर एक विशेष शृंखला तिनका-तिनका की संस्थापक। दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्री राम कॉलेज के पत्रकारिता विभाग की प्रमुख
मोबाइल : 9811201839 ई-मेल : vartikalsr@gmail.com

याददाश्त वापस लौट रही है

— अलका सिन्हा

शुरुआती दिनों में वह अपने काम को लेकर कितनी फिक्रमंद रहती थी। उसका डेली टार्गेट पूरा हो जाए, इस बात की उसे कितनी चिंता रहा करती थी। मगर अब ये सब सामान्य बातें हैं। वह कई और बातें सोचते हुए भी अपना टार्गेट पूरा कर सकती है। उसकी उंगलियां मशीनी अंदाज में अपना टार्गेट पूरा कर रही थीं। जहनी तौर पर उसका सारा ध्यान अम्मी पर था। अम्मी के दोनों चेहरे उसके रू-ब-रू थे। एक ओर एक फौलादी शख्सियत थी तो दूसरी ओर एक बेबस किरदार...एक तरफ खनखनाती हुई बिंदास हँसी थी तो दूसरी तरफ दहशत से घुटी एक गुम चीख...वह मन-ही-मन अपनी मसरूफियत को भी कोस रही थी कि अम्मी कब और कैसे इतना बदल गईं और उसे पता भी नहीं चला। आज वह अपनी अम्मी की अच्छी बेटी बनकर उनके साथ बैठेगी, प्यार से उनकी परेशानी सुनेगी। उसने अपने आप में तय किया।

आदमकद शीशे में तरन्नुम ने खुद को सिर से पैर तक निहारा, फिर सधे हाथों से आँखों में सुरमा पिरोया। काजल की डोरी से आँखें चमक उठी थीं। बालों को हल्का-सा बाउंस दे कर उसने टेबल पर पड़ा पर्स उठा लिया और लहराती हुई कमरे से बाहर निकल आई।

"बाय अम्मी," हाथ हिलाकर दरवाजे से निकलने लगी कि अम्मी ने रोक लिया, "जरा सुनना तो एक मिनट।"

"लगा दी न टोक।" तरन्नुम ठहर गई।

तरन्नुम का ऊपर से नीचे तक मुआयना करते हुए अम्मी अटक-सी गईं, "बाल खुले क्यों छोड़ रखे हैं?"

तरन्नुम जब तक कुछ कहती तब तक अम्मी ने अपने बालों की क्लिप खोल कर उसके बालों में लगा दी। फिर जल्दी से टेबल पर पहले से रखी एक 'की-रिंग' तरन्नुम के पर्स की जिप में लटका दी।

"ये क्या है?" तरन्नुम कुछ समझ नहीं पाई।

"देख कितनी तेज धार है इसकी," लगभग फुसफुसाते हुए अम्मी ने की-रिंग को घुमाकर खोल दिया। घुमा देने पर उसकी गोलाकार आकृति सीधी हो गई। फिर उसे आगे की तरफ हल्का-सा दबाया तो वह लगभग तीन इंच लंबे चाकू में तब्दील हो गया।

"इसकी क्या जरूरत है, अम्मी?" तरन्नुम ने चौंककर पूछा।

"कुछ नहीं, फिर भी पड़ी रहने दे, जैसे लिपस्टिक, आई लाइनर वगैरह पड़ी रहती है।" तरन्नुम बहस नहीं करना चाहती थी। वह जल्दी से बाहर निकल आई।

पता नहीं, आजकल अम्मी को क्या हो गया है। अम्मी पहले तो ऐसी नहीं थीं। वे तो कितने आजाद ख्यालात वाली हुआ करती थीं, लड़कियों का हौसला बढ़ाने वाली। तरन्नुम बड़ी शिद्दत से उस अम्मी को तलाशने लगी जिनके पास किसी तरह का शक-शुबा फटक तक नहीं सकता था।

"किसी के डर से ये लड़कियाँ जीना छोड़ दें क्या?" वे दावा ठोक कर पूछतीं।

"लड़ाइयाँ डर कर नहीं, लड़ कर जीती जाती हैं और इन्हें जीतने के लिए हथियार की नहीं, अंदरूनी ताकत की दरकार होती है।" वे लड़कियों का हौसला बढ़ातीं।

हर तरह के इफ एंड बट का जवाब उनके पास हाजिर रहता था। तरन्नुम अपनी कितनी ही सहेलियों की परेशानियों का खुलासा अम्मी से किया करती थी। शुरू-शुरू में उसकी सहेलियाँ एतराज करतीं, "तू हर बात अपनी अम्मी से क्यों कह देती है? तुझे डर नहीं लगता?"

"डर कैसा?" तरन्नुम हैरानी से पूछती, "एक बार अम्मी से बता देने के बाद हमें किसी तरह का डर नहीं रहता, बल्कि इतमीनान रहता है कि अब अम्मी सब संभाल लेंगी।"

तरन्नुम एक लंबी साँस भरती है, पता नहीं, अम्मी को क्या हो गया है? आजकल हर छोटी-बड़ी बात में नुक्ताचीनी करने लगी हैं। वह महसूस करती है, एक अजीब-सी दहशत, एक अजब-सा खौफ हर समय अम्मी के चेहरे पर चस्पा रहता है। एक रोज कहने लगी—बुरका पहनकर कहीं आया-जाया करो। तरन्नुम ने हैरानी से अम्मी की तरफ देखा था। उनके चेहरे पर बेबसी का ऐसा साया था, जैसे कोई अपनी अंतिम ख्वाहिश बता रहा हो। तरन्नुम एकबारगी इस अम्मी को पहचान नहीं पाई। कई तरह के सवाल होंठों पर आकर ठहर गए। लगा जैसे किसी तरह की जिरह-बहस इस अम्मी को और बेबस कर देगी। घर से बाहर निकलते हुए जब वह बुरका पहनने लगी तो अम्मी ने यकबयक रोक दिया, "नहीं, नहीं, बुरका पहनने की कोई जरूरत नहीं।" अपनी ही बात को काटकर कहने लगीं, "जीन्स पहनो, बाल कटवा लो...लड़कों के बीच ऐसे मिल जाओ कि तुम्हारे लड़की होने का पता ही न चले।"

झटके के साथ कैब रुकी और तरन्नुम ने खुद को दफ्तर के अहाते में खड़ा पाया। एक लंबी कहानी, थोड़ी-सी दूरी तय करने में निपट गई। वह अपना कंप्यूटर खोलकर अपनी आज की वर्क-असाइंमेंट देखने लगी। कंप्यूटर की उखड़ी-उखड़ी भाषा...टूटे-टूटे वाक्य...शॉर्ट-कट की शैली..। अब वह इस शैली से अनजान नहीं। शुरू-शुरू में उसे यह भाषा किसी खुफिया कोड की तरह लगती थी जिसे समझने में अक्सर उसे अपने सीनियर्स की मदद लेनी पड़ती थी। मगर अब वह इस भाषा की आदी हो चुकी है। उंगलियाँ की-बोर्ड पर सरपट दौड़ी जा रही थीं। जैसे कंप्यूटर को उसके दिमागी उथल-पुथल से कुछ लेना-देना नहीं था, वैसे ही उसकी उंगलियों को उसके भीतर के तूफान से कोई मतलब नहीं था।

"कमिंग फॉर कॉफी?" शिखा ने कंप्यूटर पर दस्तक दी तो उंगलियों की रफ्तार धीमी पड़ी, किसी के आत्मीय साथ की उसे बेतरह जरूरत महसूस हुई। "सम प्रॉब्लम?" कॉफी टेबल पर उसे गुमसुम देखकर शिखा ने पूछा।

तरन्नुम पसोपेश में पड़ गई कि कुछ कहे या ना कहे। शिखा ने दोबारा उसे झकझोरा तो वह खुद को रोक न सकी। वैसे भी विदेशियों की इस कंपनी में एकाध से ही तो वह अपने मन की बात करती है, अगर उससे भी न कहेगी तो किससे कहेगी?

कहने का मन बनाया, मगर क्या कहे? जिस अम्मी से वह अब तक अपनी सहेलियों की परेशानियाँ भी साझा किया करती थी, आज उसी अम्मी के बारे में अपनी सहेली से डिस्कस करते हुए जुबान लड़खड़ा गई।

"अम्मी इज गेटिंग ओवर सेंसिटिव दीज डेज... आजकल बहुत स्ट्रेंज बिहेव करने लगी हैं..."

"क्या मतलब?" शिखा कुछ समझ नहीं पाई।

"उनके दिमाग में दहशत भर गई है...," गला खंखांसते हुए उसने समझाने की कोशिश की, "हर वक्त एक खौफ से घिरी रहती हैं। कभी बेबसी की उस हद तक चली जाती हैं जैसे उन्होंने कोई भारी जुर्म किया हो और सजा सुनाए जाने का इंतजार कर रही हों... और कभी इतनी दबंग हो जाती हैं कि दुस्साहस की सीमा तक जा पहुँचती है... कभी इतनी हिदायतें दे डालती हैं जैसे कोई बड़ी अनहोनी होने वाली हो, '...देर मत करना, सीधी घर चली आना...', तो कभी हालात पर काबू करने के बड़े अजीब से हल बताने लगती हैं," तरन्नुम ने खुलासा किया, "एक रोज कहने लगीं कि जैसे हम पानी की बोतल साथ लेकर चलती हैं, वैसे ही तेजाब भी साथ लेकर चला करें।"

"हर माँ-बाप अपने बच्चे को लेकर चिंतित रहते हैं, तुझे पता तो है आजकल कितनी बर्बर घटनाएँ हो रही हैं और टीवी चैनल्स जिस तरह उन्हें बार-बार विस्तार से दिखाते हैं कि अच्छे-भले आदमी के मन में दहशत भर जाए...तू उनके मन की हालत समझने की कोशिश कर।" अब शिखा समस्या को समझ पा रही थी।

"अरे, क्या समझने की कोशिश करूँ, कभी बचकर निकलने की सलाह देती हैं तो कभी शरीर के उन हिस्सों के बारे में ताकीद करती हैं जिन पर हमला कर किसी मर्द को बेबस किया जा सकता है।"

शिखा हालात की गंभीरता का अंदाजा बखूबी लगा पा रही थी, फिर भी, उसने तरन्नुम को ढाँढ़स बँधाया, "ट्राइ टु अंडरस्टैंड हर, वो जबरदस्त स्ट्रेस से गुजर रही हैं...वरना वो तो कितनी मॉडर्न और अंडरस्टैंडिंग हुआ करती थीं... कितनी डेयरिंग..."

शिखा स्कूल के समय से तरन्नुम की सहेली थी और वह अम्मी को लंबे अरसे से जानती थी।

तरन्नुम को शिखा की यह तरफदारी भली लगी। दरअसल वह भी यही चाहती थी कि किसी तरह से अम्मी को वाजिब ठहराया जा सके। तरन्नुम यह कभी कबूल नहीं कर सकती थी कि वह खुद या दूसरा कोई भी उसकी अम्मी को गलत करार दे। फिर अम्मी की दिमागी उथल-पुथल का अंदाजा भी उसे था। वह समझ सकती है कि आज अगर अम्मी इस हाल में आ पहुँची हैं तो वे अपने भीतर कैसे हालात से गुजर रही होंगी। उसे शिखा की बात सही मालूम पड़ी। उसकी अम्मी तो कितनी शार्प हुआ करती

क्रमशः ..... पृष्ठ 24 पर

घात-प्रतिघात

— प्रभा ललित सिंह

सरकार को, शासन-प्रशासन को, स्थानीय लोगों को सभी को मिलकर अपनी-अपनी सीमा रेखा का निर्धारण करना होगा और सरकार को फॉरेस्ट डिपार्टमेंट और वाइल्ड लाइफ सेंचुरी के ऊपर काम कर रहे एक्सपर्ट्स का एक पैनल बना कर, अत्याधुनिक उपकरणों की सहायता से इस बात का भी मूल्यांकन करना होगा कि आखिर क्यों बाघ आदमखोर होकर गाँव में घुसपैठ कर रहे हैं क्यों गाँव के लोगों पर ही घात लगाकर उन्हें अपना शिकार बना रहे हैं। उसके कारण क्या हैं? वह बीमार है, बूढ़ा है या फिर किसी और समस्या से ग्रसित, उसकी परेशानी का कारण खोज कर उसका समाधान किया जाए। ताकि वह आदमखोर ना बने और इस तरह स्थानीय गाँव वाले और बेजुबान जानवरों दोनों ही अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में चैन और सुकून के साथ खुशहाल रह सके, आबाद रह सके।

खिमदा। सेना से रिटायर्ड जवान। उम्र के 60वें बरस में भी मजबूत कंधों और रोबीली मूंछों के कारण किसी नौजवान से उन्नीस नहीं था। पहाड़ों में पला-बढ़ा खिमदा आज यहीं के लोगों के लिए जान की बाजी लगाकर जिंदगी और मौत के बीच झूल रहा था। जिला सरकारी अस्पताल के बाहर उसके लिए दुआ मांगने वालों का ताँता लगा था। वह कोई सेलिब्रिटी तो नहीं था लेकिन इलाके के लोगों के लिए आज वह किसी सेलिब्रिटी से कम भी न था।

खिमदा एक शिकारी था। कोई सामान्य शिकारी नहीं बल्कि जंगल में दहशत का पर्याय माने जाने वाले बाघों का शिकारी। अपनी शिकार यात्रा में अब तक वह 32 बाघों को मार कर अपने कौशल का लोहा मनवा चुका था, लेकिन इस बार पासा उल्टा पड़ा और शिकारी खुद शिकार होते-होते बचा था।

बाघ ने मरते-मरते भी खिमदा पर ऐसा वार किया कि उसकी जान पर बन आई।

खिमदा, बाघों का शिकार जरूर करता था लेकिन किसी शौकिया लालच की वजह से नहीं बल्कि इंसानों की जिंदगियों को महफूज रखने के लिए। उन्हें दहशत से निजात दिलवाने के लिए वह सिर्फ आदमखोर बाघों का ही शिकार किया करता था। वह भी तब जब उन्हें काबू पाने की सारी कोशिशें नाकाम हो चुकी होती थीं।

इस बार भी इसी वजह से अपनी जान हथेली पर लेकर वह गाँव वालों की जान बचाने के लिए अपने शिकार की खोज में जंगल में गया था। पिछले हफ्ते ही उसे फॉरेस्ट रेंजर साहब का बुलावा आया था कि उन्होंने सरकार से सभी जरूरी मंजूरियाँ ले ली हैं और उसे तुरंत ही काम पर लग जाना है। काम क्या था यह खिमदा को बताने की जरूरत नहीं थी, क्योंकि वह सालों से इसी काम को करता आ रहा था। इस बार भी उसे एक आदमखोर बाघिन के आतंक का खात्मा करना था जो पिछले कई दिनों से गाँव वालों के लिए खौफ और दहशत का सबब बनी हुई थी।

बाघिन गाँव में मौत बनकर मंडरा रही थी। वह कभी भी, किसी भी वक्त गाँव में घुसती और कुछ ना कुछ अपने साथ लेकर ही लौटती थी। पहले-पहले तो आदमखोर बाघिन ने गाँव के छोटे जानवर जैसे मेमनों, कुत्ते, बछड़े, मुर्गियों और बंदर के बच्चों को अपना शिकार बनाया, फिर धीरे-धीरे उसकी दिलेरी बढ़ती चली गई। अब वह इंसानों को भी अपना निशाना बनाने लगी। कभी गाँव में खेल रहे बच्चे, तो कभी खेतों में काम करती औरतें। कभी घूमने के लिए निकले बुजुर्ग को तो कभी काम पर

निकल रहे नौजवान को। कोई भी इसका शिकार बन सकता था। बाघिन इतनी शातिर थी कि ग्रामीण उसे कोई अभिशप्त आत्मा तक समझने लगे थे।

बाघिन गाँव में 15 लोगों पर हमला कर चुकी थी जिसमें से 10 लोगों की जानें जा चुकी थीं। मौत के मुँह से बाल-बाल बचे पाँच लोग अपने अनुभव बताकर लोगों की दहशत और भी बढ़ा रहे थे। उनके शरीर पर खरोंच और जख्मों के निशान जो कोई देखता काँप जाता।

पूरे गाँव में मातम और भय का माहौल था। 10 लोगों की मौत के बाद चारों तरफ से बस विलाप की ही आवाज सुनाई पड़ती थी। गाँव में फैले मातम से न सिर्फ गाँव वाले बल्किगाँव की पूरी फिजाएँ भी गमगीन थीं। गाँव में फैले भय को देखकर पक्षियों ने कलरव करना छोड़ दिया था। इतराते इठलाते बंदर पेड़ की ऊँची-ऊँची डालियों में भय से छुपे रहते थे। बंदरों में भी बाघिन के आतंक का खौफ इस कदर फैल चुका था कि अब वह गाँव के लोगों के साथ न तो मनुहार करने की हिम्मत जुटा पा रहे थे न ही उनके छतों और उनके आँगनों में सूखते हुए उनके अनाज पलक झपकते ही चुरा कर भाग जाने की हिमाकत दिखा पा रहे थे। डर के मारे बकरियों ने भी मिमियाना बंद कर दिया था। उन्हें डर था कि कहीं उनके मिमियाने की आवाज बाघिन के कानों तक न पहुँच जाए और वह उन्हें शिकार बनाने वहाँ तक न आ धमके। मवेशी अपने-अपने गोठों में बंद भूख से हलकान तो थे लेकिन अपनी गुसानी (मालकिन) को आवाज लगाकर खाना मांगने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। डर से ऊपर के घर में रह रहीं घर की महिलाएँ अपने मवेशियों की भूख का अंदाजा होने के बावजूद भी उन्हें घास डालने के लिए नीचे जाने के पहले डर से मारे सौ बार सोचती थीं। कुल मिलाकर पूरे गाँव में न सिर्फ गाँव वाले बल्कि मवेशी आदि भी भूख और भय से बेहाल थे लेकिन रोने या मिमियाने की आवाजें निकालने की हिम्मत इनमें नहीं बची थी।

गाँव की फिजाओं में चारों तरफ बस मायूसी, दहशत, खौफ फैला हुआ था। कोई माँ अपने बच्चे की फोटो लेकर उसकी पीपल पानी कर रही थी तो कोई बेटा पिता की चिता को मुखाग्नि दे कर लौट रहा था। कोई महिला अपने विधवा होने का मातम मना रही थी तो कोई वृद्ध अपने परिवार के इकलौते चिराग के बुझने का शोक मना रहा था।

हालात इतने बदहाल थे कि लोग जरूरत का सामान लेने के लिए भी घर से निकलने के लिए तैयार नहीं थे। बच्चों का स्कूल जाना बंद था। गाँव में गिनी-चुनी चार दुकानें थीं। दुकानदार उन दुकानों को भी खोलने के लिए तैयार नहीं थे। मजबूरी में अगर किसी को कहीं जाना भी होता तो लोग समूह बनाकर यात्रा कर रहे थे और उसमें भी दहशत हर पल उन पर हावी थी-पता नहीं मौत बनी वह बाघिन कब, कहाँ किस जगह से उन पर हमला बोल दे। सभी लोग अपने पास दरांती और कुल्हाड़ी लेकर चल रहे थे। उन्हें ना तो दिन में चैन और ना ही रातों में नींद।

शिकार पर खिमदा रेंजर से मिली जानकारी के साथ खिमदा वहाँ से निकल गया। काफी कुछ तैयारियाँ उसने पहले से ही कर रखी थीं क्योंकि उसे मालूम था कि देर-सबेर यह काम उसी को करना है। इसके बाद वह गाँव जाकर बाघिन के सुराग ढूँढने में लग गया। सबसे पहले उसने इलाके की रेकी की, फिर सुराग जुटाए कि वह किस वक्त किस इलाके में सबसे ज्यादा हमला करती है। दो-तीन दिनों की कड़ी मशक्कत के बाद आखिरकार उसने अपना पूरा प्लान तैयार कर लिया। फिर वह उन जगहों पर गश्त लगाने लगा जहाँ उसे बाघिन के आने का सबसे ज्यादा अंदेशा था। चौथे दिन ही उसकी मेहनत रंग लाई और वह घड़ी आ पहुँची जिसका उसे और उसकी पूरी टीम को इंतजार था। मशीन भी बाघिन के आसपास होने का ही इशारा कर रही थी। मशीन की सत्यता को सत्यापित कर रही थी पूरी कायनात। पेड़ की ऊँची डालियों पर बैठे बंदर लगातार कॉल दे रहे थे लेकिन इस कॉल में बंदरों का गुस्सा साफ सुनाई दे रहा था। वह अपने दाँतों को किट-किटाकर बेहद गुस्से में किस-किस की आवाज निकाल रहे थे। पक्षी कानों को चीर देने वाले तेज स्वर में गुंजन कर रहे थे। उनके गुस्से और नफरत भरी आवाज से खिमदा ने बाघिन की मौजूदगी को महसूस किया और सरसरी निगाह से आसपास के इलाके का मुआयना किया।

रात के लगभग आठ बजे का समय होगा, हालाँकि अंधेरे ने अपनी चादर को फैला कर पूरे जंगल को अपने आगोश में समेट लिया था लेकिन चाँदनी रात में खिलता हुआ चाँद अपनी रोशनी से पूरे जंगल को नहलाता हुआ मंद-मंद रोशनी बिखेरते हुए खिमदा, पक्षियों और जंगली जानवरों का भी मार्गदर्शन कर रहा था।

बंदर और पक्षियों की ध्वनि जिस ओर इशारा कर रही थी खिमदा ने उस तरफ नजरें गड़ाईं। तभी उसे सामने झाड़ियों में सरसराहट की आवाज सुनाई पड़ी। खिमदा ने ध्यान से देखा झाड़ियों के बीच में उसे दो चमकती हुई आँखें दिखाई दी। खिमदा ने टॉर्च की रोशनी उसके ऊपर डाल दी, जैसे ही रोशनी उसके ऊपर पड़ी झाड़ियों को रौंदती हुई बाघिन सकपका कर

क्रमशः ..... पृष्ठ 26 पर

किधर

— जय वर्मा

बारिश थमने में नहीं आ रही थी। दिसंबर के महीने की ठंड और अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह परेशान होकर सागर के काम से वापिस लौटने का इंतजार करने लगी। उसकी व्याकुलता बढ़ रही थी। वह पापा जी एवं सुमन की बात से हैरान थी और सागर के साथ विचार-विमर्श करना चाहती थी। सागर बरसात में भींगे हुए रेनकोट को उतार कर हैंगर पर टांग ही रहा था कि तनिक काँपी और चिंता में डूबी हुई हिमानी तेज कदमों से सागर के पास पहुँची।

रोते हुए उतावलेपन से बोली, "क्या आपने कुछ सुना है?.... अपने पापाजी और म्यूजिक टीचर सुमन की दोस्ती के बारे में?"

"हिमानी!....क्या बात कर रही हो? यह विचार कब और कैसे तुम्हारे मन में आया?"

लंदन के 'स्विस कॉटेज' रेलवे स्टेशन से प्रिमरोज हिल के पास कैफे में गोपाल आकर बैठ गया। उसकी निगाहें अपने जिप्सी दोस्त मोरिस को बेसब्री से ढूँढने लगीं। आज न जाने क्यों मोरिस को यहाँ पहुँचने में देर हो गयी थी। पत्नी कुमुद की मृत्यु के बाद गोपाल के पास फुरसत ही फुरसत थी। समय की गति मानो रूक ही गयी थी। कैफे में बैठकर दोस्तों से बात-चीत करके अकेलेपन को दूर करने की अब एक आदत सी बन गयी थी।

रेल पुल के पास उस छोटे से कैफे के बाहर चार कुर्सियाँ और एक छोटी गोल मेज पड़ी थीं। अक्सर यहाँ लोग टर्किश कॉफी पीने और शीशे हुक्के का लुत्फ उठाने आते थे। लोगों की भागदौड़ एवं दिनचर्या देखने में समय व्यतीत हो जाता था। प्रिमरोज पार्क से फैलो रोड होते हुए मोरिस यहाँ अपने जिप्सी केरावान से चलकर गोपाल को मिलने आया करता था।

गोपाल ने कार की फैक्ट्री से रिटायर होने के बाद बेटे सागर और बहु हिमानी के साथ मिलकर एक बड़ा साझा घर लंदन में खरीद लिया था। पत्नी कुमुद की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के बाद संयुक्त परिवार में रहने से गोपाल के एकाकीपन में कुछ राहत मिली थी। मोरिस के मिलने से पहले गोपाल घर की खिड़कियाँ एवं पर्दे बंद कर अंधेरे कमरे में बैठा रहता था। जिंदगी के बदलाव को सहन करना आसान न था। वह अपने आपको परिवार के उपर बोझ मानने लगा था। कुछ समय तक बार-बार घड़ी में समय देखते हुए ही वह वक्त गुजारता था।

मोरिस ने फिर से जीवन जीने के ढंग तथा हँसने बोलने के लिए उसे कॉफी हाऊस में कुछ मित्रों से मिलवाया। साल छह महीनों के बाद अजनबी लोग भी संगी-साथी बन गए थे। बीते दिनों की कहानियाँ सुनने व सुनाने वाले कोई न कोई दोस्त शाम के समय गोपाल को मिल जाया करते थे। अपने पोते ध्रुव के साथ खेलने से गोपाल का समय धीरे-धीरे आसानी से बीतने लगा।

विनचैस्टर रोड से आते हुए एक सुंदर अंग्रेज जोड़े को हाथ में हाथ डाले हुए देखकर गोपाल बोले, "कमाल है, इन्हें देखो क्या मस्ती से चले आ रहे हैं?"

"हाँ भई! क्यों नहीं....इनकी मौसी अपनी विल में इनके लिए बहुत बड़ी जायदाद जो छोड़ गयी है। फिर ये दोनों खुश क्यों न हों। दोनों काम करने भी नहीं जाते तथा सुना है

कि औरों के लिए खुले हाथों से बहुत खर्च करते हैं।" मोरिस ने कहा।

"मोरिस हम तो इतना जानते हैं कि जिंदगी में जीने के लिए पैसा जरूरी है लेकिन एक लिमिट तक।" भूखे भजन न होए गोपाला। "पेट भरने के बाद ही इंसान कुछ दान-पुण्य करने की सोचता है। वरना तुम और हम यहाँ क्यों बैठे होते?" दोनों ठहाका मारकर जोर से हँसने लगे।...

"बहुत दिनों से राम को कैफे में नहीं देखा। मालूम होता है अब राम के बेटे की बहू छुट्टियों से वापिस घर आ गयी है, वरना ये जनाब यहाँ घूमते नजर न आते।" पास से गुजरते हुए बुजुर्ग राम को देखकर गोपाल ने कमैंट पास किया।

"तुम्हें याद है गोपाल, कुछ दिनों से बेचारा राम सुपर मार्केट से खाने-पीने की चीजें खरीदकर, बेटे के दोनों बच्चों को प्राइमरी स्कूल से लाने के बाद खाना खिलाता था। फिर बेटे के घर लौटने तक शाम का खाना बनाकर बेटे की राह देखता। दो हफ्तों में ही राम की हालत खस्ता हो गयी थी। ....दोस्तों से गपशप करने के लिए भी तरस गया था।"

"हाँ क्या करें, इस देश में रहकर तो हम सभी का यही हाल है। काम करके बेटे-बहू को भी खुश रखना पड़ता है। जिंदगी में पहले अपने बच्चों का पालन-पोषण और पढ़ाई में समय देना होता है। प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए यूनिवर्सिटी में भेजना पसंद करते हैं। यूनिवर्सिटी की फीस देने के लिए यहाँ की सरकार ने विद्यार्थी ऋण सस्ते ब्याज दर पर देने की सुविधा दे रखी है। इस देश में रहने वाले भारतीय माता-पिता यूनिवर्सिटी की फीस के साथ-साथ किराये के मकान का भुगतान भी स्वयं करना चाहते हैं। बच्चों के लिए मकान खरीदकर देते हैं ताकि बच्चे प्रोपर्टी की सीढ़ी पर चढ़ सकें। इस मामले में हम तो अंग्रेज ही बने रहे। अपने से तो यह सब नहीं हुआ। कार की फैक्ट्री में काम करते हुए इतना पैसा नहीं बचा सके कि बच्चों की पढ़ाई के साथ-साथ उनके लिए मकान भी खरीदकर दे सकें।" गोपाल ने एक लंबी सांस ली।

कैफे के अंदर दूसरे कोने में चाय पीते हुए नवयुवक पीटर को देखकर दबी जबान में मोरिस बोला, "क्या तुमने सुना? पीटर की सगाई टूट गयी है। पीटर और उसकी मंगेतर रेचल किराये के मकान में एक वर्ष से साथ-साथ रह रहे थे। उनके मकान में सूरज का प्रकाश तमाम दिन फैला रहता था।"

"क्या वास्तव में?...तुम्हारा मतलब इंग्लैंड के मकान में और दिन भर उजाला... ?"

"वह मकान वास्तुशास्त्र की दृष्टि से बनाया गया एक मॉडर्न हाऊस था। दरवाजे और खिड़कियों को लगाने में भी वास्तुशास्त्र का ध्यान रखा गया था। लेकिन दुर्भाग्यवश दोनों एक साथ न रह सके। शादी की तारीख जून में होनी निश्चित हो गयी थी। दोनों परिवार के लोग भी बहुत खुश थे। शादी की तारीख पास आने पर पीटर और रेचल ने निर्णय लिया कि वे एक दूसरे के लिए सुयोग्य नहीं हैं। अत: दोनों ने शादी नहीं की। बस केवल दोस्त बनकर रह गए। हनीमून के लिए पीटर और उसकी मंगेतर रेचल ने दुनिया की सैर करने की छुट्टियाँ कुछ महीने पहले ही बुक कर दी थी।"

"फिर हनीमून की छुट्टियों का क्या हुआ?"

"भई होता क्या?.....पेरिस, इंडिया और ऑस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में दो महीने के लिए हनीमून मनाने जा रहे थे। दोनों ने होलीडे कैंसिल करने की बहुत कोशिश की लेकिन ट्रैवल एजेन्सी ने पूरा पैसा वापिस करने से मना कर दिया। अत: ऐसी स्थिति में पैसा न खोकर दोनों एक साथ यात्रा करने चले गये। उन्होंने इंडिया और ऑस्ट्रेलिया पहले कभी न देखा था। जयपुर, आगरा और दिल्ली घूमते हुए ऑस्ट्रेलिया गए। पीटर बता रहा था कि आगरा में ताज महल बहुत अच्छा लगा।"

"इक्कीसवीं सदी में रिश्तों की पारदर्शिता और बातों को निभाना अंग्रेज ही अच्छी तरह समझते हैं। मैं अभी भी ताज महल के प्यार और वायदों के बारे में ही सोच रहा हूँ कि वह मुमताज महल की याद में बनाया गया दुनिया का आज भी एक अद्‌भुत अजूबा है।" दोनों अपने-अपने विचारों में खो गए।

चाय का प्याला उठाकर मोरिस ने चियर्स किया, "मैं तो एक जिप्सी मन-मौजी ठहरा। आज यहाँ तो कल वहाँ। हम लोग तो कैरावान उठाकर जिधर मन करता है उधर निकल पड़ते हैं।बस इस ड्रिंक के बाद मैं घर चलूँगा।"

"इतनी जल्दी,....क्यों क्या हुआ ?"

"अब रेमी भी दोपहरी में सोकर उठ गयी होगी क्योंकि उसके काम पर जाने का समय हो गया है। घर जाकर मुझे खाना भी बनाना है जैसा कि तुम्हें मालूम है कि रेमी को खाना बनाना नहीं आता। क्लब में कैबरे डांसर होने के कारण उसे अपने शरीर को इकहरा और फुर्तीला बनाकर रखना पड़ता है। अगर जरा सा भी वजन बढ़ जाए तो मुसीबत खड़ी हो जाती है। मुझे उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना होता है। अगर उसका वश चले तो वह स्लिम रहने के लिए कुछ भी न खाए। लंदन जैसे शहर में निडर औरत का भी अकेले रहना सहज बात नहीं है।"

रेमी और मोरिस का अद्‌भुत रिश्ता है। रेमी मोरिस के दोस्त सदरलैंड की मंगेतर हुआ करती थी। दस साल पहले सदरलैंड के अचानक घर छोड़कर चले जाने के बाद से अब तक रेमी मोरिस के कैरावान में उसके साथ रह रही है। उसके दोस्त सदरलैंड ने अब तक रेमी की कोई खबर नहीं ली।

मोरिस ने जाते-जाते गोपाल से कहा, "तुम्हारे और सुमन के टेरो काड्‌र्स मैंने पढ़ लिए हैं। मेरे दोस्त, कभी भी सुमन और अपने रिश्ते के बारे में बेटे सागर और बहू हिमानी को बताने के लिए तुम्हें मेरी आवश्यकता पड़े, बुला लेना, मैं हाजिर हो जाऊँगा। रिश्तों को निभाने के लिए सबकी समझदारी आवश्यक है क्योंकि रिश्ते एक तरफा नहीं होते हैं। रिश्तों के चक्रव्यूह से आज तक कोई नहीं बच सका।"

....गोपाल को भी अब अपने पौत्र ध्रुव को म्यूजिक क्लास से पिकअप करना था। ध्रुव सप्ताह में दो बार पियानो टीचर सुमन से पियानो सीखने जाता था। जल्दी से गोपाल ने वेटर को बिल के ऊपर दस प्रतिशत टिप दी तथा कार की ओर बढ़ गया। क्रिसमस फैस्टिवल के कारण सड़क पर ट्रैफिक मिलने की आशा थी। जाते समय सुमन की मनपसंद चॉकलेट और फूलों का गुच्छा भी रास्ते से खरीदकर गोपाल अपने साथ ले गया। सुमन से मिलने की खुशी के कारण चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी थी। सड़क पर पड़ी बर्फ में धीरे-धीरे कार चलाने पर भी गोपाल की कार एडिले रोड पर जाते हुए स्किड हो रही थी, 'आजकल लंदन की कॉउंसिल रोड-टैक्स तो भारी मात्रा में लेती है परन्तु सड़कों पर ग्रिटिंग्स करने में कंजूसी करती है। बड़ी सड़कों पर ही नमक, रेत और बजरी मिलाकर बिखेरी जाती है। लेकिन छोटी सड़कों के बारे में मालूम होता है कि किसी को परवाह ही नहीं है।' गोपाल सतर्कता से कार चलाते समय बड़बड़ा रहा था।

पियानो पर क्रिसमस के गानों की बजती हुई धुन अच्छी लग रही थी। क्रिसमस की सजावट से सजे हुए मेमोरियल हॉल के वेटिंग रूम में वह जाकर बैठ गया। वहाँ बच्चों की प्रतीक्षा करते हुए माता-पिता आपस में एक दूसरे से धीमी आवाज में बात-चीत कर रहे थे।

पियानो की क्लास समाप्त होने पर ध्रुव खुशी से दौड़ता हुआ आया और दादा जी से बोला, "सुमन टीचर ने आज मुझे एक बहुत सुन्दर सफेद टेडी बेयर गिफ्ट में दिया है।"

"लाओ, मैं भी देखूँ,.....सुंदर गिफ्ट है। सफेद टेडी बेयर बहुत ही अच्छा लग रहा है। सुमन टीचर ने क्या सब बच्चों को खिलौने गिफ्ट में दिए हैं ?"

"नहीं दादाजी, किसी और को नहीं, बस केवल मुझे दिया है।"....खुशी के साथ उछलते-कूदते ध्रुव ने कहा।

अगले दिन इतवार को मम्मी ने ध्रुव का कमरा साफ करते हुए एक नया सफेद टेडी बेयर उसके बिस्तर पर पड़ा देखा....। हिमानी को अचंभा हुआ क्योंकि प्रायः वह शिक्षात्मक खिलौने स्वयं खरीदती थी।

'यह किसका टेडी बेयर हो सकता है? शायद कोई दोस्त छोड़ गया होगा? ध्रुव के घर वापिस आने पर पूछूँगी।' हिमानी की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

"यह टेडी बेयर तुम्हें कहाँ से मिला?....किसका है यह?" मम्मी ने कंप्यूटर पर व्यस्त गेम खेलते हुए ध्रुव से पूछा।

"मेरी पियानो टीचर सुमन ने मुझे गिफ्ट में दिया है।"

"शाबाश!....क्या तुम म्यूजिक में फर्स्ट आए हो ?"

"नहीं मम्मी,....नहीं, सुमन टीचर ने यह गिफ्ट केवल मुझे ही दिया है।" वह अपने खेल में मग्न था।

"तुम्हें ही क्यों ?" सवाल करते हुए मम्मी ने पूछा। "क्या दादा जी को इसके बारे में जानकारी है ?"

"हाँ मम्मी,....उन्हें सब मालूम है, क्योंकि सुमन टीचर मेरे दादा जी की अच्छी फ्रैंड हैं दोनों की अच्छी दोस्ती है।" गेम खेलते हुए सिर ऊपर उठाये बिना ध्रुव ने जवाब दिया।

"तुम दादाजी की दोस्ती की बात इतने विश्वास के साथ कैसे कह सकते हो?...." हिमानी आश्चर्यचकित थी।

"ओफ..... कल शाम दादा जी ने सुमन टीचर को फूलों का बड़ा गुच्छा और चॉकलेट का बॉक्स गिफ्ट में दिया था।"

"तुम्हें खबर है कि तुम क्या कह रहे हो?" दृढ़ होकर ऊँची आवाज में माँ बोली।

"हाँ मम्मी यह बात बिल्कुल सही है।"

"तुम सदैव सच बोलते हो। तुम्हारी शिकायत मैं दादा जी से नहीं करूँगी। अगर कोई और बात है तो मुझे बताओ?" माँ ने प्यार से बहला-फुसलाकर पूछा।

ध्रुव ने झल्लाकर कहा, "मम्मी वे दोनों मेरी क्लास खत्म होने के बाद बहुत देर तक आपस में बातें करते रहते हैं। इसलिए कभी-कभी हम घर वापस लौटने में लेट भी हो जाते हैं।"

लाख कोशिश करने के पश्चात भी हिमानी पापा जी और सुमन की दोस्ती वाली बात को मन से निकाल नहीं पा रही थी। ध्रुव की कही हुई बात रह-रह कर उसे याद आ रही थी।

'बात तो अचरज की है लेकिन मुझे नहीं भूलना चाहिए कि प्यार के लिए कोई भी उम्र नहीं होती। जितना मैं इस बारे में सोचती हूँ उतना ही मैं उलझ रही हूँ। सागर के सामने यह बात कहूँ या न कहूँ?....मुझे यकीन नहीं आ रहा है कि यह बात सच है। लेकिन इतना सब हो जाने के बाद मैं अकेली कैसे इस गुत्थी को सुलझाऊँ? बात बेकार की भी हो सकती है लेकिन सागर से तो बात करनी ही होगी।' हिमानी परेशान थी और ध्रुव के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे।

बारिश थमने में नहीं आ रही थी। दिसंबर के महीने की ठंड और अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह परेशान होकर सागर के काम से वापिस लौटने का इंतजार करने लगी। उसकी व्याकुलता बढ़ रही थी। वह पापा जी एवं सुमन की बात से हैरान थी और सागर के साथ विचार-विमर्श करना चाहती थी। सागर बरसात में भींगे हुए रेनकोट को उतार कर हैंगर पर टांग ही रहा था कि तनिक काँपी और चिंता में डूबी हुई हिमानी तेज कदमों से सागर के पास पहुँची।

रोते हुए उतावलेपन से बोली, "क्या आपने कुछ सुना है?....अपने पापाजी और म्यूजिक टीचर सुमन की दोस्ती के बारे में?"

"हिमानी!....क्या बात कर रही हो? यह विचार कब और कैसे तुम्हारे मन में आया?"

सारा किस्सा बताते हुए हिमानी ने रहस्यमयी ढंग से अपनी चिंता व्यक्त की। "इन सब बेकार की बातों का तुमने विश्वास कैसे कर लिया?" छाता बंद करके एक तरफ रखते हुए सागर ने माथे पर शिकन लाकर गुस्से से कहा।

"मैं तो यह सब जानकर जड़ हो गयी हूँ। क्या पापा जी ने कभी तुमसे इस बारे में कोई बात की है?" उत्तेजित होकर हिमानी ने पूछा।

"नहीं, ऐसी कोई बात मुझसे कभी नहीं की।...." सिर हिलाते हुए गंभीर मुद्रा में सागर सोच में डूब गया।

हिमानी ने नए सफेद टेडी बेयर का गिफ्ट सागर को दिखलाकर ध्रुव के साथ हुई सब बातें बताते हुए तेज स्वर में कहा, "इस बारे में हमें पापाजी से बात कर लेनी चाहिए, यह सीरियस मामला है।"

"यह कैसे संभव है? बात बेतुकी लगती है। वे इस तरह के तो नहीं हैं। परन्तु पापा जी की खुशी और नाराजगी का ध्यान हमें हमेशा रखना होगा।" सागर ने धीरे से कहा।

"यह सोचकर ही मेरे तो दिल की धड़कन बढ़ रही है कि पापा जी से कैसे बात की जाए। बातों ही बातों में कहीं हमारे रिश्तों में आँच न आ जाए? अग्नि भड़कने में क्या देर लगती है? मैं तो आखिर बहू ठहरी।"

"मेरा सुझाव है कि हम ठंडे दिमाग से इस समस्या का हल सोचें। अफवाह बहुत तेजी से फैलती है। हमें सोच समझ कर कदम उठाना होगा।" वह विश्वास लेकिन घुटी आवाज में बोला।

"ध्रुव पर इसका क्या असर होगा? तुमने सोचा है कभी?" बेटे की चिंता करते हुए हिमानी बोली।

"सही समय होने पर सब ठीक हो जाएगा मुझे पूर्ण विश्वास है।"

"परंतु सही समय कब आएगा? खामोशी से बैठे रहना भी समझदारी न होगी।" एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया।

"हमें धैर्य से काम लेना होगा। इधर-उधर की बातों में न पड़कर हमें सच्चाई जान लेनी चाहिए। अधीर होने से कोई फायदा नहीं।" सागर समझाते हुए बोला।

"दबाव में मेरा सीना फटने को हो रहा है।" माँ को याद करके हिमानी की आँखों से आँसू टप-टप गालों पर गिरने लगे।

अगले दिन घर में तनाव था। हिमानी का घर के काम में मन नहीं लग रहा था। ध्रुव के भविष्य का सवाल बार-बार सामने आकर खड़ा हो जाता था। वह असमंजस में थी कि स्कूल से ध्रुव को लाने के लिए पापा जी को भेजें या नहीं?

"अब ध्रुव के लिए कोई दूसरा म्यूजिक स्कूल ढूँढ़ना होगा। सागर जब तक हमें दूसरा म्यूजिक स्कूल न मिल जाए तब तक मैं स्वयं ही ध्रुव को छोड़ने और लेने जाऊँगी।"

"वकील की तरह हम पापा जी से सवाल-जवाब नहीं करेंगे। सुमन का आकर्षण मालूम नहीं वास्तविक है या नहीं।....हिमानी मैं फिर से दोहराता हूँ कि हम पापा जी को किसी दोस्त से मिलने के लिए मना नहीं करेंगे। पापा जी ने जिन्दगी जी है। उन्हें अच्छे बुरे की पहचान है।" सागर ने आश्वासन देते हुए हिमानी का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"हम पापाजी के स्विस कॉटेज कैफे में रोजाना मिलने वाले किसी भी दोस्त को नहीं जानते ताकि उनसे मिलकर उनसे कुछ पूछताछ कर सकें।"

"हमें सुमन और उसके परिवार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। क्या वह अकेली है? उसकी स्थिति कैसी है? उसके साथ कौन-कौन रहते हैं?" सागर बोला।

'अब तो क्रिसमस की छुट्टियाँ है। इसके बाद मैं स्वयं ही सागर को बताए बिना ध्रुव के म्यूजिक स्कूल में जाकर स्थिति का अंदाज लगा आऊँगी। सुमन ने बाएँ हाथ की रिंग फिंगर में कोई अँगूठी पहन रखी है या नहीं? इसका पता मैं लगा कर मानूँगी।' हिमानी मन ही मन विचार करने लगी। "हमें पापाजी के स्वयं बताने की पहल का इंतजार करना चाहिए? बहुत सवाल सामने आकर खड़े हो गए हैं। अगर सुमन ने हमारी माँ की जगह ले ली तो माँ की आत्मा को दुख पहुँचेगा। माँ की यादों का क्या होगा?" सागर निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता रहा।

"हमारा आधा घर भी पापा जी के नाम है। उनकी वसीयत के अनुसार मकान ध्रुव को मिलेगा। अगर पापा जी ने घर का अपना हिस्सा बेचकर छोटा कोई एक फ्लैट लेना चाहा तब हमें भी मकान को बेचना पड़ेगा, लंदन में तो मकानों की कीमत आसमान को छूती हैं।" हिमानी चिंतित हो उठी।

"अगर वह हमारे साथ रहने के लिए आ गयीं तो हम साथ में कैसे रह सकेंगे? हम सुमन को क्या कह कर बुलायेंगे?"

"पड़ोसियों को कैसे मुँह दिखाएँगे? रिश्तेदारों और दोस्तों को क्या जवाब देंगे?" सब रिश्तों में हिमानी को उलझनें दिखाई देने लगीं।

"अगर हम समझदारी से पापाजी को अपनी बात कहें तो शायद वे हमसे नाराज न होंगे। जिस बात को हमने समस्या बना लिया है, हो सकता है कि इसमें कुछ भी न हो? मैं नहीं चाहता कि पापा जी को किसी और औरत से मिलने के लिए हम मना करें।" सागर ने परिपक्वता से कहा।

"अगर हमने हौसला दिया तो पापा जी के इरादे कहीं ज्यादा बुलंद न हो जाएँ?" रोकर थर-थर गले से हिमानी भड़ककर बोली।

"अगर यह बात सही हुई तो क्या हम आगे बढ़कर पापाजी का कंधा थप-थपाते हुए उन्हें गले लगा सकेंगे?" एक समझदार बेटे की तरह सागर बोला।

"प्रश्नों के उत्तर पापा जी से बात करने के बाद ही मिल सकेंगे।" हिमानी गंभीर थी।

"मुझे यकीन है कि परिवार को दाँव पर लगाकर पापाजी प्यार के मार्ग पर नहीं चलेंगे। शायद थोड़े दिन के बाद उनका उत्साह कम हो जाए....फीका पड़ जाए...., या फिर...."

❖

3, डॉर्मी क्लोज, नॉटिंघम, एन.जी. 93 डी.ई., यू.के.
मोबाइल : +44772548128

..... पृष्ठ 16 का शेष **(याददाश्त वापस लौट रही है)**

थीं, कैसे उसकी हर बात कहने से पहले ही समझ लिया करती थीं। होस्टल में रहते हुए कई बार ऐसा हुआ था कि उसने फोन पर सिर्फ 'हलो' कहा और अम्मी ने पूरा ऐक्स-रे खींच दिया, "कोई परेशानी है क्या... ?" या फिर, "सोई नहीं क्या रात भर ?" अम्मी कैसे पल भर में जान लेती थीं कि कब उसकी चिंता फ्रेंड्स को ले कर है, कब पेपर अच्छा न हो पाने की है या फिर, कब उसकी तबियत खराब है। फिर चाहे उनका कितना ही जरूरी असाइंमेंट क्यों न हो, वे उसके साथ इतमीनान से बात करतीं कि वह रिलैक्स हो जाए। और ये भी सच है कि कैसी भी परेशानी क्यों न रही हो, एक बार अम्मी से बात कर लेने के बाद छूमंतर हो जाती, वह खुद को कितना हल्का महसूस करने लगती।

आज अम्मी परेशानी में हैं, तरन्नुम ने सोचा, अपने हालात से वे अकेली जूझ रही हैं...ऐसे वक्त उसे उनके साथ खड़े होना चाहिए, उन्हें रिलैक्स करना चाहिए।

"हलो अम्मी, क्या कर रही हैं आप ?" कैफेटेरिया से चलते हुए उसने अम्मी को फोन मिला दिया।

"कौन ? तरन्नुम ? क्या हुआ बेटे ?" अम्मी ने पहली ही घंटी पर फोन उठा लिया और सवालों की झड़ी लगा दी।

"होगा क्या, बस यों ही फोन कर लिया।" तरन्नुम ने लाड़ जताते हुए कहा। "यों ही तो तू कभी फोन नहीं करती...सब ठीक तो है न ?" अम्मी की आवाज में बेचैनी थी।

तरन्नुम फोन करके पछता रही थी। उसने गलत सोचा था कि अपनी सलामती की खबर देकर वह अम्मी को रिलैक्स कर पाएगी। अब वह शाम तक बेचैन रहेंगी। एक कशमकश के साथ वह अपनी सीट पर वापस लौट आई।

शुरुआती दिनों में वह अपने काम को लेकर कितनी फिक्रमंद रहती थी। उसका डेली टार्गेट पूरा हो जाए, इस बात की उसे कितनी चिंता रहा करती थी। मगर अब ये सब सामान्य बातें हैं। वह कई और बातें सोचते हुए भी अपना टार्गेट पूरा कर सकती है। उसकी उंगलियां मशीनी अंदाज में अपना टार्गेट पूरा कर रही थीं। जहनी तौर पर उसका सारा ध्यान अम्मी पर था। अम्मी के दोनों चेहरे उसके रू-ब-रू थे। एक ओर एक फौलादी शख्सियत थी तो दूसरी ओर एक बेबस किरदार...एक तरफ खनखनाती हुई बिंदास हँसी थी तो दूसरी तरफ दहशत से घुटी एक गुम चीख... वह मन-ही-मन अपनी मसरूफियत को भी कोस रही थी कि अम्मी कब और कैसे इतना बदल गईं और उसे पता भी नहीं चला। आज वह अपनी अम्मी की अच्छी बेटी बनकर उनके साथ बैठेगी, प्यार से उनकी परेशानी सुनेगी। उसने अपने आप में तय किया।

घर पहुँच कर तरन्नुम ने पहला काम यही किया कि चाय के प्याले के साथ वह अम्मी के पास जा बैठी। उसे लग रहा था जैसे वह बरसों बाद अम्मी से मिल रही हो। कितनी बदल गई हैं अम्मी, तरन्नुम ने पाया उनके चेहरे पर चिंता की अनगिनत लकीरें उभर आई हैं...आँखों के नीचे काले घेरे दिखाई देने लगे हैं...बालों में सफेदी झनझना आई है...वह किसी उपेक्षित बच्ची-सी मालूम पड़ रही हैं, अम्मी की इस हालत के लिए तरन्नुम खुद को जिम्मेदार महसूस कर रही है...तरन्नुम को याद नहीं आता कि अम्मी कभी भी उससे इस तरह बेजार रही हों...तरन्नुम ने जज्बाती हो कर अम्मी के गले में अपनी बाँहें डाल दीं...

अम्मी शायद किसी गहरी सोच में डूबी थीं। वे इस अचानक की प्रतिक्रिया के लिए तैयार नहीं थीं, "क्या हुआ मेरी बच्ची," वे जैसे नींद से जगीं। उन्होंने तरन्नुम की बाहें हल्के हाथ से हटा दीं और दहशत पर प्यार की परत चढ़ाते हुए सवालिया नजरों से उसका चेहरा टटोलने लगीं, "किसी बात की फिक्र मत कर, मैं हर हाल में तेरे साथ हूँ..."

अम्मी की यह आश्वस्ति बिन कहे भी तरन्नुम के साथ थी, बल्कि बेमौके की तसल्ली पाकर वह थोड़ा अन्यमनस्क हो आई।

"हरदम किस सोच में डूबी रहती हैं आप ?" तरन्नुम ने बात शुरू करनी चाही। मगर तरन्नुम की बात से अम्मी के चेहरे पर चिंता की लकीरें और गहरा गईं। कोई बात जैसे जबान पर आते-आते ठहर गई, आँखों में अजीब-सी दहशत उतर आई। अम्मी की आँखें तरन्नुम के चेहरे के आर-पार देख रही थीं। तरन्नुम एक पल को सामना नहीं कर पाई इस तीर नजर का।

"ऐसे क्या देख रही हैं अम्मी ?" तरन्नुम हताशा से भर गई। उसकी हर कोशिश अम्मी की चिंता को घटाने के बदले बढ़ा रही थी।

"जो भी कुछ हुआ है, बेखौफ बता... किसी बात की चिंता मत कर।" अम्मी की यह तस्वीर अपने पहले की तस्वीर से बिलकुल अलग थी। एक पल को लगा जैसे तरन्नुम को अपनी खोई हुई अम्मी वापस मिल गई हों जिनसे अपनी हर तरह की परेशानी बता कर वह बेफिक्र हो जाया करती थी। मगर आज पता नहीं कौन किसको तसल्ली दे रहा था।

"आप इतनी चिंता क्यों करती हैं ? आपकी ये घबराहट मुझे पागल बना देगी।" तरन्नुम ने समझाने की कोशिश की। अम्मी ने उसे कलेजे से लगा लिया, "बता बेटे, बता...क्या हुआ है ?"

"फिलहाल तो कुछ नहीं हुआ अम्मी, मगर क्या होने का इंतजार कर रही हैं आप, बताइये ?" और सब्र नहीं रख सकी तरन्नुम।

"..." अम्मी तरन्नुम के चेहरे को देख कर सहम गईं।

"क्या लगता है आपको, क्या हुआ होगा?" तरन्नुम की आवाज तल्ख हो आई।

"..." अम्मी ने जुबान पर आ रही बात को थूक के साथ निगल लिया।

"क्यों सोचती रहती हैं आप हरदम उल्टा-सीधा?" तरन्नुम ने अपनी आवाज को भरसक नरम बनाते हुए अम्मी को प्यार से समझाया, "क्यों हरदम कुछ गलत होने की आशंका से डरी रहती हैं आप... ? जब हमने किसी का गलत नहीं किया तो हमारे साथ गलत क्यों होगा?"

"मैंने गलती की है..."

"अम्मी, क्या कह रही हैं आप? क्या गलत किया है आपने?"

"वो उस दिन, दामिनी वाली घटना के रोज...मैं लाल बहादुर शास्त्री इंस्टीट्यूट से वापस लौट रही थी..." अम्मी की आँखें यादों की परत उधेड़ने लगीं, "मेरी गाड़ी लगभग उसी समय उसी रास्ते से निकल रही थी... मैंने देखा भी था, सफेद रंग की एक चार्टर्ड बस को अपने सामने से निकलते हुए..."

"ऐसी कितनी ही बसें दिन भर सड़कों पर घूमती रहती हैं..." तरन्नुम ने कहना चाहा, मगर अम्मी ने बीच में ही रोक दिया, "नहीं, ये वही बस थी क्योंकि जिस तरह वह अपनी लेन से अंदर-बाहर होती हुई चल रही थी कि मेरा ध्यान उस तरफ गया भी था...आह...वह बच्ची उस वक्त उनकी हैवानियत का शिकार हो रही होगी...हमने देखकर भी नहीं देखा, वह बच्ची मदद के लिए पुकार रही होगी...हमने सुन कर भी नहीं सुना...उसकी दर्दनाक चीखें सर्द राहों में गूंज रही होंगी...ऐन उसी वक्त मैं उस रास्ते से निकल रही थी पर मुझे क्यों न सुनाई दी उसकी दर्द भरी आवाज?" अम्मी अपनी हथेली पर सिर पटक रही थीं।

"सर्दियों की रात थी, खिड़कियों के शीशे बंद कर रखे होंगे, क्या पता स्टीरियो भी चल रहा होगा...ऐसे में उसकी आवाज..."

"वही तो, वही तो हमारी गलती है, हम कैसे आँख-कान बंद कर म्यूजिक सुनना गवारा कर सकते हैं जबकि हमारी बच्चियाँ घर न लौटी हों...वे अपनी अस्मत की लड़ाई में अकेली पड़कर भी उनसे मुकाबला करती रहीं और हम कारों के शीशे चढ़ाकर घर लौट आए...क्या पता हममें से कोई एक भी उसकी मदद को आ जाता तो ये सब न घटता..." अम्मी फफक पड़ीं।

तरन्नुम अम्मी को समझाना चाहती थी कि इस घटना में उनका कोई कसूर नहीं है मगर वह कुछ सुनने को तैयार ही नहीं थीं।

"वह रोज आती है मेरे पास...और आगाह करती है कि अगर अब भी नहीं जगे तो ऐसे हादसे रोज होंगे और कोई नहीं बचेगी... एक-एक कर सबका नंबर आएगा..." अम्मी की आँखों में दहशत थी।

"ये आपका वहम है अम्मी..." तरन्नुम ने समझाने की कोशिश की।

"तुमने सुना नहीं, दूसरे ही दिन नोएडा में एक और लड़की दरिंदगी का शिकार हुई...और वो पाँच साल की बच्ची के साथ जो किया गया? वे कभी किसी लड़की पर तेजाब फेंक देते हैं तो किसी के अंदर रॉड घुसेड़ देते हैं... और कब तक इसे वहम का नाम देती रहोगी?" अम्मी की आँखें घात में बैठी बिल्ली की तरह चमक रही थीं।

"सुन रही हो दरिंदों के कदमों की आहट? वो हर तरफ दौड़ रहे हैं...हर गली, हर कूचे में...वो घर में घुस-घुस कर लड़कियों की इज्जत लूटेंगे, फिर मारकर फेंक देंगे... एक-एक को मारेंगे...इसलिए हमले को तैयार रहो..."

अम्मी अपने आपे में नहीं थीं और एकतरफा संवाद बोले जा रही थीं कि तरन्नुम ने रोक दिया, "रिलैक्स अम्मी, इनके डर से हम जीना छोड़ दें क्या?" तरन्नुम ने दावा ठोका, "ये लड़ाइयाँ डर कर नहीं, लड़ कर जीती जाती हैं...और इन्हें जीतने के लिए हथियार की नहीं, अंदरूनी ताकत की दरकार होती है..." तरन्नुम की निगाह अपने बैग में लटकते की-रिंग पर जा टिकी थी, उसने उसे अपने हाथ में ले लिया और दबाकर खोलने-बंद करने लगी।

"आप हरगिज चिंता न कीजिए, हम अपनी लड़ाई के लिए तैयार हैं।" उसकी उंगली में चाकू वाला छल्ला गोल-गोल घूम रहा था। "जिस दामिनी की बात आप कर रही हैं वह तो हमारे भीतर है...कहीं वह वीरा है तो कहीं निर्भया, कहीं वह अमानत है, तो कहीं तरन्नुम...ये दरिंदे हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

अम्मी जैसे अर्से बाद कोई बेखौफ चेहरा देख रही थीं और हैरानी से महसूस कर रही थीं, ये तो उन्हीं का चेहरा है...ये तो उन्हीं के अल्फाज हैं...ऐसा तो वे कहा करती थीं...अम्मी को लग रहा था, उनकी याददाश्त वापस लौट रही है...।

❖

कथाकार-कवयित्री
371, गुरु अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं-2, सेक्टर-6, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मोबाइल-9868424477 ई-मेल : alkasays@gmail.com

..... पृष्ठ 18 का शेष **(घात-प्रतिघात)**

खड़ी हो गई। चाँदनी की रोशनी में खिमदा और उसकी टीम के सदस्यों ने देखा लगभग 9 फुट लंबी लगभग डेढ़ सौ किलो की विशालकाय बाघिन उनसे कुछ ही दूरी पर खड़ी अपनी हिंसक आँखों से उनको घूर रही थी।

स्वर्ण-सी चमकती उसकी काया और उस पर भूरे रंग के बड़े-बड़े गोल धब्बे उसे निहायती खूबसूरत बना रहे थे। जितनी खूबसूरत उतनी ही शातिर और खूँखार। पुराने सुरागों के आधार पर खिमदा को पहचानने में एक पल भी नहीं लगा कि यह वही आदमखोर बाघिन है जिसने पिछले कुछ दिनों में 10 लोगों को मौत के घाट उतारा है। उसकी कद- काठी देखकर कुछ पलों के लिए तो खिमदा के भी होश उड़ गए। साथ के लोग घबरा कर पीछे हट गए। बाघिन अपनी चमकती आँखों से खिमदा को घूर रही थी। उसे अंदेशा हो चुका था कि उस पर खतरा मंडरा रहा है। उसने दो कदम पीछे किए और तुरंत ही अपने बचाव के लिए आक्रमण की मुद्रा अपना ली। खिमदा भी चौकन्ना हो गया। उसने तानी हुई बंदूक से बाघिन पर निशाना साधा। इस वक्त मौत दोनों के सिर पर सवार थी। दोनों आमने-सामने थे। पलक झपकते ही बाघिन ने हवा में लंबी छलांग लगाई और सीधे खिमदा पर टूट पड़ी। उसके छलांग लगाते ही खिमदा ने बन्दूक की ट्रिगर दबा दी। धांय-धांय की आवाज के साथ बंदूक ने आग उगली और तीन लगातार गोलियाँ चलीं।

उसने बाघिन के ऊपर 3 राउंड फायर किए थे लेकिन बाघिन की किस्मत ने उसका साथ दिया। जिंदगी में पहली बार खिमदा का निशाना चूक गया। गुस्से से गुर्राती बाघिन खिमदा पर झपटी। खिमदा के गले के पास भीषण दर्द हुआ। बाघिन वहाँ अपने नुकीले दाँत गड़ा चुकी थी। निशाना चूकते ही वह इस प्रहार के लिए तैयार था। खिमदा ने बंदूक के कूंदे से ही उस पर एक जोरदार प्रहार किया और दूसरी तरफ कूद पड़ा। खिमदा उसके शिकंजे में फँसने से बाल-बाल बचा। भाग्य ने एक दफा खिमदा का भी साथ दिया। बाघिन ने भागने की कोशिश नहीं की मानो आज वह ठान चुकी थी कि वह आज खिमदा को उसके दुस्साहस पर सबक सिखा कर ही रहेगी। एक बार फिर दोनों आमने-सामने थे..गुस्से से खौलती बाघिन और जख्मी खिमदा। इससे पहले कि बाघिन अपना शिकार दबोचती, जख्मी खिमदा ने लहूलुहान होते हुए भी फुर्ती दिखाई। बंदूक में बची तीन गोलियाँ बाघिन के पेट, गले और सिर के पास दाग दी। इस दफा खिमदा का तजुर्बा काम आया और कुछ ही पलों में अब तक कई लोगों को मौत के घाट उतारने वाली आदमखोर बाघिन उसके सामने ढेर हो चुकी थी। आखिरकार खिमदा ने उसे मार डाला। टीम के लोग अभी भी दहशत और खौफ से काँप रहे थे।

सफेद पड़ चुके उन लोगों की हालत ऐसी थी कि मानो काटो तो खून ही नहीं। किसी को भी खुद की सलामती पर यकीन नहीं हो रहा था। न ही यह लोग विश्वास कर पा रहे थे कि वे जिंदा बच गए हैं, बाघिन मारी जा चुकी है। सभी लोगों ने अपनी नंगी आँखों से अभी-अभी मौत को सामने खड़ा देखा था, जिसके बाद वे अपने बचने का शुक्र मना पाने की भी स्थिति में नहीं थे। गले से लगातार बहते हुए खून को रोकने के लिए खिमदा ने अपने गले के पास अपनी हथेली लगाकर उसे रोकने की कोशिश की, लेकिन खून का बहाव बहुत ज्यादा था। वह बेहोश होने लगा। तुरंत ही उसके सहयोगियों में से जड़ी-बूटी के जानकार ने अपनी योग्यता से उसका प्राथमिक उपचार किया और उसे उठाकर सरकारी अस्पताल ले गए और भर्ती करवा दिया। अब तक खिमदा के जख्मी होने और आदमखोर बाघिन के मारे जाने की खबर गाँव में आग की तरह फैल चुकी थी।

बाहर लोगों का हुजूम उमड़ा था। सभी खिमदा की सलामती के लिए दुआ कर रहे थे। थोड़ी देर बाद ही डॉक्टर ने बाहर आकर उन्हें बताया कि खिमदा अब खतरे से बाहर है लेकिन अभी वह होश में नहीं आया है। सभी ने ऊपर वाले का शुक्र मनाया। चैन की साँस लेते हुए अपने-अपने घरों को रवाना हुए। अगले दिन सुबह पौ फटते ही लोग एक के बाद एक खिमदा का हाल-चाल जानने के लिए सरकारी अस्पताल आने लगे। लोग-बाग उसकी बहादुरी और दिलेरी की तारीफें करते नहीं थक रहे थे। आज भी सरकारी अस्पताल के बाहर मेले जैसा माहौल था।

इसी भीड़ में गाँव के सरपंच अपने 22 वर्षीय बेटे शुभम के साथ खिमदा का हालचाल जानने पहुँचे। खिमदा होश में आ चुका था और अब वह बात-चीत की हालत में था। सरपंच ने उसे देखकर कहा-कैसी तबीयत है अब तुम्हारी खिमदा ?

-ठीक है सरपंच साहब।

-तुमने तो कमाल कर दिया, शेर के आगे आखिरकार बाघिन ढेर हो ही गई! खिमदा मुस्कुराया और बोला बड़ी खूँखार बाघिन थी सरपंच जी! क्या बताऊँ बड़ा नाक में दम किया। बड़ी मुश्किल से काबू में आई।

सरपंच-हमें तो तुम्हारी काबिलियत पर पहले से ही बहुत भरोसा था। हमें मालूम था जो तुम शिकार पर निकलोगे, तो शिकार करके ही लौटोगे।

खिमदा-वह सब तो ठीक है सरपंच जी! लेकिन थोड़ा यहाँ तो आओ तुमसे कुछ जरूरी बात करनी है।

सरपंच को अपने करीब बुलाया, सरपंच जैसे ही उसके करीब पहुँचा धीमे से स्वर में वह बोला जरा एक बीड़ी तो जला दो, दो कश मार लूँगा, तो सारी थकान जाती रहेगी। सरपंच ने चौंकते हुए उसे देखा और बोला तेरा दिमाग खराब है क्या खिमदा। इमरजेंसी वार्ड में एडमिट है तू! अभी-अभी मौत के मुँह से निकला है। तू बीड़ी पीने की बात कर रहा है खिमदा।

अरे क्या सरपंच जी मौत-मौत लगा रखी है। ठीक हो गया हूँ मैं। जलाओ ना एक बीड़ी, दो कश तुम मारो और दो मैं मारता हूँ। सरपंच जी बोले-एक बार ठीक हो कर घर आ जा फिर बीड़ी तो क्या पऊआ भी कहेगा तो तुझको पिला दूँगा।

ठीक है-अब आराम कर। यह मेरा बेटा है शुभम, दिल्ली से आया है। इसका बहुत मन था तेरे से मिलने का, यह वाइल्ड लाइफ सेंचुरी पर काम कर रहा है तुझसे मिलकर कुछ बात करना चाहता था, इसलिए इसे भी अपने साथ ले आया और तू उसके साथ बैठ और इस से बातें कर। मुझे पंचायत घर में थोड़ा सा काम है मैं वह काम निपटा कर आता हूँ। सरपंच वहाँ से निकल गए और उनका बेटा शुभम पास ही में रखी हुई एक टूटी हुई लकड़ी की कुर्सी पर बैठते हुए बोला पैयलाग काका...कैसे हो? अब खिमदा ने जवाब दिया-ठीक हो गया हूँ अब तो लेकिन मुई बाघिन साली जाते-जाते गले में निशान दे गई। कोई बात नहीं यह भी ठीक हो जाएँगे।

शुभम-पूरे गाँव में आज आप ही के चर्चे हैं। आप ही के जलवे, लेकिन मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि इस बेजुबान जानवर को मारने के बाद आप को जरा सी भी आत्मग्लानि नहीं होती कि आपने एक निहत्थे, एक बेजुबान जानवर की हत्या कर दी।

खिमदा बोला-मुझे खुद भी इन बेजुबान जानवरों को मारना अच्छा नहीं लगता लेकिन जब बात आती है एक बेजुबान जानवर और कई इंसानों की जिंदगी के बीच की तो हमें इंसानी जिंदगियों के हक में फैसला लेना पड़ता है। फिर आदमखोर हो चुके बाघों को मारना ही पड़ता है। वह आवेश में आकर बोला वरना यह तो जानवर है यह एक के बाद एक पूरी मानव जाति को ही मार कर खा जाएँगे! गाँव के गाँव पूरी तरीके से उजड़ जाएँगे। ऐसे में तुम ही बताओ कि कैसे हम ऐसे आदमखोर बाघ को मासूम जिंदगियों को तबाह करने के लिए यूँ छोड़ सकते हैं। तुम शहर में रहते हो बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ते हो इसलिए तुम शहर की ही तरह बात करोगे।

मैं अभी पिछले हफ्ते की ही बात बताता हूँ। हमारे ही गाँव में मधु नाम की एक गरीब महिला अपने आँगन में बने चूल्हे पर शाम को रोटियाँ सेंक रही थी। शाम का लगभग 7 ही बज रहा होगा। उसके तीन बच्चे 12 साल का बेटा मुन्ना 10 साल की बेटी बेबी और 7 साल का बेटा सोनू आँगन में ही खेल रहे थे। मुन्ना और बेबी पकड़म-पकड़ाई का खेल खेलते हुए आँगन में ही दौड़ रहे थे और सोनू माँ के पास ही बैठा था। सोनू को भूख लगी थी, उसने अपनी माँ से खाना माँगा। मधु बोली बस दो रोटी और बनानी है बेटा यह रोटियाँ बना लूँ फिर तुम्हें खाना देती हूँ। उसने सहमति में गर्दन हिला दी और माँ अंतिम रोटी बेलने लगी जैसे ही उसने रोटी तवे पर डाली और तवे की सिकीं रोटी निकाल कर आग में पकने के लिए डाली, सामने से बाघिन के रूप में मौत सोनू पर झपट पड़ी। एक ही छलांग में उसे दबोच कर वहां से भाग गई, सोनू को चिल्लाने तक का भी मौका नहीं मिला। किसी साए के एहसास में मधु का ध्यान सोनू की तरफ खींचा और वह अचानक बस अपने बेटे को बाघिन के जबड़ों में फँसा हुआ देखकर उसके भागने की साक्षी ही बन सकी। यह सब कुछ इतनी जल्दी हुआ कि उसके गले से चीख तक नहीं निकल सकी। कुछ पलों बाद जैसे ही उसे चेत आई, उसने चूल्हे से ही जलती हुई लकड़ी उठाई और भागती हुए बाघिन की तरफ फेंकी जो अपने जबड़े में सोनू को दबाए हुए छलांग लगाकर जंगल की तरफ भाग रही थी। लेकिन इससे पहले की लकड़ी बाघिन को लगती बाघिन उसके कलेजे के टुकड़े को लेकर उसकी आँखों से ओझल हो गई। मधु जोर-जोर से रोने लगी, उसकी चीख-पुकार सुनकर सभी गाँव वाले वहाँ पर इकट्ठा हो गए। उसने रो-रो कर सबको पूरा वाकया सुनाया। फिर मशाल लेकर समूहों में गाँव वाले बाघिन की खोज में निकल पड़े। इधर मधु को तो जैसे कोई चेत ही नहीं थी, वह बदहवास पागलों जैसी हरकतें करने लगी थी।

चूल्हे से रोटी उठाती और सोनू...सोनू कह कर उसी दिशा में दौड़ पड़ती जिस तरफ बाघिन गई थी। बदहवास सी वह बोले जा रही थी- मेरे बेटे ने मुझसे खाना मांगा था, वह भूखा था। उसे भूख लगी थी, मैं माँ होकर भी उसका पेट ना भर सकी, उसे रोटी ना खिला सकी। बाघ ने मेरे बेटे को मारकर खा लिया होगा मेरा बेटा भूखा ही बाघ की भूख मिटाने का साधन बन गया। क्यों नहीं दी मैंने अपने बेटे को रोटी-क्यों नहीं! वह विलाप कर अपने बेटे को याद करती रो पड़ती। वह अपने बेटे का नाम ले रही थी। रोटी हाथ में लिए कभी वह बेहोश हो जाती..कभी होश में आती। जैसे ही वह होश में आती वैसे ही फिर से अपने बेटे के

बारे में पूछती। फिर वह सब वाकया याद आते ही दहशत डर वेदना से सिहर कर फिर बेहोश हो जाती।

होश में आते ही वह कहती–कोई मेरे सोनू को रोटी दे कर आ जाओ, वह भूखा है.. वह खाना मांग रहा था। उसका दारुण रुदन जो भी सुनता उसका दिल दर्द से छलनी छलनी हो जाता। बाघिन के इस तरह सोनू को उठाकर ले जाने से सारा गाँव तो दहशत में था लेकिन मधु के विलाप से बने दारुण माहौल ने उसे और भी ज्यादा गंभीर बना दिया था। पूरी रात मशालें जलाकर गाँव के लोग सोनू को ढूँढते रहे। उन्हें कहीं भी सोनू का कोई भी सुराग नहीं मिला।

सुबह–सवेरे ही गाँव के एक आदमी ने आकर बताया कि गधेरे के पास ही सोनू का शव पड़ा हुआ है। सभी गाँव वाले भागे–भागे वहाँ पहुँचे और वहाँ पहुँचकर सामने जो मंजर था उसे देख कर गाँव वालों की आँखें फटी की फटी रह गई। किसी की भी हिम्मत नहीं हुई कि वह आगे बढ़कर सोनू के क्षत–विक्षत अधखाये शव को हाथ लगाए। बाघ ने सोनू की साँस नली को अपने नुकीले दाँतों से जकड़ कर उसे मार डाला था। तुम्हें तो पता ही होगा कि किस तरीके से बाघिन अपने शिकार को मार डालती है। उसने सोनू के श्वास नली को अपने नुकीले दाँतों से काट लिया था जिससे सोनू के शरीर के अंदर की खून की आपूर्ति बंद हो गई और उसकी मौत हो गई। बाघ इसी तरीके से अपने शिकार को दबोच कर मार डालते हैं। उसने सोनू को भी ठीक उसी तरीके से अपना शिकार बनाया था।

शुभम बोला–काका, यह भी तो हो सकता है ना कि बाघिन को कलर ब्लाइंडनेस की वजह से सोनू को पहचानने में गलती हो गई। दोनों बच्चे आँगन में दौड़ रहे थे और माँ के पास अकेला यही बच्चा बैठा था। शायद बाद में अनुमान लगाया हो कि शायद वो किसी बंदर या फिर किसी जानवर का छोटा बच्चा है इसीलिए गलतफहमी में उसने झपट कर सोनू को दबोच लिया और मार दिया। लेकिन उसके मरने के बाद उसका मांस खाते ही बाघिन को यह पता चल गया होगा कि जिस शिकार की तलाश में वह थी वह यह नहीं है। इसीलिए उसने उसे आधा खा कर छोड़ दिया और वहाँ से चली गई। आप ही बताइए ना कि एक बाघिन को एक वक्त में खाने के लिए कितना मांस लगता है। अगर उसे इंसान का मांस ही खाना था तो बच्चे का मांस उसके लिए बहुत कम था। लेकिन उसने उसे भी पूरा नहीं खाया और उसे छोड़कर चली गई। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि अपने कलर ब्लाइंडनेस के कारण उसने गलतफहमी में सोनू को उठा लिया।

खिमदा–तुम्हारी सहानुभूति जानवरों के लिए बिल्कुल जायज है कि गलतफहमी के चलते यह दुर्घटना हुई होगी। लेकिन जरा एक बार दूसरी तरफ उस माँ के बारे में भी तो सोचो, उस परिवार के बारे में भी तो सोचो जिसने अपने बेटे को खोया है। तुम्हें मजेदार बात बताता हूँ इस केस में सरकारी नियमों के तराजू में रोती बिलखती माँ के लिए, उसके बेटे के लिए, उसके जिगर के टुकड़े के लिए कीमत लगाई गई है सिर्फ 3 लाख रुपए।

सरकार ने पैसा देकर सोनू की जिंदगी की कीमत चुका दी, क्योंकि हमारे देश में एक जानवर की जान की कीमत एक इंसानी जिंदगी की कीमत से कई गुना ज्यादा है। गाँव वालों ने बहुत विरोध किया धरना प्रदर्शन हुआ, लेकिन प्रशासन ने उस बाघिन को आदमखोर करार नहीं दिया। घटना को दो दिन ही बीते थे कि इसी गाँव में एक दंपत्ति एक विवाह समारोह से लौट कर आ रहे थे, शाम के चार बजे का वक्त था, रोड के पास ही उनका घर था। उनकी गाड़ी रुकी और वह गाड़ी से उतरकर ड्राइवर को पैसे देने लगे। उनके 6 साल का बेटा मनोज अकेले ही घर की तरफ दौड़ पड़ा, घर महज 100 मीटर की दूरी पर था, रोड के इस तरफ माता–पिता खड़े थे और दूसरी तरफ दादा–दादी। बच्चा दौड़ कर अपने दादा–दादी के पास पहुँच कर उन्हें गले लगा लेना चाहता था। माता–पिता इधर से दौड़ते हुए अपने बच्चे को देखकर मुस्कुरा रहे थे और सड़क के दूसरी तरफ दादा दादी अपनी बांहें फैलाए अपने पोते को अपनी बाहों में समेट लेने के लिए बेचैन थे। लेकिन इससे पहले की पोता अपने दादा–दादी की बाहों तक पहुँचता, मौत के रूप में बाघिन उस पर झपट पड़ी। पलक झपकते ही उसे अपने जबड़े में उठाए उन्हीं की आँखों के सामने गायब हो गई। न माता–पिता कुछ कर सके और न ही दूसरी छोर पर खड़े दादा दादी। सभी अवाक थे। सभी हैरान थे कि आखिर कैसे उन्हीं लोगों के सामने मौत बनी बाघिन आई और उनके घर का चिराग पलक झपकते ही बुझा दिया। वहाँ पर फिर वही चीख–पुकार, वही खौफ, वही दहशत। बच्चे की खोज हुई और उसके बाद फिर वही आधी खाई हुई लाश मिली।

तीन दिनों में इंसान को मारकर खाने की यह इस इलाके की दूसरी घटना थी लिहाजा लोगों में आक्रोश और दहशत पहले से कहीं ज्यादा था। इस दफा तो गाँव वालों ने प्रशासन से पंगा लेने का पूरा मन बना लिया था। अब वह किसी बलिदान के लिए तैयार नहीं थे। मनोज के माता–पिता ने सरकार से अपने बेटे की मौत का मुआवजा स्वीकार नहीं किया, ना ही उसका अंतिम संस्कार किया। वे लोग अपने बेटे की क्षत–विक्षत लाश को लेकर चौक पर ही बैठे रहे, इस मांग के साथ कि जब तक प्रशासन इस बाघिन को आदमखोर करार देकर इसे मार नहीं डालती वह अपने बच्चे का दाह संस्कार नहीं करेंगे। आखिरकार मामले की गंभीरता को देखते हुए प्रशासन से

उस बाघिन को आदमखोर करार दिए जाने का आश्वासन मिला, और फिर उसे मारने के लिए मेरी नियुक्ति की घोषणा हुई। लेकिन सरकारी कागज पत्र और अनुमति मिलने में भी काफी समय लग गया जब तक कि सरकार की तरफ से अनुमति मिलती बाघिन हर पल अपना खौफ इस गाँव में बढ़ाती जा रही थी।

इसी बीच उसने खेतों में काम कर रही एक महिला पर वार कर दिया लेकिन इस दफा महिला की किस्मत थोड़ी अच्छी थी कि उसके हाथ में कुदाल थी, उसने कुदाल बाघिन के मुँह पर दे मारी और जोर से चिल्लाने लगी। उसकी आवाज सुनकर गाँव की अन्य महिलाएँ वहाँ पर इकट्ठा हो गईं। भीड़ और शोर देखकर बाघिन भाग गई। स्थानीय महिलाओं ने वहाँ से जख्मी महिला को उपचार के लिए तुरंत अस्पताल भेजा। दोपहर में तो इस महिला को छोड़कर बाघिन जंगल में भाग गई थी लेकिन शाम को ही उसने काम से लौट रहे एक नवयुवक को अपना शिकार बना लिया। उसके बाद अगली सुबह फिर एक और शिकार। जब तक कि सरकारी कागज और आदेश मिलते आँख-मिचौली का यह खेल चलता रहा। लोग इसका शिकार बनते रहे। लोगों का आक्रोश अपने चरम पर था और लगातार बाघिन का शिकार बनने वालों की संख्या बढ़ रही थी। कुल मिलाकर जब गाँव में मरने वालों का आँकड़ा 10 के पार हो गया, तब कहीं जाकर सरकार के पास से आदेश पास हो सका कि अब इस बाघिन को मार डालना ही बेहतर है।

क्या अब भी तुम यही कहोगे कि हमें वन्य जीव सुरक्षा के मद्देनजर अगर बाघ आदमखोर भी हो जाए तो उसे पूरी छूट दे देनी चाहिए। आम बेबस लोगों को उसका निवाला बनते रहने देना चाहिए। अब तक अवाक होकर सुन रहा शुभम बोल उठा-काका यह भी तो हो सकता है ना कि बाघिन बहुत बूढ़ी हो गई हो या फिर उसके शरीर में अभी अपनी शक्ति ही ना बची हो कि वह जंगल में रहकर वन्यजीवों का शिकार करे, अपना भरण-पोषण कर सके, या फिर ऐसा भी हो सकता है कि उसके पैर में कोई काँटा चुभ गया हो और वह दौड़ पाने में भी समर्थ न हो या फिर किसी अन्य शारीरिक बीमारी से वह जूझ रही हो। ऐसे में वह बेचारी कैसे जिंदा रहने के लिए संघर्ष करेगी, क्या खाएगी, कैसे जिएगी, इसीलिए शायद वह ऐसी जगह का रुख कर रही थी जहाँ उसे आसानी से उसका शिकार मिल जाए। उसे शिकार पकड़ने के लिए बहुत ज्यादा दौड़ना भी ना पड़े।

खिमदा-कारण चाहे जो भी हो लेकिन किसी भी बाघ के लिए हम इंसानी जिंदगियों को निवाला नहीं बना सकते। एक आदमखोर बाघ के लिए तो आम लोगों के जीवन की आहुति नहीं दी जा सकती।

शुभम ने तर्क दिया-काका यह बात भी तो सच है ना जंगल जानवरों के लिए हैं और इंसान ने वहाँ घुसकर उन्हें तकलीफ पहुँचाई है। पूरा प्राकृतिक प्रारूप गड़बड़ा दिया है। इसमें इंसान ने अपने स्वार्थ और अपनी लालसाओं की भेंट जंगल को चढ़ा दिया। जंगली जानवरों को बेघर कर दिया। कभी अपने लालच तो कभी अपने घूमने-फिरने के मंसूबों, अपने मनोरंजन के लिए इंसानों ने पहले जानवरों की सीमा में घुसपैठ की। हमेशा से ही इंसान अपने अलग-अलग स्वार्थों के लिए जंगल में जाते रहे। कभी शिकार के लिए, कभी खाने के लिए, कभी शौक के लिए, तो कभी प्रकृति को नुकसान पहुँचाने के लिए। जब आप किसी के इलाके में घुसकर उसे परेशान करोगे तो वह भी फिर आपके इलाके में आकर आपको सबक सिखाएगी। यही तो बाघिन ने भी किया है न।

-न तो इंसान जंगल में घुसपैठ करता न बाघ गाँव में आते।

खिमदा-तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है बेटा। इंसान ने अपने स्वार्थ के चलते जंगलों को नुकसान पहुँचाया है। उसी का खामियाजा आज यह मासूम स्थानीय लोग और गाँव वाले उठा रहे हैं। लेकिन कुछ स्वार्थी लोगों के किए गए स्वार्थपूर्ण कदमों के बदले पूरी की पूरी बस्ती के लोगों को उसकी कीमत चुकानी पड़े या उसका खामियाजा भुगतना पड़े यह भी तो ठीक नहीं।

-भोले गाँव वालों का इन सब में क्या कुसूर है।

शुभम ने तर्क जारी रखते हुए कहा-अच्छा काका आप मुझे एक बात तो बताइए कि आप कैसे पहचानते हैं कि यह अमुक बाघ है और इसी ने गाँव के तमाम लोगों पर हमला किया है?

खिमदा-शारीरिक संरचना, कद काठी, उसके शरीर का रंग, उस पर पड़े डॉट्स, उसके पंजों के निशान से उनका आकार, कद-काठी से पता लगाना पड़ता है कि जिस बाघ का हम शिकार कर रहे हैं यह वही है। काफी सारी आईडेंटिफिकेशन और जाँच पड़ताल के बाद ही गोली चलाई जाती है।

-इतना आसान नहीं है किसी भी बाघ पर गोली चला देना। बहुत ही ज्यादा कड़े कायदे और कानून हैं सरकार के। इसके लिए काका आप कैसे ट्रेस करते हैं कि बाघ कहाँ हो सकता है।

खिमदा-तजुर्बा लगता है बेटा। जंगल की अपनी एक अनोखी ही दुनिया होती है जहाँ सब का अपना एक अलग-अलग सिस्टम होता है बाघ को ट्रेस करने के लिए बहुत सारी चीजें बहुत सारा सिस्टम हमारी मदद करता है। हमें बता देता है कि बाघ हमें कहाँ मिलेगा।

–अच्छा कैसे पता चलता है बताइए ना। शुभम ने कौतूहल से पूछा।

–इस मुहिम में जंगल खुद ही हमारा मार्गदर्शन करता है। सबसे पहले तो हम पानी के स्त्रोतों को देखते हैं कि घने जंगल में पानी के स्त्रोत कहाँ–कहाँ हैं। शिकार करने के बाद बाघ जंगल में पानी पीने जरूर जाएगा या तो आकर वह वहाँ से गुजर चुका होगा। अगर वह अपनी प्यास बुझा कर वहाँ से चला गया होगा तो आसपास उसके बिखरे हुए बाल हमें वहाँ पर मिल जाते हैं। मिट्टी भरे रास्तों पर उसके पंजों के निशान हमें बता देते हैं कि वह किस दिशा में कितना वक्त पहले गया है। लेकिन बड़ी बारीकी से उनका निरीक्षण करना पड़ता है और सही निरीक्षण से यह पता चल जाता है कि पंजे के चिह्न कितने पुराने हैं?

शुभम के पास तो न जाने ऐसे कितने सैकड़ों सवाल थे जिनके जवाब वह काका से एक ही बार में जान लेना चाहता था।

–बहुत सरल है बेटा यह जानना कि बाघ कितनी देर पहले पानी पीकर इस पानी के स्त्रोत से गया है। उबड़- खाबड़ रास्तों पर गीले पंजों के निशान मिले होंगे, तो कुछ ही वक्त पहले वह वहाँ से गुजरा होगा। अगर निशान सूख गए हों तो उससे अनुमान लगाना पड़ता है कि उस तरफ से बाघ को गए हुए कितना समय गुजर चुका होगा।

शुभम–बाघ को सामने खड़ा देखकर आपको डर नहीं लगता काका।

खिमदा–(हँसते हुए) डर नहीं लगता, हाँ लेकिन गन का ट्रिगर दबाते हुए यह महसूस जरूर होता है कि मैं क्यों और कैसे इस बेजुबान जानवर को मार सकता हूँ। लेकिन तुरंत ही फिर आँखों के आगे रोती बिलखती उन माँओं का चेहरा आ जाता है जिन्होंने अपने कलेजे के टुकड़ों, अपने लालों को खोया है तो फिर ट्रिगर अपने आप दब जाता है।

शुभम–आपकी टीम में कितने लोग रहते हैं काका?

खिमदा–यूँ तो अमूमन 5 लोगों की टीम बनती है जिनमें एक शिकारी, एक पक्षी विशेषज्ञ, एक वनस्पति विशेषज्ञ, एक रसोइया, एक पशु विशेषज्ञ रहता है और इन सभी के सहयोग और उन अनुभवों से हम लोग हमारे निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचकर आदमखोर बाघ का अंत कर देते हैं।

शुभम–यह सब तो ठीक है काका लेकिन इंसानों की तुलना में बाघों का अनुपात बेहद कम है। इसी तरह अगर लगातार बाघों को मारा जाता रहा तो फिर वह दिन दूर नहीं जब बाघ हमारे आने वाली नस्लों के लिए डायनासोर की तरह सिर्फ कहानियाँ बनकर रह जाएँगे या फिर सिर्फ चित्रों में दिखाई देंगे।

खिमदा–मैन एनिमल कनफ्लिक्ट। यह काफी गंभीर विषय है इस पर पहले भी कई दफा बातचीत हुई है। लेकिन अब सिर्फ बातचीत से हल नहीं निकलेगा बल्कि सरकार को पूरे देश को, देश के हर नागरिक को व्यक्तिगत रुचि लेकर इनके कारण और उसके समाधान पर विचार करना होगा, उनका समाधान भी खोजना होगा।

शुभम–काका! मुझे तो लगता है कि बाघों को मारना नहीं चाहिए बल्कि सिर्फ बेहोश करके कब्जे में लेकर परीक्षण करना चाहिए कि उसकी समस्या क्या है। अगर वह बीमार है किसी रोग से ग्रसित है तो उसका इलाज करके और जब वह स्वस्थ हो जाए तो उसे वापस उन्हें जंगल में छोड़ देना चाहिए।

खिमदा–चलो मान लिया, चलो मान लिया कि किसी बीमारी या अन्य परेशानी की वजह से बाघों ने गाँव का रुख किया था, लेकिन वह बीमारी और परेशानी खत्म हो जाने के बाद फिर वह गाँव का रुख दोबारा कभी नहीं करेंगे। और इंसानी जिंदगी को अपना निशाना नहीं बनाएँगे इस बात की क्या गारंटी है। आखिरकार वह है तो जानवर ही न।

शुभम काका मुझे लगता है कि अब समय आ गया है कि केवल राज्य या राष्ट्र स्तर पर ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर मानव जनित इन समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया जाए और कुछ कड़े और बड़े कदम उठाए जाएँ।

सरकार को, शासन–प्रशासन को, स्थानीय लोगों को सभी को मिलकर अपनी–अपनी सीमा रेखा का निर्धारण करना होगा और सरकार को फॉरेस्ट डिपार्टमेंट और वाइल्ड लाइफ सेंचुरी के ऊपर काम कर रहे एक्सपर्ट्स का एक पैनल बना कर, अत्याधुनिक उपकरणों की सहायता से इस बात का भी मूल्यांकन करना होगा कि आखिर क्यों बाघ आदमखोर होकर गाँव में घुसपैठ कर रहे हैं क्यों गाँव के लोगों पर ही घात लगाकर उन्हें अपना शिकार बना रहे हैं। उसके कारण क्या हैं। वह बीमार है, बूढ़ा है या फिर किसी और समस्या से ग्रसित, उसकी परेशानी का कारण खोज कर उसका समाधान किया जाए। ताकि वह आदमखोर न बने और इस तरह स्थानीय गाँव वाले और बेजुबान जानवरों दोनों ही अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में चैन और सुकून के साथ खुशहाल रह सके, आबाद रह सके।

❖

पत्रकार एवं साहित्यकार
8, गंगाधर अपार्टमेंट, नियर ज्योतिबा फुले गार्डन
स्वावलंबी नगर, नागपुर मोबाइल : 8329338906
ई–मेल : prabhasingh2209@gmail.com

भारतीय संस्कृति, मूल्यबोध एवं विश्व मानवता

— प्रियंका यादव

धार्मिक समन्वय और अपने विचारों को अपनाते हुए अन्य की मान्यताओं का सम्मान भारतीय संस्कृति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य रहा है। यहाँ भजन और गजल में ज्यादा भेद मालूम नहीं पड़ता और आधुनिक सिनेमा ने इस भेद को और कम करने का सराहनीय कार्य किया है। इसीलिए महेंद्र कुमार मिश्रा भी भारतीय मूल्यबोधकी बात करते हुए लिखते हैं कि "धार्मिक सहिष्णुता और विचार की स्वतंत्रता" भारतीय संस्कृति के मूल्यबोध हैं। लचीलापन एवं सहिष्णुता की प्रकृति ने भारतीय संस्कृति को दीर्घायु और स्थायित्व प्रदान किया, संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में पायी जाती है। इसीलिए प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हिंदू धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित जीवन पद्धति की संज्ञा दी गई। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुई तब किसी न किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदान कर इसकी सहिष्णुता को एक नयी आभा से मंडित किया।

'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'—इकबाल

यही स्थिति भारतीय संस्कृति के संदर्भ में भी कही जा सकती है, क्योंकि मिश्र, यूनान और रोम में प्राचीन सभ्यताओं की निरंतरता कायम नहीं रह पायी, परंतु भारत में भारतीय संस्कृति की निरंतरता एवं अक्षुण्णता को कुछ परिवर्तनों के साथ सहज देखा जा सकता है। भारत में हम प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं की छाप देख सकते हैं, क्योंकि यहाँ कभी सीमाओं को स्वीकार ही नहीं किया गया। इस निरंतरता एवं गतिशीलता के प्रमुख कारण के रूप में कहा जा सकता कि भारत में अनेक मानव समुदायों के मध्य विशेष तरह के पारस्परिक संबंध रहे हैं तथा यह संबंध एवं उनकी विशिष्टताएँ लगातार भारतीय संस्कृति को मजबूत आधार स्तंभ प्रदान करते हुए उसे टूटने से बचाते रहे हैं। भारतीय संस्कृति के मूल्यबोध तथा विश्व मानवता के विषय पर चर्चा करने से पूर्व यदि संस्कृति की अवधारणा को समझ लिया जाए तो उचित होगा। समाज और जीवन के विकास के मूल्यों की सम्यक संरचना अर्थात समाज में अंतर्निहित गुणों और उच्चतम आदर्शों के समग्र रूप को संस्कृति कह सकते हैं, जो उस समाज की प्रथाओं, चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन, आचरण, नृत्य, गायन, साहित्य, वास्तुकला, स्थापत्य तथा विभिन्न भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है। यदि 'संस्कृति' के शाब्दिक अर्थ को देखें तो इसका अर्थ होता है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति।

जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि 'संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है, परंतु संस्कृति के लक्षण देखे जा सकते हैं। संस्कृति एक अनवरत मूल्यधारा है। इस मुख्यधारा में संस्कृति की दूसरी धाराएँ मिलती जाती हैं तथा उनका समन्वय होता जाता है। इसीलिए किसी जाति या देश की संस्कृति उसी मूल रूप में नहीं रहती, बल्कि समन्वय से वह और अधिक संपंन तथा व्यापक हो जाती है'। यूनेस्को के अनुसार संस्कृति को आमतौर पर कला का रूप माना जाता है। संस्कृतियाँ अपने मूल अर्थ में भले ही अमूर्त हों, किन्तु वे जब

भी खुद को प्रकट करती हैं तो प्रतीक, नायक और अनुष्ठान आदि भी गढ़ती जाती हैं। अर्थात संस्कृति के मूर्त और अमूर्त दो पहलू हैं अमूर्तता स्वयं को मूर्तता में भी व्यक्त करती है। जैसे स्थापत्य, कला, चित्रकारी, संगीत तथा अनुष्ठान आदि। दरअसल संस्कृति का निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, बल्कि इसके निर्माण में युग-युगांतर लग जाते हैं। यह एक आत्मिक गुण की तरह है जो मनुष्य स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन। ई.बी. टायलर कहते हैं 'संस्कृति एक जटिल संपूर्ण है, जिसमें समस्त ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नीति, विधि, रीति-रिवाज तथा वे अन्य योग्यताएँ समाहित हैं, जिन्हें मनुष्य किसी समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है'[1] मैथ्यूओर्नोल्ड के अनुसार 'विश्व में जो कुछ उत्तमोत्तम कहा गया या जाना गया है उससे स्वयं को भिज्ञ कराना ही संस्कृति है'।[2]

भारतीय संस्कृति

या कोई भी संस्कृति हो हमेशा एक समान नहीं रह सकती, क्योंकि समय एवं परिस्थितियाँ बदलने के साथ-साथ संस्कृति में उतार चढ़ाव तथा परिवर्तन आते रहते हैं यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में भी हड़प्पा संस्कृति से लेकर वैदिक, उत्तर वैदिक, बौद्ध, जैन, सिद्ध, नाथ, कबीर और तुलसी की समृद्ध परंपरा रही है। अत: "सृष्टि के आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति अपना विकास करती रही है...इस बीच हमारी संस्कृति को कई बार उजड़ने तथा पुन: बसने का मौका मिला"[3] यदि हम भारतीय संस्कृति के मूल्यबोध को समझने का प्रयास करें तो मालूम होता है इसके आंतरिक मूल्यबोध ही वह वजह हैं जो भारतीय संस्कृति के लिए सदियों से प्राणतत्व के रूप में कार्य करते रहे हैं। जैसे उदारता, सहिष्णुता, मानवीयता, सहनशीलता, समन्वय का भाव, स्वीकार का भाव, अनुकूलन की क्षमता ग्रहणशीलता की दृष्टि, परिवर्तन का अभिवादन, आध्यात्मिकता के साथ-साथ भौतिक जीवन का समन्वय एवं कर्म का महत्व, आशावादिता को प्रोत्साहन, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, नैतिक मूल्यों को महत्व, तथा विश्वबंधुत्व कि भावना आदि।

यही कारण है कि सदियों से आज तक भारतीय संस्कृति अनेकता में एकता का सुंदर उदाहरण पेश करती दिखती है। भारतीय समाज में व्याप्त सांस्कृतिक एकता, समन्वय और स्वीकार की एक झलक इस प्रकार समझ सकते हैं कि 'मध्ययुग में उधर हिंदू और मुसलमान राजाओं की टक्कर होती थी, लेकिन मुसलमान बृजभाषा में कृष्ण काव्य लिख रहे थे और हिंदू मुसलमान पीरों और फकीरों की पूजा कर रहे थे समाज अपने में किसी बाधा को स्वीकार नहीं करता चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक'।[4]

धार्मिक समन्वय और अपने विचारों को अपनाते हुए अन्य की मान्यताओं का सम्मान भारतीय संस्कृति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य रहा है। यहाँ भजन और गजल में ज्यादा भेद मालूम नहीं पड़ता और आधुनिक सिनेमा ने इस भेद को और कम करने का सराहनीय कार्य किया है। इसीलिए महेंद्र कुमार मिश्रा भी भारतीय मूल्यबोध की बात करते हुए लिखते हैं कि "धार्मिक सहिष्णुता और विचार की स्वतंत्रता" भारतीय संस्कृति के मूल्यबोध हैं।[5] लचीलापन एवं सहिष्णुता की प्रकृति ने भारतीय संस्कृति को दीर्घायु और स्थायित्व प्रदान किया, संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में पायी जाती है।

इसीलिए प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हिंदू धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित जीवन पद्धति की संज्ञा दी गई। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की

स्थिति निर्मित हुई तब किसी न किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदान कर इसकी सहिष्णुता को एक नयी आभा से मंडित किया। इस दृष्टि से प्राचीन काल में बुद्ध और महावीर के द्वारा, मध्यकाल में शंकराचार्य, कबीर, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभु के माध्यम से तथा आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, राजराम मोहन राय, ज्योतिबाफुले, महात्मा गाँधी आदि के द्वारा किए गए प्रयास भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण धरोहर बन गए।

सहिष्णुता के मूल्य के कारण ग्रहणशीलता के मूल्य को प्रोत्साहन मिला भारतीय संस्कृति में यहाँ के मूल निवासियों के समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण आदि भी यहाँ की संस्कृति में घुल मिल गए। अरबों, तुर्कों और मुगलों के माध्यम से भारत में इस्लामी संस्कृति का आगमन हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा और नवागत संस्कृतियों से अच्छी बातों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया। हुमायूँ कबीर ने ग्रहणशीलता के इसी गुण को परिलक्षित करते हुए ठीक ही कहा है कि भारतीय संस्कृति की कहानी एकता और समाधानों का समन्वय है। इसके साथ अन्य मूल्य बोध के रूप आध्यात्मिकता और भौतिक जीवन के समन्वय का दृष्टिकोण है, क्योंकि यहाँ आश्रम व्यवस्था के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों का विशिष्ट स्थान रहा है। इससे स्पष्ट होता कि भारतीय संस्कृति व्यावहारिकता को अपनाती है अर्थात केवल परलोक की ही नहीं, वरन इहलोक का भी ध्यान रखा गया है।

भारतीय संस्कृति के मूल्य संयोजन तथा उदारता वाले तत्व इस कदर मजबूत रहे हैं कि सभी समुदाय और इनकी सारी सांस्कृतिक विशिष्टताएँ इस तरह मिल गयी हैं कि आज उनमें से किसी को हम उनके मूल रूप में साफ साफ पहचान भी नहीं सकते। हालाँकि, समय-समय पर कहीं राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि तो कहीं वंचना के भाव के कारण एवं क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा अतिराष्ट्रवाद के कारण भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता को ठेस पहुँची लेकिन जनमानस इस सहिष्णुता को पुनर्जीवित करता रहा है। इस सबके अतिरिक्त एक सबसे महत्वपूर्ण मूल्य जो भारतीय संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करती है वह यह है कि भारतीय आदर्शों में बाहरी वस्तुओं के स्थान पर आंतरिक उपलब्धियों पर अधिक बल दिया गया है। इससे भारत के धर्म और दर्शन में संतोष, आत्मनियंत्रण, नि:स्वार्थ भाव आदि केंद्रीय मूल्य बन गये। भारतीय संस्कृति में न तो हिंसा के लिए कोई स्थान है और न ही नफरत या बैर के लिए। भारतीय संस्कृति अपने मूल्यों में विश्व मानवता की अवधारणा को समेटे हुए है।

यहाँ विश्व शांति एवं 'बसुधैवकुटुंबकम' की बात की गयी है। इसी विश्व मानवता वाली भारतीय संस्कृति का परिणाम है कि भारत के संविधान एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भी वैश्विक शांति एवं मित्रता को बल प्रदान किया गया है। भारतीय संस्कृति के मूल्य बोध एवं विश्व मानवता के दृष्टिकोण के कारण ही अंतरराष्ट्रीय जगत में अहिंसक, मानवता प्रेमी, न्यायप्रिय तथा मानवीय मूल्यों को अपनाने वाले देश के रूप में भारत देश की छवि उभरी है। "भारत का एक विश्व परक दृष्टिकोण है और वह सम्पूर्ण दुनिया में शांति तथा सद्भाव का संदेश फैलाता रहा है।"[6] यही दृष्टिकोण विश्व मानवता की अवधारणा को संपोषित करने का कार्य करता है।

संदर्भ :

1. प्रीति प्रभा गोयल,' भारतीय संस्कृति' राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रकाशन वर्ष 2017, पेज नं. 2
2. वही।
3. पवित्र कुमार शर्मा 'भारतीय संस्कृति' कादम्बरी प्रकाशन, पेज नं. 388
4. गजानन माधव मुक्तिबोध 'भारत इतिहास और संस्कृति' संस्करण 2019, राजकमल प्रकाशन, पेज नं. भूमिका।
5. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा 'भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति' कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, पेज न. 11।
6. स. उषानागर, 'भारतीय दर्शन एवं संस्कृति कोश' पैराडीजेपुब्लिशर्ष, जयपुर, पेज न. 22।

❖

शोधछात्र, भारतीय भाषा केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
मोबाइल 8860323130
ई-मेल : priyayad2626@gmail.com

हिंदी साहित्य के फलक पर घासलेटी आंदोलन की हलचल

— डॉ. कुमुद शर्मा

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के पन्नों पर छाए इस विवाद ने लोकप्रिय साहित्य और मर्यादित साहित्य के बीच की रेखा खींचने का काम किया। इस विवाद ने साहित्य निर्माण की वैज्ञानिक दृष्टि, कलात्मक स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में साहित्य में अश्लीलता के प्रश्न पर बहस चलाई। साहित्य में आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व को भी उजागर किया। घासलेटी साहित्य के विरुद्ध चतुर्वेदी जी के द्वारा चलाए गए इस आंदोलन ने अन्ततः उग्र को विक्षुब्ध किया। जहाँ चतुर्वेदी जी ने इस आंदोलन के द्वारा साहित्य और पत्रकारिता में एक आलोचक और एक संपादक की प्रभुत्वशाली सत्ता को स्थापित किया वहीं इस आंदोलन ने अन्ततः 'उग्र' को विक्षुब्ध कर दिया। इस पूरे प्रकरण ने हिंदी साहित्य जगत में उनकी भिन्न छवि को स्थापित करना शुरू कर दिया। अपने अस्तित्व के लिए सिने संसार की शरण लेनी पड़ी।

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 'विशाल भारत' से उठा तथा 'मतवाला,' 'सुधा,' और चाँद जैसी पत्रिका के पन्नों पर पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की पुस्तक 'चाकलेट' के संदर्भ में घासलेटी साहित्य के विरुद्ध चला आंदोलन तत्कालीन साहित्यिक जागरुकता के साथ-साथ उस समय की पत्रकारिता में आक्रामकता और व्यंग्य-विनोद के तेवर की गवाही देता है।

जिस समय पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने साहित्य में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज करानी शुरु की वह संघर्षमयी और बलिदानमयी राष्ट्रीयता का दौर था। अंग्रेज साम्राज्यशाही के विरुद्ध राष्ट्रीयता के आवेग ने उनकी कलम को उग्रता की निर्भीकता दी-'सन् 1920-21 के बीच देश में राष्ट्रीयता की लहर तेज प्रवाहित हो रही थी जिसमें मेरे प्राण प्रसन्न डुबकियाँ लगाने को लालायित रहते थे?' (अपनी खबर , पृष्ठ 106) उनके 'उग्र' उपनाम के औचित्य का तर्क उनके इस कथन से समझा जा सकता है-'उन दिनों राष्ट्र भक्त लेखक ऐसे कर्कश नाम इसलिए चुना करते थे कि बलवान ब्रिटिश साम्राज्य के नृशंस शासक नाम से ही दहल जाएँ।' (अपनी खबर, पृष्ठ-108)।

यह वह समय था जब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य को भाषा और व्याकरण के अनुशासन में बाँध रहे थे। दूसरी तरफ स्वामी दयानंद सरस्वती के 'पवित्रतावादी प्रचार' का प्रभाव फैल रहा था।

इससे पहले कथा साहित्य में 1900 के आसपास किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों को 'प्रेम प्रदर्शनी' मानकर आलोचकों ने उन्हें अपना निशाना बनाया। उनके प्रेम में कहीं परंपरागत भारतीय नारी के गांभीर्य का अभाव पाकर तो कभी उनकी कृतियों के नायक में संयम का अभाव देखकर उनके 'प्रेम के विज्ञान' के प्रचार पर तीखी प्रतिक्रियाएँ दी। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी तथा फार्मूलाबद्ध कथा-साहित्य पर जमकर प्रहार किए। लेकिन बनारसीदास चतुर्वेदी के 'घासलेटी आंदोलन' ने साहित्यिक जगत में ऐसी हलचल मचा दी कि इसकी गूँज महात्मा गाँधी तक भी पहुँची।

एक तरफ 'उग्र' की राष्ट्रीय चेतना की संवाहक कहानियाँ देश के प्रति बलिदानमयी चेतना का प्रसार कर रही थीं तो दूसरी तरफ शैली और कथ्य के चयन में अपूर्व 'दुस्साहस' का परिचय देकर उन्होंने अपने समकालीनों को न केवल चौंकाया बल्कि विक्षुब्ध भी किया। उन्होंने अपने कथा साहित्य के रचनात्मक विधान में ऐसे विषयों को उठाना शुरू कर दिया जिन्हें साहित्य के

क्षेत्र में समेटने का साहस उस समय के लेखकों के पास नहीं था। 'उग्र' का उन्मुक्त और खुला अंदाज शुरू से ही साहित्य को मर्यादित घेरे में रखने की वकालत करने वाले आचार्यों को खटक रहा था। स्वदेश में पं. पद्मसिंह शर्मा ने लिखा-'साहित्य का सौष्ठव नष्ट हो रहा है। जब से समय-प्रवाह रूप बोलशेविज्म ने साहित्य के एकतंत्र को प्रजातंत्र में परिवर्तित करके एकाकार कर दिया है, तब से भाषा-राज्य में एक गदर-सा मच गया है। किसी रूप में किसी विषय पर चाहे जो लिखा जाए, सब 'साहित्य' है। कोई किसी कायदे कानून को मानने के लिए तैयार नहीं है। इस गदर का कारण साहित्य शास्त्र की अवहेलना है।' (स्वदेश, 24 अक्टूबर, 1020, पृष्ठ 27)

'उग्र' का नाम उन लेखकों में शामिल कर लिया गया जो 'साहित्य के राजतंत्र' की नींव को हिला रहे थे। उग्रता की रोमांचकारी कृतियों ने तत्कालीन मनचले युवकों को खूब रिझाया। कहा जाता है कि उन दिनों विद्यार्थियों की अटैची में उनकी पुस्तक 'चन्द हसीनों के खुतूत' देखी जाती थी। 'मतवाला' की संपादकीय टीम का हिस्सा बनने से पहले ही उनकी पुस्तक 'चाकलेट' (31 मई, 1924) और 'पालट' (19 जुलाई , 1924) के प्रकाशन ने हिंदी साहित्य के फलक पर हलचल मचा दी थी। ये कहानियाँ 1928 में 'चाकलेट' शीर्षक से प्रकाशित उनके कहानी संग्रह में संकलित होकर पाठकों के समक्ष पुनः चर्चा में आयी। इस संग्रह की कहानियों ने पूर्व प्रचलित साहित्यिक मर्यादा और रूढ़ियों का उल्लंघन किया था। इन कहानियों की विषय सामग्री ऐसे क्षेत्र से संबंध रखती थी जो यथार्थवाद की वकालत करने वाले लेखकों की दृष्टि में भी साहित्य के लिए वांछनीय नहीं समझी जाती थी। इस पुस्तक के संदर्भ में कहा जाता है कि 'चाकलेट' के प्रकाशित होते ही युवा पाठकों में इसे पढ़ने की होड़ पैदा हो गयी। कलकत्तें में चॉकलेट पुस्तक खरीदने के लिए दुकान पर भारी भीड़ देखी जाती। इसका प्रथम संस्करण बाजार में आते ही दो महीने के भीतर ही बिक चुका था। इस पुस्तक का विज्ञापन भी इस तरह किया गया था-'इसमें उग्र जी की वे कहानियाँ शामिल हैं जो पाठकों को अपनी सांस रोकने के लिए मजबूर कर देंगी।' इस पुस्तक के कई संस्करण बहुत जल्दी ही प्रकाशित करने पड़े। चाकलेट शब्द को खोलते हुए उन्होंने लिखा-'चाकलेट देश के उन भोले-भाले कमसिन और सुन्दर लड़कों को कहते हैं जिन्हें समाज के राक्षस अपनी वासना की तृप्ति के लिए सर्वनाश के मुख में ढकेलते हैं।' (चाकलेट, पृष्ठ-100)

इसके कहानी संग्रह के कई संस्करण प्रकाशित हुए। चाकलेट कहानी में किशोर बालकों को सावधान करने की मुद्रा में 'उग्र' जी ने लिखा-'हे सुकुमार! हे सुन्दर! भीड़ से हटते-हटते सनकी ने कहा, हे आकर्षक! हे पवित्र! एक बार फिर कहता हूँ। मत चूमने दो किसी पुरुष को अपने होठों को, मत मलने दो किसी मतवाले को अपने गालों को, मत सटने दो अपनी कोमल छाती को किसी राक्षस के वज्र हृदय से। तुम विषय भोग की वस्तु नहीं। तुम पुरुष हो-तुम देवता हो-तुम ईश्वर हो-तुम इन पापियों से हमेशा दूर रहो। हे सुकुमार, हे प्यारे, हे सुन्दर, हे कुलों के प्रकाश और घरों के दीपक! सावधान!!' (चाकलेट, पृष्ठ 71) 'चाकलेट' कहानी संग्रह की लंबी-लंबी भूमिकाएँ लिखी गयीं। बार-बार कभी रचनात्मक लेखन के जरिए तो कभी भूमिकाओं में 'उग्र' यह राग अलापते रहे कि सामाजिक रोग का 'एक्स-रे फोटो' सामने रखना उनका मकसद रहा है। इसीलिए 'चाकलेट' के प्रसंग में उन्होंने लिखा-'पढ़ें समाज के बड़े-बूढ़े पढ़ें', 'उग्र' की इस नाटकीय कृति को, कहानी और कला का सुख लेने के लिए नहीं, उसकी प्रतिभा की उड़ान देखने के लिए नहीं, बल्कि अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल रखने के लिए। उन्हें पशुता से दूर और मनुष्यता से निकट रखने के लिए। पढ़ें जीवन की ड्योढ़ी पर खड़े हमारे नवयुवक मित्र मेरी इस काली रचना को अवश्य पढ़ें और इसे पढ़कर अपने हृदय की घृणित छाया को अपने किसी बंधु या मित्र के कोमल हृदय पर डालने से परहेज करें। 'प्यार को शुद्ध प्यार की तरह करें', और उसके मुख पर वासना की स्याही पोतने से हिचकें। अपने हृदय की कोठरी में धुआँ न फैलावें। किसी अबोध मित्र के घर में आग न लगाएँ। पढ़ें-देश के छोटे-छोटे फूल को खिलौने, सुंदर बच्चे भी मेरी इन लकीरों को पढ़ें और शुरू से ही काँप उठे चाकलेट-पंथियों के षड्यंत्रों से, उनकी धूर्तताओं से। इन राक्षसी तस्वीरों को देखकर वह राक्षसों को पहचानना सीखें और उनके आक्रमणों से अपने फूले-फूले गालों को रक्षित करना, अपने अधर पल्लवों की रक्तिमा को महफूज रखना और हृदय की पवित्रता को साधारण प्रलोभनों से अधिक महत्व देना। मुझमें दोष है, मेरी कृतियों में भी अवश्य ही दोष है। मगर पाठकों को उस अमर कवि की इन लकीरों को स्मरण कर ही किसी कृति को देखना चाहिए-'जड़, चेतन, गुण, दोषमय/ विश्व कीन्ह करतार/सन्त हंस गुण गहहिं पय/परिहरि वारि विकार।'

भूमिका में इसके उद्देश्य को रेखांकित करते हुए इन्होंने लिखा–'यदि परस्त्री–गमन, वेश्या–गमन, शराबखोरी, जुआ खेलना आदि सामाजिक पाप है, तो यह अप्राकृतिक कर्म, या चाकलेट पंथी महापाप है। यदि उन पापों के विरुद्ध समाज प्रचार भी करता है और खुलेआम आलोचना प्रत्यालोचना भी, तो इस पाप के विरुद्ध भी प्रचार और आलोचनाएँ होनी चाहिए। ऐसा न होने से एक दिन, एक दिन हमारा समाज भी उस देश के समाज का रूप धारण कर लेगा, जहाँ रखेलियों की तरह खूबसूरत लड़के भी पाले जाते हैं और पुरुषों की वासना के शिकार बनाए जाते हैं। भारत वर्ष में ऐसा होना, हमारी सभ्यता और संस्कृति का सर्वनाश होना है, जो किसी हालत में उचित नहीं है।'

'उग्र' के दावे को निरस्त करते हुए आलोचक नैतिकता के मानकों से इस कृति के विरोध में यह सिद्ध करने में लग गए कि इससे इस कुत्सित प्रवृत्ति पर रोक नहीं लग सकती बल्कि उत्तेजक सामग्री के कारण इस कृति से पाठकों को उत्तेजक आनन्द प्राप्त होगा। यह कृति वासना का उत्सव मानकर तीखी सस्ती और हल्की प्रेरणाओं का परिणाम समझी गई।

पं. पद्मसिंह शर्मा पहले ही 'उग्र' के लेखन पर तीखी टिप्पणी कर चुके थे। 'चाकलेट' कहानी संग्रह प्रकाशित होने पर पं बनारसी लाल चतुर्वेदी ने ऐसे साहित्य को 'घासलेटी' साहित्य कहकर विशाल भारत के जरिए इसके विरुद्ध आंदोलन ही छेड़ दिया। जिसकी मूल ध्वनि यह थी कि 'घासलेटी रचनाओं को साहित्य कहना मजाक ही है क्योंकि शैम्पेन की बोतल से उड़ते हुए कार्क की भाँति वह लोप हो जाता है।' (विनोदशंकर व्यास) चतुर्वेदी जी ने इस आंदोलन को गंभीर मोड़ देते हुए 'विशाल भारत' में संपादकीय विचार के जरिए हिंदी जगत के सामने कुछ मांगें रखीं। उन्होंने घासलेटी साहित्य की जाँच हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापतियों से कराए जाने का प्रस्ताव रखा। एक प्रस्ताव यह भी रखा गया कि कॉलेज के बीस पच्चीस लड़के और लड़कियों को यह साहित्य पढ़ने के लिए दिया जाए और उनके मन पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन किया जाए। उनके इस आंदोलन की मूल ध्वनि यह थी कि ये कहानियाँ अश्लील और उत्तेजक हैं। ऐसे साहित्य को तिरस्करणीय और खतरनाक मानकर इसे साहित्य से बाहर रखा जाए। मार्च 1928 से लेकर दिसम्बर 1929 तक 'विशाल भारत' ने अश्लील और उत्तेजक साहित्य के विरुद्ध आक्रामक तेवर अपनाए रखा। घासलेटी साहित्य के विरुद्ध लेखों की झड़ी लग गई। 'विशाल भारत' में जिन शीर्षकों से संपादकीय और अन्य लेख प्रकाशित हुए उनसे इस आंदोलन की व्यापकता और इसकी रोचक कहानी समझी जा सकती है। कुछ लेखों के शीर्षक इस प्रकार हैं–'घासलेटी साहित्य पर पं. पद्मसिंह शर्मा की सम्मति', 'घासलेट साहित्य के विरुद्ध आंदोलन', 'हिंदी में घासलेटी साहित्य', 'विलायत में घासलेटी साहित्य', 'घासलेटी साहित्य के प्रचारकों से एक प्रश्न', 'घासलेटी साहित्य और हमारा कर्तव्य', 'घासलेटी साहित्य–अबलाओं का इंसाफ' की निष्पक्ष आलोचना, 'घासलेटी साहित्य का विकास', 'भयंकर घासलेट', 'विशाल भारत के पाठकों से एक प्रश्न', 'हमारे साहित्य के निंदनीय', 'घासलेट साहित्य–घासलेट चर्चा', 'घासलेटी साहित्य के लेखकों से अन्तिम निवेदन', 'घासलेट साहित्य–हिंदी साहित्य की छीछालेदर', 'घासलेटी साहित्य और दाम्पत्य ग्रंथावली,' 'घासलेट साहित्य, फिजा में घासलेट साहित्य का दुष्परिणाम', 'घासलेटी साहित्य के विषय में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सम्मति', 'घासलेटी साहित्य पर प्रो. गिल्बर्ट मरे,' 'एक घासलेटी लेखक की शिक्षाप्रद मृत्यु', 'घासलेट साहित्य के विरुद्ध आंदोलन,' 'घासलेट विरोधी आंदोलन का उपसंहार', 'सम्मेलन में घासलेट विरोधी प्रस्ताव', 'ठेठ या घासलेट', 'घासलेट और हम'। 'विशाल भारत' के साथ–साथ इस विवाद में मतवाला, चाँद और सुधा, जैसी पत्र–पत्रिकाएँ भी सक्रिय रहीं। इन पत्रिकाओं में 'चाकलेट और चाकू', 'घासलेटी दुराचार पर महात्मा जी का मत', 'घासलेटी साहित्य और मारवाडी समाज', आदि शीर्षक से लेख प्रकाशित हुए। विशाल भारत में प्रकाशित लेखों में अधिकांश लेखकों ने पं बनारसीदास चतुर्वेदी के मत का जोरदार समर्थन किया।

इस संग्रह की कहानियों की आलोचना उद्देश्य की दृष्टि से नहीं बल्कि अश्लीलता के कारण हुई। इस कहानी संग्रह की कहानियों पर अश्लीलता का आरोप मढ़ते हुए 'उग्र' को 'छिछोरा', 'कल का लौंडा', 'चाकलेट' आदि विशेषण देकर उनकी तीव्र भत्सर्ना की गई। उन पर यह कहकर प्रहार और आक्षेप किए गए कि उग्र 'अश्लील साहित्य टकों के लिए' लिखते हैं। उनके लेखन को भारतीय आचरण और संस्कृति की दृष्टि से प्राणघातक माना गया। लेकिन 'उग्र' जी ने भी पलटकर यह कहने में संकोच नहीं किया कि 'मैं मिडिल फेल आदमी बाजार का सम्राट हूँ।'

अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने उनके विरुद्ध आक्रामक लेखों की झड़ी लगा दी। साहित्यिक संस्थाओं ने भी हिंदी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा जैसी साहित्यिक संस्थाएँ भी इस प्रकरण से बेखबर न रह सकीं। इस संदर्भ में इन दोनों

संस्थाओं ने अपने यहाँ से 'घासलेटी साहित्य' के विरोध में प्रस्ताव पास करवाकर भेजा। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने पं. पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता में घासलेटी साहित्य के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया। पं शर्मा ने अपनी बात रखते हुए कहा कि-'गंदा साहित्य गंदगी से बचाता नहीं उसमें फँसाता है। दुराचार का नग्न चित्रण चाहे वह उससे बचने के लिए ही क्यों न किया गया हो, देखने वाले व्यक्तियों के मनोविकार का ही कारण होता है। किसी रोग के नुस्खे में रोग के निदान का वर्णन ऐसे मनमोहक और आकर्षक ढंग से नहीं लिखा जाना चाहिए जिसे पढ़कर भले चंगे आदमी भी उस रोग का अनुभव करने के लिए उत्सुक हो उठे।' (घासलेटी साहित्य पर पं. पद्मसिंह शर्मा जी की सम्मति-संपादकीय विचार, विशाल भारत, वर्ष 1, खंड-2 श्रावण संवत् 1985, पृ.132)

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इस परिदृश्य को गंभीरता से लेते हुए इस संदर्भ में अपने विचार प्रकट किए-'यह एक निश्चित सिद्धांत है कि गंदे और कुरुचिपूर्ण साहित्य से पाठकों की भी रुचि बिगड़ती है।...इसी सिद्धांत पर कलकत्ते के 'विशाल भारत ने घासलेटी साहित्य के विरुद्ध अच्छा आंदोलन आरंभ किया है, परंतु कुछ लोग ऐसे निकल आए जो ऐसे उत्तम आंदोलन का समर्थन करने के बदले यह कहकर उसका विरोध करते हैं कि समाज के दोष दूर करने के लिए और लोगों को समाज की वास्तविक दशा दिखलाने के लिए ऐसे साहित्य की भी आवश्यकता है। परंतु यह तर्क बहुत से अंशों में निराधार और पोच है।...यदि यह सिद्धांत मान लिया जाएगा तो केवल इसी बहाने लोग गंदे ग्रंथों से साहित्य क्षेत्र भर देंगे और हिंदी साहित्य बदनाम हो जाएगा। (वार्षिक रिपोर्ट-काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् 1929 ई.)

लेकिन इन सबसे उग्र की निर्भीकता का तेवर आलोचनाओं से थमा नहीं। जीवन और व्यक्ति की क्रूरतम तख्ता घिनौनी विकृतियों को उघाड़कर पाठकों की आँखों के सामने बिछा देने को ही वे कलाकार का कर्तव्य समझते थे। यथार्थ को जीवन का सच्चा विवरण समझकर उसके विकृत चित्रण प्रस्तुत कर उनकी वकालत भी कर रहे थे-'मैंने अपनी कहानियों में भाषा का आवरण चढ़ा आदर्शवाद की वकालत नहीं की है। कुछ अपनी उग्र-प्रणाली के कारण और कुछ नग्न-सत्य पर प्रेम होने के कारण मेरी कहानियाँ 'सुगरकोटेड कुनैन' नहीं बल्कि शुद्ध कटु कुनैन या 'सिनकोना' हैं।' (कैफियत पृष्ठ 8) यथार्थ के नाम पर जीवन के नग्न सत्य की वकालत करते हुए अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के लिए तर्क देते रहे कि-'कूड़ा बटोरना और आग लगाना मेरा काम है।' चाकलेट पंथियों की कुत्सित भावनाओं को उद्घाटित करना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। उसके लिए उन्होंने किसी की भी परवाह नहीं की। वे हर विरोध को झेलने के लिए तैयार दिखे।

यथार्थ के नाम पर घासलेटी साहित्य का समर्थन हिंदी साहित्य में यथार्थवादी की नींव रखने वाले कथा सम्राट प्रेमचंद भी नहीं कर सके। उन्होंने भी उसे साहित्य से बहिष्कृत करने की वकालत की-'मैं साहित्य में नग्न कुवासनाओं का निदर्शन बहुत ही हानिकारक मानता हूँ। चाकलेट आदि को रोकने के लिए सबसे अच्छा तरीका पंफलेट छापना है। साहित्य में उसको लाने की जरूरत नहीं।' (विशाल भारत, 1929)

उन्होंने 'बटुकी प्रेम' और 'हम फ़ि' 'सन् 28 और 29 मेरे लेखन-जीवन में जबरदस्त कोलाहलकारी रहे।..इसी दरमियान मेरी पुस्तक 'चाकलेट' के वजन पर 'घासलेट' आंदोलन मेरे विरुद्ध घनघोर चला था।' (अपनी खबर, पृष्ठ 140) 'विशाल भारत' में अश्लील साहित्य के विरुद्ध बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा चलाए गए 'घासलेटी आन्दोलन' लीक से हटकर सृजित किए गए इस तरह के साहित्य को 'घासलेटी साहित्य' कहकर तिरस्कृत किया और उसे साहित्य की मुख्य धारा से अलग माना।

बनारसी दास चतुर्वेदी के 'घासलेट आंदोलन' को पं जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं सकल नारायण शर्मा, पं ईश्वरी प्रसाद शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, तथा पं माधवप्रसाद मिश्र, जैसे साहित्यकारों का समर्थन मिला।

इस प्रकरण में 'उग्र' जी के मित्र रामनाथ लाल 'सुमन' ने जो कि 'मतवाला' में लगातार छप रहे थे उनकी जोरदार वकालत की। उन्होंने साहित्य के उन मठाधीशों पर जमकर प्रहार किया जो पवित्रतावाद के नाम पर, आदर्श के नाम पर उग्र के साहित्य का खंडन कर रहे थे।

इस आंदोलन को अनजाने ही महात्मा गाँधी की सहमतिसूचक सम्मति मिल गयी। लेकिन जब गाँधी जी ने इस पुस्तक को पढ़ा तो उन्होंने इसे घृणित साहित्य मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने चतुर्वेदी जी को पत्र लिखा- 'चाकलेट' नामक पुस्तक पर जो पत्र था उसको 'युग इंडिया' के लिए नोट लिखकर भेज दिया। पुस्तक तो पढ़ी नहीं थी। टीका केवल आपके पत्र पर निर्भर थी। मैंने सोचा, इस तरह टीका करना उचित नहीं होगा,

पुस्तक पढ़नी चाहिए। मैंने पुस्तक आज खत्म की। मेरे मन पर जो असर आप पर हुआ, नहीं हुआ है। मैं पुस्तक का हेतु शुद्ध मानता हूँ। इसका असर अच्छा जान पड़ता है, या बुरा, मुझे मालूम नहीं है। आपके पत्र का पेज अब खुलवा दूँगा।'

उग्र और बनारसी दास चतुर्वेदी की वैचारिक टकराहट की गूँज दोनों के मन में बरसों बाद भी बनी रही। बनारसीदास चतुर्वेदी ने गाँधी जी का यह पत्र गाँधी जयंती के अवसर पर 1951 में हिंदुस्तान में 'पूज्य बापू के रूप में' शीर्षक से प्रकाशित लेख के अन्तर्गत छपवा दिया। इस पर पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिक्रिया थी-'इसके पहले 'घासलेट- आंदोलन' काल में पं बनारसीदास पर मैं बमक उठता था। इस बार नहीं बिगड़ा। तो उन्होंने समझा कि 'उग्र' मर गया। सो महात्मा को मृत मान और 'उग्र' को बेजान जानकर ही, माकूल मौका देख, पत्रकारिता की पेचदार परतों में लपेटकर सन् 51 में उन्होंने 'हिंदुस्तान' के विशेषांक में गाँधी का यह पत्र छपवा दिया। मेरी मस्त निगाहों में यह विषेशांक आठ महीने बाद यानि 52 के जून में आया।'

हिंदी पत्रकारिता में हिंदी को जीवंत, सरस और पैदा जामा पहनाने वाली पत्रिका मतवाला के पतन के लिए 'उग्र' को जिम्मेदार बना दिया गया-'अप्राकृतिक मैथुन की कुरीतियों को उसने जरूरत से ज्यादा उछाला। ऐसा करते हुए उसने अपनी गरिमा की भी रक्षा न की। तब 'मतवाला' में न निराला थे, न ही शिवपूजन सहाय। 'मतवाला' उग्र-आधिपत्य में जिस दुर्गति को प्राप्त हुआ-वह उसकी नियति न थी।' (कर्मेन्दु शिशिर, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और हिंदी पत्रकारिता, सं श्रीनिवास शर्मा पृ 102)

उस समय की पत्रकारिता इस प्रकरण के प्रभाव से अछूता न रह सकी। प्रयाग के अखबार 'भारत' ने इस तरह के विवाद को देश और साहित्य के लिए हितकर न मानते हुए चिंता व्यक्त की। मतवाला ने 'मतवाले की बहक' स्तंभ में उस पर पलटवार करते हुए चतुर्वेदीजी को ही व्यंग्य का निशाना बनाते हुए लिखा-'घासलेटी या चॉकलेटी शीर्षक देकर प्रयागी 'लीडर' संप्रदाय के नव्य भव्य 'भारत' ने पं बनारसी दास चौबे या चतुर्वेदी और उनके प्रिय पिट्ठुओं ने समझाया है-'इस तरह के कृत्रिम आंदोलन स्थायी नहीं हो सकते। इससे न देश का कल्याण है और न साहित्य सुधार की संभावना है। अखबारी दुनिया के बँधे हुए तालाब में, संभव है थोड़ी हलचल मच जाए, लेकिन वह भी थोड़ी देर के लिए वरना हानि की संभावना बहुत है।' आह! कैसी गलत बात सहयोगी के 'वामन' भगवान ने कही है। हमारे भोले भाले, म्याऊँमुख चौबे जी से देश और साहित्य तो दूर-'चाकलेट' पुस्तक को भी हानि नहीं पहुँच सकती। उनके विरोध से उसके ग्राहक और पाठक और अन्वेषण दिन दूने और रात अठगुने के अनुपात से बढ़ रहे हैं। अस्तु, वामन जी को समझना चाहिए कि चौबे जी केवल मुँह से 'रोड़े-रोड़े' घिघिया रहे हैं मगर फेंक रहे हैं चाकलेट आंदोलन की ओर गुड़ के भेले।' (मतवाला, 24 नवम्बर, 1928)

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के पन्नों पर छाए इस विवाद ने लोकप्रिय साहित्य और मर्यादित साहित्य के बीच की रेखा खींचने का काम किया। इस विवाद ने साहित्य निर्माण की वैज्ञानिक दृष्टि, कलात्मक स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में साहित्य में अश्लीलता के प्रश्न पर बहस चलायी। साहित्य में आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व को भी उजागर किया। घासलेटी साहित्य के विरुद्ध चतुर्वेदी जी के द्वारा चलाए गए इस आंदोलन से अन्ततः उग्र को विक्षुब्ध किया। जहाँ चतुर्वेदी जी ने इस आंदोलन के द्वारा साहित्य और पत्रकारिता में एक आलोचक और एक संपादक की प्रभुत्वशाली सत्ता को स्थापित किया वहीं इस आंदोलन ने अन्ततः 'उग्र' को विक्षुब्ध कर दिया। इस पूरे प्रकरण ने हिंदी साहित्य जगत में उनकी भिन्न छवि को स्थापित करना शुरू कर दिया। अपने अस्तित्व के लिए सिने संसार की शरण लेनी पड़ी। अपने संस्मरण 'सिनेमा संसार और मैं' में उन्होंने इस बात का जिक्र किया है-'इस बार मैं हिंदी जगत से चिढ़कर फिल्म जगत में पहुँचा था। यह सन् 29 की बात है। तब मेरे विरुद्ध घनघोर घासलेटी आंदोलन चल रहा था। सहृदय, नामधारी मुझे पहचानने को तैयार न थे, कुछ मेरी कमियों के कारण, कुछ मेरी विशेषताओं से चौंधिया कर। मैंने सोचा हिंदी के माथे कोई सेहरा थोड़े बँधा है-तुम नहीं और सही। लिखूँ न तो मैं भूखों मर जाऊँगा, इसे न तो मैंने पहले कभी माना था, न आज ही मंजूर करता हूँ। मेरा विचित्र विश्वास है कि हम विधाता की बारात में निमंत्रित होकर आये हैं, और घी वाले के लिए घी और शक्कर वाले के लिए शक्कर स्वयं विश्व नियंता जिनमें पत्थर के कीड़े को हजार तह के अंदर हरी घास पहुँचाने की क्षमता है, व्यवस्था करते हैं।'

लगभग नौ वर्ष फिल्मी नगरी मुंबई मे गुजारने के बाद वे पुनः साहित्यिक कर्म की ओर लौटे और पत्रकारिता से रिश्ता जोड़ा।

❖

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
188, नेशनल मीडिया सेंटर, एन एच-8, गुड़गाँव-122002
मोबाइल : 9811719898

मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य

— डॉ. नूतन पाण्डेय

भाग्य पर विश्वास भारतीय संस्कृति की अनन्य विशेषता है, जो यहाँ की लोककथाओं में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। प्रहलाद रामशरण ने अनेक कहानियों-उड़ने वाला घोड़ा, भाग्य का खेल, गूलर का फूल, राजकुमार सबुर की कथा और मॉरीशस की शकुन्तला में भाग्य की महिमा प्रतिपादित की है। भाग्यवान ज्योतिषी भाग्य प्रधान लोककथा का एक बेहतरीन उदाहरण है, जिसमें बताया गया है कि मनुष्य एक सीमा तक कर्म कर सकता है, लेकिन उस कर्म की सफलता- असफलता उसके भाग्य पर निर्भर करती है। मॉरीशस की शकुंतला लोककथा में चित्रित भाग्य की प्रबलता को निम्न वाक्य में देखा जा सकता है : लोग सैकड़ों योजनाएँ बनाते हैं, लेकिन भाग्य उन्हें एक ही झटके में चकनाचूर कर देता है। सभी कहानियों में धर्म और अध्यात्म को महत्त्व दिया गया है।

किसी देश का लोकसाहित्य उस देश की संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि होता है। अपनी प्राचीनता और लोक की आत्मा से अंतरंगता के कारण ही लोकसाहित्य अपने समाज और संस्कृति की शाश्वत धरोहर माना जाता है। जीवन के अमूल्य सामाजिक-नैतिक मूल्यों को समाहित करने के कारण ही लोकसाहित्य का महत्त्व चिरस्थाई है। लोकसाहित्य के विविध रूप हैं, जिनमें लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाटक, लोककथा, लोककहावतें, चुटकुले और प्रकीर्ण साहित्य आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत आलेख में गिरमिटिया मजदूरों द्वारा अपने मातृदेश से लाई गई और उसके प्रभाव से निर्मित मॉरीशस की पूर्णतया मौलिक लोककथाओं का मूल्यपरक अध्ययन और विश्लेषण किया गया है। मॉरीशस की आधी से अधिक आबादी भारतीय मूल के लोगों की है, जो लगभग दो शताब्दी पूर्व ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता द्वारा गिरमिटिया मजदूरों के रूप में गन्ने के बागानों में खेती करने ले जाए गए थे। इन मजदूरों ने संघर्षों के कठिन दौर में अपने साथ लाई मानस की चौपाइयों, हनुमान चालीसा, लोककथाओं, लोक मान्यताओं, परंपराओं में निहित जीवन आदर्शों को अपना संबल बनाया। ये कथाएँ आज भी भोजपुरी समाज में प्रचलित हैं और इन परिवारों में चाव से सुनी-सुनाई जाती हैं।

मॉरीशस एक बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश है। नृजातीय सृष्टि से अध्ययन करने पर देखें तो मॉरीशस की संस्कृति अत्यंत रोचक है। लगभग चार शताब्दियों के अंतराल में यहाँ पर पुर्तगाली, डच, फ्रेंच और अंग्रेजों का शासन रहा। यूरोप, अफ्रीका और एशिया इन तीन महाद्वीपों की वैविध्यपूर्ण संस्कृति के विविध तत्वों, परंपराओं और लोकदाय के समावेशी रूप ने मॉरीशस की सांस्कृतिक धरोहर को सुसमृद्ध किया है। मॉरीशस के इतिहास जितना ही पुराना मॉरीशस की लोककथाओं का इतिहास भी है क्योंकि भारतवंशियों के अनगिनत संघर्षों के साथ ही भारत से अपने साथ लाई लोककथाओं को भी विस्तार मिलता गया और धीरे-धीरे विकसित होकर वे लोकमानस में सुदृढ़ रूप से समाहित होती चली गईं।

मॉरीशस के लोग भारतीय, यूरोपियन और अफ्रीकन संस्कृतियों को अपने जीवन में जीवंत रखकर उनसे प्रेरणा पाते हैं। भारत से आए लोगों के हृदय में विष्णु शर्मा और सोमदेव की प्रेरक और रोचक कहानियाँ बसी हुई हैं तो यूरोपियन और अफ्रीकन मूल के लोगों के साथ-साथ भारतवंशी भी ईसप, जैकब, जॉन ग्रे, लुइस कैरोल, ला फोनतें, चार्ल्स पैरा, एंडरसन, ग्रीम ब्रदर्स जैसे महान कथाकारों की लोककथाओं को रुचि से पढ़ते हैं। लोक विरासत

की दृष्टि से भोजपुरी भाषा मॉरीशस की सर्वाधिक संपन्न भाषा कही जा सकती है। इस भाषा में लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनाटकों, लोककहावतों और लोकगाथाओं आदि की समृद्ध और विस्तृत परंपरा देखी जा सकती है। सूक्ष्मता से देखें तो इसके दो बड़े कारण सामने आते हैं। एक महत्त्वपूर्ण कारण तो भारतवंशियों द्वारा अन्य जातियों की तुलना में अपनी संस्कृति और लोक विरासत को जीवित रखने के लिए किए गए अथक संघर्ष हैं और दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह कि भारतवंशियों का संबंध ऐसे देश से है जिसे कथाप्रिय देश कहा जाता है। भारतवंशी उस देश की समृद्ध परंपरा को अपने साथ लाते हैं जहाँ वैदिक कथाओं, पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर की कहानियों के माध्यम से बच्चों को बाल्यावस्था से ही संस्कारित बनने की शिक्षा दी जाती है। भारत की कई लोककथाओं का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है, यहाँ तक कि ईसप की कहानियों पर भी भारतीय लोककथाओं का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भारत की इस विशेषता को पाश्चात्य विद्वान् भी एक मत से स्वीकार करते हैं। यह बात सिलिवएन लेवी के इस कथन से स्वत: सिद्ध हो जाती है : भारत की कथाओं ने दुनिया को जीता है। पंचतंत्र और हितोपदेश के बिना लाफोंतेन और गुणाढ्य की वृहत्कथा के बिना हजार और एक रातें संसार को न मिली होतीं और पाश्चात्य कथाकारों का जन्म ही रुक गया होता।

चूँकि शोध आलेख का मूल विषय लोककथाओं से संबंधित है इसलिए लोककथाओं पर केंद्रित करके देखने पर ज्ञात होता है कि लोककथा (folklore) लोक साहित्य की अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है जो परंपरा से प्राप्त होने के साथ ही अत्यंत रोचक और मूल्यपरक कही जा सकती है। लोककथाएँ मानव समाज की साझी वैचारिक अभिव्यक्तियाँ होती हैं, जिसकी शुरुआत कहाँ से हुई, यह कहना मुश्किल है। लोककथाओं का अस्तित्व प्राचीन काल से संपूर्ण विश्व में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। लोककथाओं के संदर्भ में एक अद्‌भुत बात यह देखी जा सकती है कि प्रत्येक लोककथा में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो विश्व की हर लोककथा में समान रूप से देखे जा सकते हैं। रूसी लोककथाओं के विद्वान व्लादिमीर प्रॉप ने रूसी भाषा की सौ लोककथाओं का अध्ययन करने के पश्चात् अपनी पुस्तक Morphology of the folktale (1928) में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रतिपादित किए हैं जो कमोवेश विश्व की सभी लोककथाओं के संदर्भ में देखे जा सकते हैं। प्रॉप की इस थ्योरी से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि विश्व भर के मनुष्यों के स्वभाव में काफी हद तक समानताएँ होती हैं। मॉरीशस की लोककथाओं का भारतीय जनजीवन से प्रभावित होना और उनसे समानता रखना प्रॉप के परस्पर साहचर्य के सिद्धांत को और भी पुष्ट करता है।

विविध कारणों और परिस्थितियों वश मॉरीशस का लोकसाहित्य एक लंबे समय तक अप्रकाशित ही रहा। इसे सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय फ्रेंच भाषाविद चार्ल्स बेसाक को जाता है, जो रॉयल कॉलेज में फ्रेंच भाषा के प्रोफेसर थे। चार्ल्स बेसाक ने सन 1888 में मॉरीशस का लोकसाहित्य (Le Folk lore de Le'lle, 1888) पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें मॉरीशसीय समुदाय में प्रचलित विभिन्न भाषाओं की डेढ़ सौ लोकोक्तियाँ, तीन दर्जन लोकगीत और कुछ प्रकीर्ण साहित्य के साथ अड़तालीस लोककथाएँ संकलित हैं। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के अतिरिक्त मॉरीशस के राष्ट्रकवि डॉ. ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर' ने सन 1969 में प्रथम भोजपुरी पुस्तक 'मधुकलश' में 89 भोजपुरी ग्रामगीतों का संकलन किया था, जिसे रामधारी सिंह दिनकर ने लोक संस्कृति और हिंदुओं और भोजपुर के निवासियों के बीच संपर्क स्थापित करने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण बताया था। सन 1989 में दिमलाला मोहित ने मॉरीशस की भोजपुरी में प्रचलित लोकोक्तियाँ, मुहावरे और पहेलियाँ नामक पुस्तक लिखी, जिसमें भोजपुरी प्रकीर्ण साहित्य, जैसे लोकोक्तियाँ, कहावत, मुहावरे आदि संकलित हैं। इसके अतिरिक्त सुचिता रामदीन द्वारा भी भोजपुरी में प्रचलित लोकगीतों को संस्कार मंजरी नामक पुस्तक में संकलन किया है। लोक साहित्य की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ. उदयनारायण गंगू का है जिन्होंने अपने शोध कार्य मॉरीशस में भोजपुरी लोकसाहित्य का भारतीय संस्कृति के संदर्भ में अनुशीलन में मॉरीशस के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्वों को देखने का प्रयास किया है। भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन की अध्यक्ष डॉ. सरिता बुद्धू और रुद्रदत्त पोखन ने भी भोजपुरी लोकगीतों पर उल्लेखनीय कार्य किया है। अभी हाल ही में महात्मा गाँधी संस्थान के भोजपुरी विभाग द्वारा प्रो. हेमराज सुंदर और डॉ. गिरजानंद सिंह बिसेसर (अरविंद) के संपादकत्व में मॉरीशस के भोजपुरी साहित्य नामक पुस्तक प्रकाशित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है, जिसमें भोजपुरी में लिखित साहित्य के अतिरिक्त चौदह भोजपुरी लोककथाओं को भी सम्मिलित किया गया है। संस्थान द्वारा भोजपुरी लोककथाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कार्य भी किया जा रहा है।

मॉरीशस की लोककथाओं पर शोधपरक और वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए प्रहलाद रामशरण का नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। प्रहलाद रामशरण की मॉरीशस की लोककथाएँ (1974), बौने का वरदान (1987), मॉरीशस की लोककथाएँ भाग-1, 2 (1988), मॉरीशस की शकुन्तला (1989), एशिया की श्रेष्ठ लोककथाएँ (1990) आदि महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं, जिसमें रामशरण जी ने न केवल लोककथाओं का परिश्रम साध्य संकलन किया है, बल्कि उनको लोककथा के मानदंडों पर परखा भी है। इसके अलावा रामशरण जी की सात भाइन के बहिन, चौकीदार, बुधिया की जीत, खरगोश और घोंघा, कछुए की चालाकी, अमर बेलि की चोरी, गिरगिट छिपकली की दुश्मनी आदि लोककथाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। मॉरीशस में रामशरण के अलावा वासुदेव विष्णुदयाल, केशव दत्त चिंतामणि, पूजानंद नेमा और सूर्यदेव सिबोरत आदि ने भी लोककथाओं के क्षेत्र में कार्य किया है।

तात्विक दृष्टि से मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अधिकांश लोककथाओं का मूल उत्स और प्रेरणा भारत की लोककथाएँ हैं, लेकिन मॉरीशस की लोककथाओं का अपना स्वतंत्र संसार भी है। मॉरीशस की लोककथाएँ यहाँ की स्थितियों, परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई हैं जो यहाँ के स्थानीय रीति-रिवाज, परंपराओं, मान्यताओं धार्मिक सांस्कृतिक मूल्यों, लोक मान्यताओं, हर्ष-विषाद को अभिव्यक्त करती हैं। समाज में नैतिकता और आदर्श स्थापित करने और उसे स्थायित्व प्रदान करने में जीवन मूल्यों की प्रभावी भूमिका होती है। मॉरीशस की लोककथाएँ भी विविध जीवन मूल्यों से अनुप्राणित हैं। यहाँ की हर लोककथा में जीवन का कोई न कोई संदेश निहित है, जिससे प्रेरणा लेकर समाज प्रगति के पथ पर अग्रसरित हो सकता है। मॉरीशस की अधिकांश लोककथाओं में शाश्वत और सार्वभौमिक मूल्य निहित है जो समस्त मानव जाति का हित संधान करते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं को भौगोलिक, धार्मिक एवं पौराणिक, सामाजिक, उपदेशात्मक और नैतिक, प्रेम कथा और पशु-पक्षियों और परियों की कथा आदि वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

सबसे पहले मॉरीशस की उन लोककथाओं की बात करते हैं जो इस द्वीप की पूर्णतया मौलिक कथाएँ हैं और किसी अन्य देश के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं। ये कथाएँ मुख्यतया मॉरीशस की भौगोलिक संरचना, जैसे पहाड़, पर्वत, नदी, क्रेटर, सप्तरंगी भूमि आदि भौगोलिक स्थलों पर आधारित हैं। मॉरीशस को प्रकृति का अनुपम वरदान प्राप्त है। यहाँ की भौगोलिक विशेषताएँ अपने आप में अद्‌भुत हैं और अपनी उत्पत्ति के प्रसंग से लोगों को चमत्कृत भी करती हैं। इनकी उत्पत्ति के प्रति यहाँ के निवासियों में समय-समय पर उपजे इसी रहस्य ने विभिन्न रोचक और अनूठी लोककथाओं को जन्म दिया होगा। यहाँ के स्थानीय लोगों ने इन जगहों के बारे में अपनी कल्पना शक्ति से अनेक कहानियाँ गढ़ी होंगी जो आगे चलकर यहाँ के समाज में एक मुख से दूसरे मुख तक, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती चली गई होंगी और इस तरह इन कल्पना मिश्रित कथक्कड़ी ने खूबसूरत लोककथाओं का स्वरूप ग्रहण कर लिया होगा। इन लोककथाओं की खास विशेषता यह है कि इन कथाओं में स्थान विशेष की उत्पत्ति के विषय में श्रोताओं की रोचकता और जिज्ञासा प्रारंभ से अंत तक बनी रहती है। प्रत्येक कथा अपने साथ कोई न कोई विशिष्ट उद्देश्य लेकर चलती है जो जीवन मूल्यों के प्रति समाज को सजग करती है। इस प्रकार की कथाओं में मारीच का शव, शामरैल की रंगभूमि, मृग कुंड, परी-तालाब, मुडिया पहाड़, सिंह और डोडो, गूलर के फूल आदि प्रमुख हैं। मॉरीशस के प्रसिद्ध इतिहासकार और लोककथा मर्मज्ञ श्री प्रहलाद रामशरण इस संबंध में लिखते हैं: मॉरीशस कैसे बना? पहाड़ किस प्रकार खड़े हो गए? यहाँ की मिट्‌टी सतरंगी कैसे हो गई आदि अनेक ऐसी कहानियाँ हैं जो यहाँ के वासियों की कल्पना शक्ति को प्रदर्शित करती हैं।

मॉरीशस की भौगोलिक लोककथाओं में सबसे पहले बात करते हैं, मारीच का शव नामक लोककथा की जो मॉरीशस की उत्पत्ति का इतिहास बताती है। हम सब जानते हैं कि मॉरीशस को मारीच देश और रामायण का देश भी कहा जाता है। इस कथा में रामायण के उस पौराणिक प्रसंग का वर्णन है, जब प्रभु श्रीराम के हाथों मारीच की मृत्यु होती है। मरते समय मारीच भगवान् राम से वरदान माँगता है कि मृत्यु के पश्चात् भी वह रामनाम की महिमा सुनता रहे। जैसे ही मारीच के शव को भगवान् अपने हाथों से स्पर्श करते हैं उसी समय उसका पार्थिव शरीर मोतियों में बदल जाता है। प्रभु राम उन मोतियों को दक्षिण दिशा में फेंक देते हैं और ये मोती मॉरीशस, रियूनियन आदि छोटे छोटे टापुओं में बदल जाते हैं। द्वीप पर क्रमशः डच, फ्रांसीसी, अंग्रेज आते हैं, जो विविध कारणों वश वहाँ स्थाई निवास नहीं बना पाए। पर अंग्रेजों द्वारा खेती बागानों में काम करने के लिए भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक जिलों से गिरमिटिया मजदूरों के रूप में लाए गए लगभग पाँच लाख भारतीय लोगों का इस द्वीप में आगमन महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध होती है। इन मजदूरों द्वारा अपने साथ लाए

रामायण और हनुमान चालीसा के द्वीप में गुंजायमान होने के साथ ही मारीच प्रसन्न हुआ और उसको दिया गया प्रभु राम का वरदान भी पूर्ण हुआ। प्रस्तुत लोककथा का संबंध मॉरीशस द्वीप की उत्पत्ति के प्रति संभाव्य जिज्ञासाओं का समाधान करती है और रामायण के प्रति मॉरीशस के लोगों के अगाध प्रेम और सम्मान को दर्शाती है। यह कथा इस बात की भी परिचायक है कि मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु राम के आदर्श न केवल सार्वभौम हैं, बल्कि हर देश, काल और परिस्थिति में अनुकरणीय भी हैं।

एक दूसरी अत्यंत ही रोचक कथा मुडिया पहाड़ के बारे में है जिसे फ्रेंच में पीटर बोथ नाम से भी जाना जाता है। यह मॉरीशस की दूसरी सबसे ऊँची पर्वत चोटी है जो द्वीप में कहीं भी जाएँ, दिखाई पड़ती है। यह पर्वत चोटी देखने में किसी व्यक्ति का सिर या मूड जैसी प्रतीत होती है। लोककथा संदेश देती है कि किसी को दिया गया वादा कभी नहीं तोड़ना चाहिए। शपथ भंग का परिणाम क्या होता है, इस लोककथा के माध्यम से रोचक ढंग से समझाया गया है। मॉरीशस के अतीत की प्रत्यक्ष गवाह के रूप में खड़ी इस पर्वत चोटी पर मॉरीशस के साहित्यकारों ने अनेक लोककथाएँ और कविताएँ लिखी हैं।

मॉरीशस में वैसे तो पर्यटन की दृष्टि से अनेक खूबसूरत स्थल हैं, लेकिन सात रंगों वाली धरती के लिए यह पर्यटकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह सप्तरंगी भूमि जहाँ वैज्ञानिकों और भूगर्भ शास्त्रियों के लिए अत्यंत रोचक और अनुसंधान का विषय है, वहीं इस जगह की उत्पत्ति से संबंधित अनेक लोककथाएँ यहाँ के जनजीवन में प्रचलित हैं। शमारेल की रंगभूमि, मृग कुंड और दो यात्री नामक लोककथा बड़ी ही रोचक है। मृगकुंड की लोककथा के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयत्न किया गया है कि सृष्टि के सुचारू संचालन के लिए प्रकृति और मनुष्य का संतुलन आवश्यक है, संतुलन के बिगड़ने और प्रकृति के कुपित होने का परिणाम समस्त मानव जाति को भोगना पड़ सकता है। यह कथा प्रकृति की सत्ता के आगे शीश झुकाकर उसका सम्मान करने की प्रेरणा देती है।

नैतिक मूल्य :

भारत की विश्व प्रसिद्ध कथाएँ, जैसे पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक कथाएँ जन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हैं और विश्व की अनेक लोककथाओं का आधार कही जा सकती हैं। इन्हीं कहानियों के अनुकरण पर भोजपुरी समाज में भी अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं जिनमें पशु पक्षियों को मुख्य पात्र बनाकर लोगों को, खासतौर पर बच्चों को नैतिक मूल्यों का निर्वहन करने के लिए प्रेरित किया गया है। मॉरीशस की इस प्रकार की कहानियों में बन्दर, खरगोश, कुत्ता, हिरन, गाय, बैल, तोता, मैना, गौरैया, डोडो आदि पशु पक्षियों के माध्यम से बच्चों में सदाचार की भावना को विकसित किया गया है। ये पात्र मनुष्यों के साथ संवाद कर सकते हैं, उनकी भावनाओं को समझ सकते हैं और उनके लिए अपनी जान भी दे सकते हैं। दुलारी बहन एक ऐसी ही लोककथा है, जिसमें विभिन्न पशु पक्षी अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार दुलारी बहन की रक्षा करते हैं। यह लोककथा पशु और मानव के अटूट संबंधों को उजागर करती है और बताती है कि पशु पक्षियों के प्रति संवेदनशील व्यवहार पशु और मानव के भावनात्मक संबंधों को और दृढ़ करता है। कछुए की चतुराई नामक लोककथा में दर्शाया गया है कि बुद्धि बल शारीरिक बल से बढ़कर होता है। बेंदी छलती है नामक लोककथा में दुष्ट बंदर की धूर्तता दिखाई गई है, जो अपनी दुष्टता से सबको चोट पहुँचाता है, लेकिन अंत में उसको भी चोट पहुँचती है। लोककथा जैसी करनी वैसी भरनी के सिद्धांत पर बल देती है।

इसी प्रकार परियों की कथाएँ भी बच्चों में बहुत लोकप्रिय हैं जो उन्हें एक दूसरे ही लोक में विचरण कराने ले जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों में उड़ने वाला घोड़ा, राजा के सिर में सींग और चार बहनें प्रमुख हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य :

भारतीय दर्शन और चिंतन की परंपरा अध्यात्म पर आधारित है और चूँकि मॉरीशस की बहुसंख्यक जनता भारतवंशी है, इसलिए यहाँ की बहुत सी लोककथाएँ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक रीति-रिवाजों पर आधारित हैं। इन कथाओं में भारतीय रहन-सहन, सामाजिक व्यवस्था, जप-तप पर्व, व्रतोत्सव, प्रथा-कुप्रथाएँ, लोक मान्यताएँ, विश्वास, शगुन-अपशगुन, टोना टोटका, लोकोपचार की परंपरागत पद्धतियाँ आदि प्रतिबिंबित होते हैं। इन कथाओं के प्रमुख पात्र देवी-देवता होते हैं। अधिकांश कथाओं में भौतिक मूल्यों की तुलना में आध्यात्मिक मूल्यों को महत्त्व दिया गया है।

भाग्य पर विश्वास भारतीय संस्कृति की अनन्य विशेषता है, जो यहाँ की लोककथाओं में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। प्रहलाद रामशरण ने अनेक कहानियों-उड़ने वाला घोड़ा, भाग्य का खेल, गूलर का फूल, राजकुमार सबुर की कथा और मॉरीशस की शकुन्तला में भाग्य की महिमा प्रतिपादित की है। भाग्यवान ज्योतिषी भाग्य प्रधान लोककथा का एक बेहतरीन उदाहरण है, जिसमें बताया गया है कि मनुष्य एक सीमा तक कर्म कर सकता है, लेकिन उस

कर्म की सफलता-असफलता उसके भाग्य पर निर्भर करती है। मॉरीशस की शकुंतला लोककथा में चित्रित भाग्य की प्रबलता को निम्न वाक्य में देखा जा सकता है : लोग सैकड़ों योजनाएँ बनाते हैं, लेकिन भाग्य उन्हें एक ही झटके में चकनाचूर कर देता है। सभी कहानियों में धर्म और अध्यात्म को महत्त्व दिया गया है और धर्म के विविध सिद्धांतों पर चलकर देश और समाज के साथ-साथ वैयक्तिक उत्थान का संदेश भी दिया गया है।

सामाजिक और पारिवारिक मूल्य :

समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है। मॉरीशस में ऐसी अनेक उपदेशात्मक लोककथाएँ प्रचलित हैं जो सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का खजाना कही जा सकती हैं। इन लोककथाओं में आदर्श परिवार और समाज की कल्पना करते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन मूल्यों का अनुसरण करना आवश्यक और कल्याणकारी बताया गया है। इन कथाओं में सामाजिक और पारिवारिक कुरीतियों और दुर्गुणों से दूर रहने की सलाह दी गई है। एक तरफ आज्ञा पालक पुत्र है, साहसी नायक है, पतिव्रता नारियाँ और सेवा करने वाली संतान है तो दूसरी ओर ईर्ष्या और द्वेष से परिपूर्ण सास, देवरानी और जेठानियों के नकारात्मक चरित्र भी हैं।

बजर का किवाड़ नामक लोककथा में सात भाई-बहिन का अद्वितीय प्रेम दिखाया गया है। कथा भाई-बहिन के उदात्त प्रेम के माध्यम से भाइयों को बहन की रक्षा के लिए सर्वदा तत्पर रहने का संदेश देती है। सबुर की कथा और दासी बनी रानी में पति पत्नी का परस्पर अगाध प्रेम दिखाया गया है। गुलबकावली नामक कथा में पिता के प्रति पुत्र प्रेम दर्शाया गया है। बड़ों का आदर लोककथा में सास का अनादर करने वाली बहु को पत्थर बनाकर इस बात का संकेत किया है कि छोटों को बड़ों का पर्याप्त सम्मान करना चाहिए। काग बिडारिन तथा कौआ हंकनी कथा में बड़ी रानियों का छोटी रानी के प्रति ईर्ष्या का चित्रण है, कथा के माध्यम से संदेश देने का प्रयत्न किया गया है कि ईर्ष्या का परिणाम भयंकर होता है, जो औरों को नष्ट करने से पहले खुद का विनाश कर देता है। दुलारी बहिन लोककथा में ननद और भाभी के मध्य कटु संबंधों के माध्यम से परिवार में प्रत्येक सदस्य को प्रेम और सौहार्द बनाए रखने का संदेश दिया गया है। मॉरीशस की प्रेमप्रधान कहानियों के माध्यम से विभिन्न पारिवारिक संबंधों में व्याप्त प्रेम, कर्तव्य और उत्तरदायित्व आदि भावनाओं की प्रबलता और महत्त्व दिखाया गया है। दु:ख की पेटी, औरत और चार घंटे, गुलबकावली, सबुर की कथा, दासी बनी रानी आदि कथाओं में पति-पत्नी के प्रेम का चित्रण है। इस प्रकार की प्रेम कहानियों पर भारतीय संस्कृति और वहाँ के नायक/नायिकाओं के आदर्श चरित्र का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

मानवीय मूल्य :

मॉरीशस समाज की निर्मिति उन मनुष्यों के संघर्ष और त्याग से हुई, जो विवशताओं, मजबूरियों और विभिन्न प्रकार के दवाबों में यहाँ लाए गए थे। इसी कारण यहाँ की लोककथाओं में समष्टिगत मूल्यों का बाहुल्य है। इन कथाओं में अहिंसा, दया, त्याग, धैर्य, संयम, आत्मविश्वास, परिश्रम, ईमानदारी, कर्मठता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा जैसे गुण प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं। राजकुमार सबुर की कथा ऐसे ही मानवीय गुणों से भरपूर कथा है, जो अपने साहसिक, दुर्लभ गुणों से जीवन में सफलता पाने का संदेश देती है। इसके अतिरिक्त गुलबकावली, और उड़ने वाला घोड़ा आदि ऐसी ही कहानियों में मनुष्य को अपने धैर्य, साहस और वीरता आदि मानवीय गुणों द्वारा संघर्षों पर विजयी होते दिखाया गया है।

मॉरीशस की लोककथाएँ जन जीवन के आदर्शों और मूल्यों की सच्ची प्रतिबिंब हैं। इन लोक कथाओं में जहाँ जीवन के सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद और उल्लास के चित्र हैं, वहीं जीवन में आने वाले विभिन्न संघर्षों की झाँकी भी है। इन लोककथाओं का उद्देश्य श्रेयस और प्रेयस है और इसी भावना से प्रेरित ये लोककथाएँ श्रोताओं के समक्ष मनोरंजक ढंग से कोई विशेष संदेश लेकर आती हैं ताकि एक आदर्श परिवार, समाज और देश की परिकल्पना को साकार रूप मिल सके। मॉरीशसीय समाज इन कथाओं के माध्यम से विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहा है ताकि उनके अपने देश और उनके पुरखों के देश की संस्कृति को जीवित रखा जा सके। भोजपुरी लोककथाओं पर अपेक्षित शोध कार्य अभी होना शेष है। अकादमिक और शोधकार्य से जुड़े अनुसंधित्सुओं का यह कर्तव्य बनता है कि वे आगे आएँ और सूत्रधार बनकर यहाँ के समृद्ध लोकसाहित्य को यथाशीघ्र और यथासंभव लिपिबद्ध करने की दिशा में सक्रिय प्रयास करें। उनके प्रयत्नों से न केवल देश की समृद्ध लोकविरासत को संरक्षित किया जा सकेगा बल्कि यहाँ के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के तथ्यपरक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण करने में भी मदद मिलेगी।

❖

सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
ई मेल: pandeynutan91@gmil.com

21वीं सदी के कवितामयी दो दशक

— डॉ. रचना बिमल

पहली बार दुनिया के ह्यूमन मास्क लगाकर अपना चेहरा छुपाने पर मजबूर हो गए क्योंकि वायरस का चाबुक अमीर-गरीब, नेता-जनता, राजा-रंक, शिक्षित-अशिक्षित सभी पर बराबर पड़ रहा था। जीव-जंतुओं पर खौफनाक एक्सपेरिमेंट करने वाले वैज्ञानिकों के भी हाथों से तोते उड़ गए। वे स्तब्ध और अकर्मण्य थे। मनुष्य का आवागमन रुकते ही प्रकृति का रूप फिर से खिल उठा। विकास का मैला ढोती जलधाराएँ चाहे हिंदुस्तान में थी या इटली में धीरे-धीरे स्वच्छ और पारदर्शी हो गईं। हिमालय के दिव्य दर्शन सैकड़ों किलोमीटर दूर से होने लगे। आकाश एक बार फिर नीले शंख में बदल गया। दुनिया के सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में से एक दिल्ली की सड़कों पर मोर ही नहीं नाचे बल्कि अरावली की बची कुची अवैचारिक कुहासे से धुंधलाई सदी में मनुष्य की खोज में निकले क्रांतिकारी भी राह भटक गए हैं क्योंकि-दुबके बाघ, भालू भी राजमार्गों को सूना पाकर विश्राम करने लगे।

31 दिसंबर 1999 रात्रि 12 बजे जैसे ही घड़ी की सुइयाँ एकाकार हुई दुनिया के कथित सभ्य और समृद्ध देशों का आकाश रंग-बिरंगी आतिशबाजी से ऐसा झिलमिलया कि सुरपुर के देवगण भी संभवत: सकुचा गए होंगे। कर्ण भेदी बाजों का निनाद किसी भी आकाशवाणी, देववाणी की उपयोगिता को निरर्थक मानकर नए युग के आगाज की मुनादी कर रहा था। यह एक ऐसे युग का आह्वान था जहाँ मनुष्य को किसी देव ऋषि से अन्य लोकों के ज्ञान और समाचार की अपेक्षा नहीं रही। मनुष्य ने धरती को स्वर्ग में बदलने का सदियों पुराना स्वप्न तकनीक के सहारे और तीव्रता से पूरा करने की दिशा में कदम बढ़ाया तो सूचना क्रांति की दुदुंभी ने आम आदमी को भी वैचारिक क्षितिजों को छूने की ललक प्रदान कर दी। तब से लेकर वर्ष 2020 तक के दो दशकों में कितना कुछ बदल गया है! दुनिया इसी इंफॉर्मेशन सिस्टम के तहत ग्लोबल विलेज में बदल गई है जहाँ एक स्मार्टफोन की सहायता से व्हाट्सअप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर जैसी खिड़कियों से बड़े बूढ़े ही नहीं छोटे-छोटे बच्चे भी दुनिया के किसी भी भाग में झाँक सकते हैं। अपनी आवाज पहुँचा सकते हैं। ये खिड़कियाँ सुविधा देती हैं कि-चाहो तो इन्हें सबके सामने खोल कर बौद्धिक चौपालों का हिस्सा बन जाओ या फिर किसी कोने में बैठकर वर्जित दुनिया के अनगिनत मंचों में घुसपैठ कर लो।

आज के आम आदमी को भी लगता है कि वह कल तक कितने बंधनों में जकड़ा हुआ कूप मंडूक था। नूतन आभासीय ज्ञान चक्षुओं ने जैसे ही पूँजीवादी बाजार की तरंगों से अभिनव दृष्टि प्राप्त कर प्रज्ञा शक्ति को अंत:करण की गहरी कंदरा में धकेल दिया वैसे ही इंद्रियों के घोड़ों ने बेलगाम होकर मन की वलगा छुड़ाकर बुद्धि रूपी सारथी को भी परे धकेल दिया है। अब शरीर रूपी रथ पर यात्रा कर रहा यात्री रूपी उपनिषदीय 'आत्म तत्व' किधर और किस हाल में है उसकी सुध लेने की जरूरत 21वीं सदी के सुपर ह्यूमन को नहीं लगती। बीइंग ह्यूमन का गर्व दर्प में बदलकर जीवाणु-विषाणु, धरती-आकाश, नदी-समंदर, चर-अचर सभी को अपने अधीन मानकर वसुंधरा की परिधि से बाहर निकल चाँद और तारों पर बस्ती बसाने के ख्वाब संजो रहा है। भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य कर्म के फल से बच नहीं सकता। पता नहीं कब, कहाँ और कैसे अनजाने में या जानबूझकर कोई चूक हुई और कोरोना जैसा वायरस इस ह्यूमन संसार को लीलने लगा। दुनिया के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है जब सारी दुनिया के पहिए एक साथ थम गए।

पंछियों की तरह उड़ते वायुयानों के पंख सिकुड़ गए तो चीते की तरह दौड़ती रेलगाड़ियाँ, सरपट भागती बसें, कारें भी घरघरा के थम गई। इतना ही नहीं 11 नंबर के वाहन अर्थात् अपने पैरों पर चलता हाँफता आदमी भी अचकचा कर रुक गया कि कहीं कोरोना वायरस उसे रुला ना दे। कल तक जो ह्यूमन धूल को धुएँ की गर्द में, प्राण दायक वायु को गैस चेंबर में, सूर्य की किरणों को धुंधलके में बदल कथित विकास का तमगा धरती के सीने पर सजा रहा था आज वह डरकर अपने ही घरों में कैद होकर रह गया।

पहली बार दुनिया के ह्यूमन मास्क लगाकर अपना चेहरा छुपाने पर मजबूर हो गए क्योंकि वायरस का चाबुक अमीर-गरीब, नेता-जनता, राजा-रंक, शिक्षित-अशिक्षित सभी पर बराबर पड़ रहा था। जीव-जंतुओं पर खौफनाक एक्सपेरिमेंट करने वाले वैज्ञानिकों के भी हाथों से तोते उड़ गए। वे स्तब्ध और अकर्मण्य थे। मनुष्य का आवागमन रुकते ही प्रकृति का रूप फिर से खिल उठा। विकास का मैला ढोती जलधाराएँ चाहे हिंदुस्तान में थी या इटली में धीरे-धीरे स्वच्छ और पारदर्शी हो गईं। हिमालय के दिव्य दर्शन सैकड़ों किलोमीटर दूर से होने लगे। आकाश एक बार फिर नीले शंख में बदल गया। दुनिया के सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में से एक दिल्ली की सड़कों पर मोर ही नहीं नाचे बल्कि अरावली की बची कुची अवैचारिक कुहासे से धुंधलाई सदी में मनुष्य की खोज में निकले क्रांतिकारी भी राह भटक गए हैं क्योंकि-दुबके बाघ, भालू भी राजमार्गों को सूना पाकर विश्राम करने लगे। ऐसे में कवि मन इठला उठे; देखते ही देखते वाट्सअप, फेसबुक आदि के पन्नों पर कविता की नूतन बौछारें सहृदयों के ऊपर तड़ित वार करने लगी। हिंदी जगत में तो सवैया, गवैया, लडैया, खेवईया सभी जन कवि बन तेरी मेरी कविता फॉरवर्ड करने लगे। पर वह कविता जो चंद शब्दों में वक्त की तासीर का पता देती है ना जाने कहाँ गुम हो गई। कविता तो अपने वक्त की सबसे अनमोल वस्तु होती है जिसकी परिधि बहुआयामी और बहुत व्यापक होती है। वह मन की सोई संवेदना को झकझोर कर किसी राजा जयसिंह को एक झटके में भोग विलास के दलदल से बाहर निकाल लेती है तो नेत्रहीन पृथ्वीराज को लक्ष्य बोध करा उसके जीवन का लक्ष्य पूर्ण करा सकती है। संभवत: इसीलिए आचार्य शुक्ल ने कहा था कि-कविता हृदय की मुक्ति साधना के लिए शब्दों का विधान करती है। वह मनुष्य को संवेदनात्मक लय प्रदान करते हुए उसके विवेक को जागृत कर उसे अमानुषिक बनने से रोकती है। विवेकीय सजगता ही मनुष्य को विषम परिस्थितियों से जूझ कर विजयी बनाती है किंतु उसकी विजय में रावण का अहंकार नहीं, राम की उदात्तता और विनम्रता समाई होती है। यह उदात्तता और विनम्रता जब तुलसीदास जैसे कवि की लेखनी में समा जाती है तो उसकी कविता स्वांत; सुखाय होते हुए भी बहुजन हिताय में बदल दूसरों के सुख-दुख की सह भागी बन अमरत्व को प्राप्त करती है। प्रश्न यह है कि क्या 21वीं सदी की कविता में साहित्य की इन ऊँचाइयों का संस्पर्श करने का सामर्थ्य है?

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य शब्द का अर्थ साथ-साथ रहने का भाव बताया था।'[1] यह साथ-साथ हृदय का विस्तार अर्थात उदारता के भाव के बिना संभव नहीं है और उदारता अपनों के लिए ही नहीं शत्रुओं के लिए भी स्पेस निर्मित करती है। उदार दृष्टि तो अवगुणों की काई के नीचे खो गई मनुष्यता को भी बाहर खींच लेती है। बीइंग ह्यूमन का तो पता नहीं पर मननशील मनुष्य वैविध्य धर्मी विचारधाराओं में बहते हुए अतीत से लेकर वर्तमान तक उन मणिमुक्ताओं की तलाश कर रहा है जो अंतिम पायदान पर खड़े मानव को भी मानव होने का एहसास करा सकें। कविता इस पड़ताल का सशक्त औजार है। आज की मीडिया वैचारिक दुनिया में कविता की आवश्यकता पहले से कहीं ज्यादा है क्योंकि वह हृदय की रागात्मकता को थाम कर वर्तमान के विकास, विचार और उपलब्धियों की पड़ताल करती है। समकालीन जीवन की अनुभूतियों तक पहुँचाती है। कभी-कभी मनुष्य की आँखों के सामने जो घटित होता है जरूरी नहीं उसका सत्य वही हो जो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा हो। जब आँखों के बहुत निकट होने पर भी वस्तु साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ती तब घटना का विश्लेषण करने के लिए निरपेक्षता की दूरी जरूरी होती है। कविता मानव को यही दूरी प्रदान कर परिस्थितियों और उनसे जन्मी घटना की सत्यता को जानने का अवसर देती है। 21वीं सदी का कवि कविता की इस खूबी को बखूबी पहचानता है। शायद इसलिए 21वीं सदी के युवा कवि आशीष कंधवे ने लिखा है-

यह अंतहीन जंग का आधुनिक युग है/आकाश पाताल एक कर दिए हमने/ठीक है, पर/आदमी नहीं बन पाए/आदमियत नहीं बचा पाए और/भगवान हम बन नहीं सकते!/तो देखो ढोकर/कहाँ तक ले जाता है/अपने आप को/अपने पाप को/ये 21वीं सदी का आदमी।[2]

वैचारिक कुहासे से धुंधलाई सदी में मनुष्य की खोज में निकले क्रांतिकारी भी राह भटक गए हैं क्योंकि-कुछ के रुख दक्षिण हो गए/कुछ के हो गए वाम/सूरज के घोड़े देखो/हुए

बेलगाम! नतीजा समाज भी बेलगाम हो गया और मनुष्य या तो व्यापारी बन गया या उपभोक्ता। व्यापार और उपभोग की डगर पर यदि अतिशयता के कैक्टसी फूल बिखर जाए तो उनकी मादकता विवेक का हरण कर लेती है। देखते ही देखते मनुष्यता के समस्त गुण पूँजी यानी धन की धुंध में गुम हो जाते हैं। उफ... धन तो समकालीन जीवन का केंद्र बिंदु है जिसके इर्द-गिर्द ही राजनीति, समाज, संस्कृति, कानून और अब विज्ञान एवं अनुसंधान भी नृत्य कर रहे हैं! धन के पीछे भागता व्यक्ति घर की चौखट लाँघ अपना गाँव, शहर ही नहीं; देश को भी त्याग कर दुनिया के किसी भी बाजार में अपनी सेवाएँ बेचने को तैयार है बशर्ते उस बाजार की ब्रांड वैल्यू हो। उस ब्रांडेड बाजार में बिकने को तैयार सेवादार भी जरूरी नहीं पूरी तरह योग्य हो उसे तो बस खुद को बेचने की कला आनी चाहिए! इस स्थिति को अभिव्यक्ति करते हुए मेहरबान राठौर लिखती हैं-

बाजार में तुम्हारे/बिकने के लिए जरूरी नहीं कि तुम हो/24 कैरेट की तरह खरे/ना ही जरूरत है/तुम्हें वैज्ञानिक की/परखनली में रहने की/कीड़ों व कीटनाशकों/के मिलावट भी/मायने नहीं रखती/बाजार में बिकने के लिए/सबसे जरूरी है रैपर/आकर्षण सा और/उस पर पहुँचा सा ब्रांड।[3] बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों ने उदारीकरण और भूमंडलीकरण का जो जाल बिछाया, उसने आदमी को माल में बदल दिया। इस माल को गुलाम बनाकर कब्जे में रखने की जरूरत नहीं बस उसके आगे खनकते-चमकते सिक्कों की बौछार करते रहिए। मुद्रा की खनक ने जीवन की मुद्राएँ बदल दी हैं। धन प्रेमी को प्रकृति नहीं काँच के एयर कंडीशन घर और ऑफिस चाहिए जहाँ प्लास्टिक से लेकर बोनसाई पौधों की हरियाली हो, मलयज पवन नहीं इत्र या रूम फ्रेशनर की गंध व्याप्त हो, खेलने के लिए मैदान नहीं पब्जी या स्क्रीन की आभासी दुनिया के गेम्स मौजूद हो, जीवन साथी नहीं लिव इन रिलेशनशिप का पार्टनर हो! अपने लोग, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति से दूर किसी मेट्रोपॉलिटन सिटी में फुल सिक्योरिटी फैसिलिटी वाला अपार्टमेंट हो, जहाँ दिन की थकान जाम से उतारने और वैश्विक भाषा में आधे-अधूरे शब्दों, वाक्यों की जुगाली करते हुए चंद दोस्तों के साथ बौद्धिकता का नाटक करने की और सुकून भरी सुविधा हो। घूमने के लिए 'मॉल' चाहिए क्योंकि इस मेट्रोपोलिस सिटी में/फुल सिक्योरिटी/फुल फैसिलिटी है..../मॉल भी इतना अच्छा खासा बड़ा है/बाकी शहर के लोग/यहाँ सज धज कर ललचाते हुए आते हैं/जबकि यहाँ/सस्ता कुछ भी नहीं है/दरअसल यहाँ रहने/यहाँ आने का अपना एक सुख है/सुख है कि/अगर आप यहाँ आ सके तो/अपने से भी अधिक अच्छे लगने लगते हैं/अब यह और बात है कि/यहाँ पर हर कोई/कोई और नजर आता है....[4]

धन शक्तियों की शक्ति होता है जो अशक्त को भी सशक्त बना देता है फिर भले ही उसके हाथों मनुष्यता, योग्यता, प्रतिभा का दमन ही क्यों ना हो जाए। जर्मन कवि गेटे ने कहा था-मैं वही हूँ जो मैं खरीद सकता हूँ। मैं बदसूरत हूँ लेकिन अपने लिए सबसे खूबसूरत औरत खरीद सकता हूँ इसलिए बदसूरत नहीं हूँ। मैं लंगड़ा हूँ लेकिन 24 पैर खरीद सकता हूँ इसलिए लंगड़ा नहीं हूँ। मैं मूर्ख हूँ पर समझदारों को खरीद सकता हूँ और समझदार जिसकी सेवा में रहते हों क्या वह समझदारों से ज्यादा समझदार नहीं है? क्या मेरा धन मेरी तमाम कमियों को मेरी खूबियाँ नहीं बना देता?[5] धन की यही शक्ति आधुनिक युग में विकासशील देशों से प्रतिभा पलायन करा रही है जिसमें ग्लोबलाइजेशन के कारण और अधिक तेजी आ गई है। वरना क्या वजह थी कि जिस देश में सदियों तक समुद्र पार जाना निषिद्ध रहा, आज उसके बाशिंदे खुशी-खुशी सुदूर देशों के निवासी बन बैठे हैं। अपने मन की कोमल भावनाओं, संवेदनाओं को कुचल कर रिश्तों की डोर काटकर भी पराए देश की धरती अपनी नहीं हो पाती। जो अपना था वह भी अपना नहीं रहता। इस अप्रिय वेदना को ह्युस्टन निवासी इला प्रसाद की कविता में बखूबी पकड़ा जा सकता है-

सब कुछ बड़ा है यहाँ/आकार में/इस देश की तरह/असुरक्षा, अकेलापन और डर भी/तब भी लौटना नहीं होता/अपने देश में।[6]

दरअसल धन तंत्र मनुष्य को पशु योनि से इतर सिद्ध करने के वास्ते गुणों से भी दूर कर देता है। प्रेम, त्याग, करुणा, परोपकार, संतोष जैसे भावों का स्थान लोभ, लालच, असंतोष आदि ग्रहण कर लेते हैं। सतत असंतुष्टि मानव को जहाँ तनावग्रस्त रख मनोरोगी बना देती है, वहीं आंतरिक और बाह्य प्रेम भी कपूर की भाँति उड़ जाता है। उसकी प्रकृति विकृति में बदल जीवन के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का भी अंधाधुंध दोहन कर जीव जगत का संतुलन बिगाड़ने पर तुली है। जंगल-लकड़ी और खनिज संसाधनों की 'खानें' मात्र रह गए हैं जिनकी नियति में कटना तय कर दिया गया है। शेर, चीते, भालू, हिरण, बंदर, तोता, मैना और पशु-पक्षियों की असंख्य प्रजातियों का उन पर कोई अधिकार नहीं; ठीक वैसे-जैसे नदी-नालों, ताल-तलैया, समुद्र में रहने वाले जलचरों का उन पर कोई दावा नहीं। ठेकेदारों को ठेका मिला नहीं कि जल-चर, नभ-चर जीवों का जीवन छिना नहीं। प्रकृति और उसकी संतानों का क्रंदन

किसी को सुनाई नहीं पड़ता। उजड़ती वसुधा के दुष्परिणामों की चिंता टेलीविजन की स्क्रीन पर प्रकट होने वाले विचारकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों द्वारा यदा-कदा प्रकट भी की जाती है तो उसकी परिणति आग पर पानी के छींटों के समान अस्तित्व खो बैठती है। प्रकृति दोहन की पीड़ा को अभिव्यक्त करती निर्मला पुतुल की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

अपनी बस्ती के सीमांत पर/जहाँ धराशाई हो रहे हैं पेड़/कुल्हाड़ियों के सामने असहाय/रोज नंगी होती बस्तियाँ/एक रोज माँगी तुमसे/तुम्हारी खामोशी का जवाब।[7] वरिष्ठ आलोचक डॉ. कुमुद शर्मा इस स्थिति का सटीक विश्लेषण करती हैं-'पृथ्वी और प्राकृतिक संतुलन का सवाल हमारे अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। हम कितना भी विकास कर जाएँ, विकास की सीढ़ियाँ चढ़ जाएँ एक प्राकृतिक आपदा हमारे समूचे अस्तित्व को मिटा कर रख देगी...तुम हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण का वैश्वीकरण मत करो, उसमें हस्तक्षेप मत करो। तुम बर्फ से ढकी हुई हंसों के पंखों से उज्ज्वल हमारी पहाड़ियों का बाजारीकरण मत करो।'[8] प्रकृति का बाजारीकरण सबसे बड़ा अन्याय है। अन्याय को घटित होते देख कर भी खामोश रह जाना मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध है। इतिहास साक्षी है कि यह खामोशी ही उच्च आदर्शों पर जीने वाले समाज और संस्कृति के क्षय का कारण बनती है। कभी-कभी तो लम्हों की खता की सजा सदियों तक भोगनी पड़ती है। भारतवर्ष की गुलामी का कारण भी राष्ट्र का एकजुट ना होकर आतताइयों के विरुद्ध आँख मूँद लेना था। अतीत के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि व्यक्तिगत हानि लाभ को तौलने की प्रक्रिया में बड़े-बड़े साम्राज्य खंडित होकर छोटी-छोटी रियासतों में बँटते चले गए। हम आर्यावर्त से भारतवर्ष और भारत से रियासतों में बँटने के बीच धूल-धूसरित हो गए। हमारा वसुधैव कुटुंबकम का स्वप्न, धर्म, गर्व, पर्व और मूल्य-प्रथम विदेशी आक्रमण से लेकर अंग्रेजों के शासन तक, इसी व्यक्तिगत सोच के कारण धूल में मिल गए। 15 अगस्त 1947 को हम स्वतंत्र भले ही हो गए हो लेकिन हमारी सोच आज भी वही है। हम स्व के लिए राष्ट्र को भी दाँव पर लगाकर शहीदों का अपमान कर देते हैं। निजता की स्वतंत्रता की पश्चिमी अवधारणा हमें पाश्चात्य चिंतन के निकट से निकट लाती जा रही है जो कहीं ना कहीं 21वीं सदी में भी हमारी मानसिक गुलामी को जारी रखे हैं। दुख इस बात का है कि गुलामी अब हमें गुलामी नहीं लगती अपितु आधुनिक विकास की कसौटी लगती है जिस पर खरा उतरना सफलता की निशानी है। स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता इस पूरी स्थिति का एक्सरे प्रस्तुत करती है-वे जिस प्रकृति के हैं/उसी तरह उन्होंने/हमें बना लिया है/हम उनके/गुलाम बन गए हैं/वे कहते हैं उठो/हम उठ जाते हैं/वे कहते हैं बैठो हम बैठ जाते हैं/उन्होंने हमें इतना हिंसक/बना लिया है कि जब कोई/उनके खिलाफ बोलता है/हम बंदूक उठा लेते हैं/हम उनके पालतू कुत्ते/बन गए हैं/जरा सी आहट पर/भोंकने लगते हैं/बहुत से अच्छे लोग उनके/हरम में दाखिल हो गए हैं/उनके एक इशारे पर नाचने/गाने लगते हैं/स्वतंत्र नहीं रह गए हैं हमारे/विचार/ उनकी जगह हमने उनके दिव्य वचनों को/मंत्र की तरह अपना लिया है/हम उनकी शौर्य गाथाओं को अपने/गर्वज्ञान की तरह गाते हैं।[9]

भारतीय संदर्भ में मानसिक गुलामी का यह पट्टा हमारे बहुसंख्यक नेताओं से लेकर जनता तक ने स्वेच्छा से धारण कर लिया है। शताब्दियों तक भारत का जो दोहन हुआ है उसका परिणाम भूख, गरीबी, बेरोजगारी के रूप में सामने आया है। लूट की छूट को ही दुर्भाग्य से शक्ति सामर्थ्य का पर्याय मान लिया गया है। दबंगई की उपलब्धि पाने के लिए वर्तमान भूत का अनुकरण कर भविष्य का चित्र गढ़ने लगा। अनुकरण की प्रवृत्ति मेधा शक्ति को समाप्त कर देती है। हमारा स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्र भारत का विश्लेषण इस तथ्य को उजागर कर देता है। आज देश के बुद्धिजीवियों का बहुत बड़ा तबका मानता है कि भारतीय संविधान एवं राज्य व्यवस्था में विदेशी चिंतन के कारण भारतीयता का तत्व ही गायब है। हमारा आचार-विचार, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा सब विदेशी विशेष रूप से अंग्रेजी कल्चर से प्रभावित है। स्वतंत्रता के उपरांत अंग्रेज अपने तन से हिंदुस्तान को छोड़कर चले गए मन से नहीं। उनका मन तो नेटिव अंग्रेज अर्थात भूरे हिंदुस्तानियों के भीतर पैठ चुका है। अंग्रेजी परस्त ये हिंदुस्तानी अपनी भाषा चिंतन दर्शन से बहुत आगे जा चुके हैं जो देश की संसद, विधानसभाओं, जिला मुख्यालयों, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से लेकर हर छोटे-बड़े पद पर प्रतिष्ठित है। अपनी भाषा में बोलना और सोचना उनके लिए पिछड़ेपन की निशानी है। उनके विकास की गाड़ी भी विदेशी रीति-नीति के दिशा निर्देशों पर चल रही है। विकास की गाड़ी का मीटर गेज भी उदारीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने बदल कर रख दिया है। इस गाड़ी को रोकने वाला, किसी विचारधारा का झंडा उठा पहरुए की वर्दी पहनने वाला कोई 'गार्ड' भी दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ता। 21वीं सदी के अंतिम दो दशकों में समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा से जुड़ी दुनिया भी छिन्न-भिन्न हो गई है। सोवियत संघ का पराभव मनुष्य

के तथाकथित 'महास्वप्न' के टूटने की त्रासदी भी था। साम्यवादी-समाजवादी क्रांति के इस पुरोधा के पराभव ने शेष विश्व की पूँजीवादी व्यवस्था को ही नए संदर्भों में पैर फैलाने का मौका दिया। पूँजीवाद ने उदारवादी खुली अर्थव्यवस्था का डब्ल्यू.टी.ओ. के रूप में जो आर्थिक विकास का मॉडल प्रदान किया कालांतर में वही भूमंडलीकरण कहलाया, जिसे सांस्कृतिक ऊँचाइयाँ देने के लिए ग्लोबल विलेज भी कहा गया। लेकिन यह ग्लोबल विलेज भारत की वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा से दूर शोषण और दोहन की युति का भूमंडलीकरण है जहाँ दुनिया मुक्त बाजार बनकर रह गई है। मुक्त बाजार ने ही उपभोक्तावाद के साथ मॉल संस्कृति और ब्रांड संस्कृति को जन्म दिया जिसने अबोध बच्चों से लेकर मृत्यु तक को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। उपभोक्तावाद ने मनुष्य की वैचारिक शक्ति पर मीडिया यानि जनसंचार माध्यमों के द्वारा ऐसी चोट पहुँचाई है कि समृद्ध से समृद्ध समाज का भी मानसिक संतुलन डगमगा गया है। वरना कोई विज्ञापन बच्चे के मुख से कैसे कहला सकता है कि मेरी माँ तो बुद्धू है -जो जानती ही नहीं कि दूध विटामिन डी के बिना पीना बेकार है और पौष्टिक दूध तो विशिष्ट कंपनी के चॉकलेटी पाउडर के साथ ही पीना फायदेमंद है! डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों को बेचने के लिए विटामिन डी के सबसे बड़े स्रोत-सूर्यदेव और पीढ़ी दर पीढ़ी यह ज्ञान हस्तांतरित करने वाली माँ एक साथ मूर्ख सिद्ध कर दी गई। लीलाधर मंडलोई ने इसीलिए लिखा कि-पारंपरिक खाद्य वस्तुओं पर मार जमाने की/बाहर के अदृश्य हाथ सक्रिय इतने/कि भर उठे बाजार डिब्बाबंद संस्कृति से/जो थोड़ा खुला झूठ/ले आया असंख्य बीमारियाँ/भोजन का ऐश्वर्य था स्क्रीन पर/और गायब थी वस्तुएँ गोदामों में/विश्व बैंक खुश था/और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष उत्तफुल्ल/[10]

उपभोक्तावाद के दुष्परिणामों को स्पष्ट करते हुए प्रभा खेतान सीधे-सीधे टिप्पणी करती हैं कि-मनुष्य शारीरिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी मानसिक रूप से गुलाम है और उसका विकास भी अवरुद्ध है[11]। भौतिकतावाद उर्फ उपभोक्तावाद ने मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति पर चोट ही नहीं की वरन उसकी पढ़ने-लिखने की रुचि और संवेदना को ही उथला कर दिया। रही सही कसर इंटरनेट की आभासी दुनिया ने पूरी कर दी है। डिजिटल डॉट कॉम के युग में जी रहे मानव को साइबर स्पेस की ब्रह्मांड की तरह फैलती कृत्रिम दुनिया ही रोमांचक एवं विश्वसनीय दिखाई पड़ती है। फैशन, सेक्स, हिंसा, सौंदर्य प्रसाधन, यथार्थ या सामाजिक सच के नाम पर पाँव पसारती अश्लीलता- मीडिया की वैचारिक शून्यता को भरने का काम कर रही है। हमारी सामाजिकता, अस्मिता, राजनीतिक भूमिका, सांस्कृतिक धरोहर, अस्तित्व के विभिन्न आयाम सभी तो सूचनाओं से जुड़ गए हैं। व्हाट्सअप यूनिवर्सिटी की मैसेज वाली कक्षाएँ इन सूचनाओं को तुरंत अपने फ्लोअर्स व विद्यार्थियों को पहुँचाने में माहिर हैं। ये बात और है कि इनके अनुयायियों को ज्ञान के स्त्रोत, उसकी सत्यता और असत्यता की जानकारी अधिकांशत: उपलब्ध नहीं हो पाती। नतीजा कब और कैसे-कोई व्यक्ति, समाज या देश सांप्रदायिक दंश, आतंक के साये या फिर युद्ध के उन्माद में झुलस जाए, वह जान ही नहीं पाता। आतंक और युद्ध मानवता के वे घाव है जो कभी भरते नहीं तथा इनसे स्त्री और बच्चे सर्वाधिक त्रास पाते हैं। प्रगतिशीलता, आधुनिकता और बराबरी के तमाम दावों के बावजूद स्त्री तो आज भी दोयम दर्जे की नागरिक है। जेबा रशीद के शब्दों में-कितने कटघरे हैं/हैं कितनी अदालतें/फिर भी अन्याय से/घिरे हैं हम/कितने हैं ईश्वर अल्लाह/है मूसा और गुरु/फिर भी कितना है अधर्म/देश में है पूरी आजादी/फिर भी कितने खूँटे से/बंधी हैं हम[12] दूसरी ओर दुनिया की आधी आबादी का कुछ अंश बंद समाजों में ही नहीं आधुनिक विकसित देशों में भी परंपरागत खूँटों से ही बँधना चाहता है क्योंकि पितृसत्तात्मक सोच ने घर से बाहर निकल नौकरी करने वाली स्त्रियों का शोषण कई गुना किया है। औद्योगिकीकरण के उपरांत समाज ने जब स्त्री के घरेलू कामकाज को हेय दृष्टि से देखा और पुरुष ने पत्नी, माँ, बेटी के रूप को कमतर आँकते हुए आत्मनिर्भर स्त्री को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा तो घर में जीवन होम करने के स्थान पर बाकी स्त्रियों ने भी धीरे-धीरे घर की चौखट लाँघ कर नौकरी करना आरंभ किया। इस प्रक्रिया में स्त्री का वर्क लोड घर और दफ्तर दोनों में ही बढ़ गया। फलत: अमरीका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों की उच्च शिक्षित और अपने-अपने क्षेत्र में बेहद सफल रही स्त्रियाँ 'ट्रेडिशनल वाइफ मूवमेंट' का हिस्सा बन सफल कैरियर को त्याग कर केवल अपना घर सँभालना चाहती हैं। यह आंदोलन अमेरिका के पूर्व उपराष्ट्रपति अलगोर की पत्नी सन 1993 से चला रही और इसे समर्थन भी मिल रहा है।

शायद इसीलिए हरीश अरोड़ा ने लिखा-वर्षों से टंगे/इस कैनवास में/कुछ भी नहीं बदला/न बदली नदी/न सूरज की उजली धूप/ना लहराते हुए पेड़/और/ना ही बदली/कैनवास से बाहर झांकती/लड़की की/एकांत निगाहें[14] स्त्री जगत की यह द्वंदात्मक स्थिति भारत में भी बढ़ती जा रही है। प्रौढ़ माँओं ने अपने सपने अपनी बेटियों को सौंप दिए और बेटियों ने भी उन्हें

पूरा करने में पूरा दमखम लगा दिया। उन्हें लगा शायद इसी से दहेज, स्त्री-पुरुष और बेटा-बेटी का अंतर जैसी समस्याओं से निजात मिल जाएगी लेकिन मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा करी। 21वीं सदी का भारत स्त्री के लिए दुनिया के सर्वाधिक असुरक्षित देशों में से एक बन गया है। दुख इस बात का है कि जिस भारत देश में कन्या पूजन होता है उसी देश में अब स्त्री भोग्या मात्र समझी जा रही है। बलात्कार की बढ़ती नृशंस घटनाओं के कारण देश ही नहीं दुनिया हिल रही है। हैवानियत से भरे दरिंदे गोद की बालिका से लेकर 95 वर्ष की बूढ़ी अम्मा की अस्मत और जीवन को तार-तार कर रहे हैं। निर्भया कांड ने तो देश-दुनिया की संवेदना को झकझोर कर रख दिया था किंतु कड़ा कानून भी ऐसी खौफनाक घटनाओं को रोक नहीं पा रहा। शायद इसलिए भावना शर्मा शुक्ल लिखती हैं-देवभूमि के सभी निवासी/किंतु देवगुण शेष नहीं/निहित स्वार्थ की हुई अधिकता/निस्पृहता है कहीं-कहीं/निहित स्वार्थ के सामने पिछड़ गया देश[15]

देश अर्थात भारत के पिछड़ने का कारण तो भारत प्रेमी कब का ढूँढ़ चुके हैं लेकिन सत्य को जानने मात्र से समस्याओं का समाधान कभी नहीं होता। समाधान हेतु वाणी का वाग विलास नहीं, सच्चा मानव प्रेम, राष्ट्र निर्माण के लिए सर्वस्व अर्पण, लौकिक-अलौकिक कामनाओं को त्याग कर नींव का पत्थर बनना होता है। जो राष्ट्र एकजुट होकर इस कार्य में प्रवृत्त होता है वही संसार में प्रगति कर सम्मान पाता है। इन भावों के धनी, हमारे साथ ही स्वतंत्र होने वाले या नवनिर्माण में जुटने वाले राष्ट्र हम हिंदुस्तानियों से कहीं आगे निकल गए हैं। दूसरे महायुद्ध में गरिमा खोकर नष्ट हुआ जापान हो या फिर अपनी जमीन तलाशता इजरायल आज कहाँ वे और कहाँ हम? यही नहीं सत्य तो यह है कि आर्थिक प्रगति हो या मानवीय सूचकांक जैसी कसौटी, इन सभी पर दक्षिण कोरिया, श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर जैसे छोटे-छोटे देश भी हम से कोसों आगे निकल गए हैं। इन देशों ने नूतन विकास के साथ-साथ अपनी भाषा संस्कृति को भी सहेज कर रखा है पर हम पश्चिम की नकल करते-करते अपने मूल्य, अपने धर्म, अपनी संस्कृति से दूर हो गए हैं। वरिष्ठ कवयित्री इंदिरा मोहन जी के शब्दों में कहें तो-हम हिंदुस्तानियों को तो-/चटक धूप सुविधा की भाती/छाया से मन घबराता/अपने-अपने राजमहल हैं/गाँवों से छूटा नाता/×××× गंदले जल से प्यास बुझा कर/दलदल में फँसता जाता/कौड़ी मोल बेचकर हीरा/कर्जे में धँसता जाता....[16]

भारतीय जनमानस आज वास्तव में दलदल में धँस चुका है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सामाजिकता की बलि चढ़ा दी गई है। प्लास्टिक की संवेदना के पुष्प गुच्छ से दूसरों को मंत्रमुग्ध किया जा रहा है। नगरीय सभ्यता के विश्वविद्यालयों में यह कला सीखी और सिखाई जा रही है। यहाँ के विद्यार्थी किलर इंस्टिंक्ट का मंत्र जपते हैं, जिसका सफल साधक आत्मश्लाघा में डूब कर किसी अन्य को अपने समकक्ष नहीं देखता। हर कीमत पर आगे बढ़ने की धुन साथ चलने वाले को धक्का देने से भी गुरेज नहीं करती। इसलिए कुश चतुर्वेदी ने लिखा-गर मन छोटा हो/बड़ी बात बेमानी है/लज्जा वाले नेत्र मूंद लो/फिर दुनिया अनजानी है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता इसी अनजानी दुनिया की परतों को खोलकर जनमानस को झकझोरने का प्रयास कर रही है। प्रयास कितना सफल होगा यह तो भविष्य के गर्भ में छिपा है लेकिन धार के विपरीत तैरने वालों के हौंसलों को सलाम करना तो बनता है!

संदर्भ

1. साहित्य-सहचर-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 2
2. 21वीं सदी का आदमी-आशीष कंधवे, पृ. 4
3. काव्यम (कविता द्विमासिक)-मेहरबान राठौर, मई-जून 2007, पृ. 8
4. जनपथ-शैलेय, जुलाई 2013, पृ. 36, 37
5. इकोनॉमिक्स एंड फिलोसॉफिकल मेनू स्क्रिप्ट ऑफ 1844-मार्क्स द्वारा उद्धृत पंक्तियों का भावांश, पृ. 128-130
6. हिंदी जगत-इला प्रसाद, जनवरी-मार्च 2017, पृ. 38
7. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द-निर्मला पुतुल, पृ. 14
8. हिंदी साहित्य और पर्यावरणीय संवेदना-डॉ. कुमुद शर्मा, पृ. 13
9. अभिनव मीमांसा-स्वप्निल श्रीवास्तव, जुलाई-सितंबर 2020 पृ. 9
10. मगर एक आवाज-लीलाधर मंडलोई, पृ. 53
11. भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र-प्रभा खेतान, पृ. 64
12. मधुमती-जेबा रशीद, अक्टूबर 2008, पृ. 18
13. परिवार की ओर लौटता पश्चिम -क्षमा शर्मा, दैनिक जागरण 23 नवंबर 2020, पृ. 12
14. कैनवास से बाहर झाँकती लड़की-हरीश अरोड़ा पृ. 20
15. पेड़ बनकर सोचो-डॉ भावना शर्मा शुक्ल, पृ. 67
16. साहित्य अमृत-इन्दिरा मोहन, मई 2015 पृ. 32-33

❖

सहायक प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
79, भागीरथी अपार्टमेंट्स, रोहिणी, दिल्ली-110085
ई-मेल : dr.rachnabimal@gmail.com

मानवीय मूल्यों का विघटन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध

— नेहा चतुर्वेदी

वर्तमान समय में मनुष्य की जड़ें सतही होती जा रही हैं, वह अपनी जड़ों से जुड़ नहीं पाता है इसलिए छोटी-छोटी कठिनाइयों से भी वह भयभीत हो जाता है, जल्दी ही समझौता कर लेता है, थोड़े से लाभ हेतु मानव-धर्म छोड़ देता है एवं दूसरों की खुशामद करता है। मनुष्य आधुनिक बनने की होड़ में इतना अंधा हो गया है कि वह जिस डाली पर बैठा है उसे ही काट रहा है। जिस स्वाभिमान, उल्लास और गरिमा से 'कुटज' जीता है वह मनुष्य अपने भीतर ला ही नहीं पाता है और यही वजह है कि जीवन जीने का सही अंदाज, सही उद्देश्य वह समझ नहीं पाया है। उसका कृत्रिम व्यवहार उसे कृत्रिम जीवन जीना और दूसरों के सुख एवं अधिकारों को हड़पना ही सिखाता है जो जीवन का असली रस, असली सुख नहीं है। यह केवल मन की उच्शृंखलता एवं तृष्णा है, वह तृष्णा जो कभी खत्म ही नहीं होती है। एक तृष्णा अगर पूरी भी हो जाए तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है।

जयशंकर प्रसाद ने अपनी रचना 'कामायनी' के 'कर्म सर्ग' में लिखा है-"औरो को हँसते देखो मनु/हँसो और सुख पाओ/अपने सुख को विस्तृत कर लो/सब को सुखी बनाओ।"[1] इन पंक्तियों के मूल में अपनी संवेदना को विस्तृत करने की बात कही गई है क्योंकि व्यक्ति मनुष्य कहलाने का अधिकारी तभी बन सकता है जब वह अपनी संकीर्णता को त्याग सभी के लिए एवं सभी के हित में सोचे लेकिन मनुष्य ने अपने चारों ओर 'मैं' का एक ऐसा संकीर्ण घेरा बना लिया है जिसमें किसी अन्य का प्रवेश वर्जित है, जहाँ वह केवल अपनी स्वार्थ पूर्ति की बात सोचता है। इस घेरे का टूटना आवश्यक है और साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपने 'स्व' की इस परिधि को तोड़कर 'पर' की भी चिंता करे लेकिन वर्तमान समय में मानवीय संवेदनाओं का मशीनीकरण बड़ी शीघ्रता से होता जा रहा है। मनुष्य निरंतर उन्नति कर रहा है, नए-नए आविष्कार कर रहा है, उसने प्रकृति पर भी लगभग विजय हासिल कर ली है लेकिन इन सभी को पाने और जीतने की लालसा में एक चीज वह निरंतर खोता जा रहा है, वह है उसकी मनुष्यता, उसके मनुष्य होने की पहचान। वह उन सभी गुणों को भूलता जा रहा है जो उसे मनुष्य कहलाने के अधिकारी बनाते हैं। उसके भीतर से संवेदना और मानवीय मूल्य मरते जा रहे हैं और इनका मरना बड़ा भयावह है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे रचनाकार हैं जिनके चिंतन के केंद्र में मानवता है। द्विवेदी जी मनुष्य को श्रेष्ठ मानते हुए मनुष्यता के गुण को सबसे बड़ा गुण मानते हैं। द्विवेदी जी के ललित निबंधों में मानवीय मूल्यों के विघटन के प्रति चिंता देखने को मिलती है। अपने निबंधों में उन्होंने प्रकृति और दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाओं को आधार बनाकर मनुष्य को उसकी उन विशेषताओं की याद दिलाने की कोशिश की है जो मनुष्य में होने चाहिए और जिनसे वह वंचित होता जा रहा है।

द्विवेदी जी के ललित निबंधों की यह विशेषता है कि वह बिल्कुल सहज एवं साधारण से लगने वाले विषयों में भी अपनी संवाद-शैली द्वारा गंभीर से गंभीर विचारों को प्रस्तुत कर देते हैं। अपने निबंधों में सामान्य प्रसंगों से बात आरंभ करते हुए द्विवेदी जी अंततः उन्हें बड़े संदर्भों से जोड़ देते हैं। यह उनके लेखन की विशेषता ही है कि उनके ललित निबंध शुरू से अंत तक अपने पाठकों को बाँधे रखते हैं और पाठक सहज ही खुद को प्रस्तुत विषय से जोड़ पाते हैं। डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र द्विवेदी जी की लेखनी के संदर्भ में कहते हैं, 'मशीन से रस की अपेक्षा केवल वही कर सकता है, जो बालू से तेल निकालने की कला जानता हो। पण्डित जी इस कला में सिद्ध थे, तभी जाने क्या-क्या देख लेते थे पेड़-पौधों में, घास-भूसा में, डीह-डाबर और ढेला-माटी में।'[2]

'कुटज', 'अशोक के फूल', 'शिरीष के फूल', 'देवदारु' एवं 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंधों में द्विवेदी जी ने सहज और बातचीत की शैली में मनुष्य के भीतर बढ़ते निजी स्वार्थ और घटती संवेदनशीलता की ओर ध्यान दिलाने का प्रयास किया है। अपने निबंधों में 'कुटज', 'अशोक', 'शिरीष', 'देवदारु' एवं 'नाखून' के माध्यम से द्विवेदी जी ने मनुष्य की उस जिजीविषा, संवेदना और मानवीय मूल्यों की चर्चा की है जो स्वार्थ, कृत्रिम जीवन-शैली और सबकुछ पाने की होड़ में कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं।

'कुटज' निबंध में 'कुटज' के फूल से बात शुरू करते हुए द्विवेदी जी उसकी उन विशेषताओं को रेखांकित करते हैं जो वास्तव में मनुष्यों में होनी चाहिए। द्विवेदी जी द्वारा 'कुटज' निबंध लिखने के पीछे बदलता परिवेश एवं जीवन-शैली है जहाँ लोक एवं लोकतंत्र का चेहरा क्षण-प्रतिक्षण बदलता है। जहाँ हर कोई अपने चेहरे पर एक मुखौटा लगाए घूमता है, ऐसी परिस्थिति एवं परिवेश में 'कुटज' अपने जीवन जीने की कला के माध्यम से मानव-जीवन के लिए प्रेरणा बनकर सामने आता है। 'कुटज' की जिजीविषा, जीवंतता एवं उन्मुक्तता उन तमाम लोगों के लिए एक उदाहरण है जो केवल अपने स्वार्थ के लिए ही जीते हैं। 'कुटज' के माध्यम से द्विवेदी जी यह बताना चाहते हैं कि केवल अपने स्वार्थ में लिप्त रहना ही जीवन जीना नहीं है। 'कुटज' अकेले पहाड़ियों में भी मस्त रहता है, मुस्कराता है, झूमता है, जीता है क्योंकि उसके मन में स्वार्थ नहीं है, ईर्ष्या नहीं है, दूसरों को गिराकर खुद उठने का लोभ नहीं है लेकिन प्रकृति का यह सहज गुण मनुष्य कहाँ सीख पाया है? 'कुटज' तो वह फूल है जो कालिदास के भी काम आया था तो उसमें कुछ न कुछ बात अवश्य होगी फिर भी उसे वह सम्मान नहीं मिला जिसका वह हकदार था क्योंकि स्वार्थ में डूबा मनुष्य किसी की खासियत देखकर नहीं अपनी जरूरत देखकर उसके साथ अपना व्यवहार तय करता है। जिससे जितना अधिक फायदा हो वह उसके लिए उतना ही ज्यादा खास बन जाता है क्योंकि, 'दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है।'[3]

केवल अपने निजी स्वार्थ में लिप्त दुनिया से और अपेक्षा भी क्या की जा सकती है जहाँ लोग अपने लाभ हेतु किसी का और किसी भी रूप में इस्तेमाल करने में संकोच नहीं करते हैं। जहाँ एक व्यक्ति के लिए दूसरा व्यक्ति केवल उपयोग की वस्तु है लेकिन 'कुटज' इन प्रवृत्तियों से मुक्त है, अछूता है क्योंकि 'वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय से अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अवमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करता, ...दाँत नहीं निपोरता, बगले नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है'[4] यही उसके जीवन की सार्थकता है और जीवन जीने की उचित कला है जो उसे औरों से अलग करती है। यही वजह है कि पर्वत के निर्जन स्थान में भी 'कुटज' भरा-पूरा है क्योंकि उसकी जड़ें सतही नहीं बल्कि गहरी हैं, वह अपनी जीवन-शक्ति का रस भीतर से खींच लाता है।

वर्तमान समय में मनुष्य की जड़ें सतही होती जा रही हैं, वह अपनी जड़ों से जुड़ नहीं पाता है इसलिए छोटी-छोटी कठिनाइयों से भी वह भयभीत हो जाता है, जल्दी ही समझौता कर लेता है, थोड़े से लाभ हेतु मानव-धर्म छोड़ देता है एवं दूसरों की खुशामद करता है। मनुष्य आधुनिक बनने की होड़ में इतना अंधा हो गया है कि वह जिस डाली पर बैठा है उसे ही काट रहा है। जिस स्वाभिमान, उल्लास और गरिमा से 'कुटज' जीता है वह मनुष्य अपने भीतर ला ही नहीं पाता है और यही वजह है कि जीवन जीने का सही अंदाज, सही उद्देश्य वह समझ नहीं पाया है। उसका कृत्रिम व्यवहार उसे कृत्रिम जीवन जीना और दूसरों के सुख एवं अधिकारों को हड़पना ही सिखाता है जो जीवन का असली रस, असली सुख नहीं है। यह केवल मन की उच्छृंखलता एवं तृष्णा है, वह तृष्णा जो कभी खत्म ही नहीं होती है। एक तृष्णा अगर पूरी भी हो जाए तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है। मन को वश में रखने की कला जिसे आती है वही इस तृष्णा को स्वयं पर हावी होने से रोक सकता है एवं मनुष्यत्व के गुणों को अपने भीतर विकसित कर सकता है परंतु मनुष्य है कि उसका मन कहीं टिकता ही नहीं। द्विवेदी जी लिखते हैं, "दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं। सुखी वह है जिसका मन वश है, दु:खी वह है जिसका मन परवश है। परवश होने का अर्थ है खुशामद करना, दाँत निपोरना, चाटुकारिता, हाँ-हजूरी।"[5]

'कुटज' स्वयं को अपने मन के अधीन नहीं होने देता बल्कि मन को अपने वश में रखता है। 'कुटज' का यही गुण द्विवेदी जी मनुष्य में देखना चाहते हैं क्योंकि मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए अपने मन को वश में रखना बहुत जरूरी है तभी वह समभाव से जी सकता है, अपने हृदय को और अधिक विशाल एवं संवेदना को विस्तृत कर सकता है।

'अशोक के फूल' निबंध में द्विवेदी जी ने इस फूल के इतिहास, साहित्य में इसका स्थान और इसकी जीवटता एवं जिजीविषा से अपने पाठकों का परिचय कराया है। द्विवेदी जी

द्वारा इस फूल का यह विस्तृत परिचय देना अकारण ही नहीं है। वास्तव में 'अशोक के फूल' के इस परिचय द्वारा द्विवेदी जी मनुष्य को उसके उन जीवन-मूल्यों की याद दिलाना चाहते हैं जो उसे पशु बनने से बचाते हैं। 'कुटज' की ही तरह 'अशोक के फूल' ने भी कालिदास के काव्य में जगह पाई है। यह अलग बात है कि उसे भी आज भुला दिया गया है। मनुष्य की इस भूलने की प्रवृत्ति से द्विवेदी जी का मन उदास हो जाता है, उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि 'अशोक' जैसे फूल को कोई कैसे भूल सकता है, इतना उपेक्षित कैसे कर सकता है। अब तो इसकी पहचान पर भी प्रश्नचिह्न लगने लगा है। उसके जैसे लगने वाले लेकिन उससे भिन्न पेड़ को भी अब अशोक समझा जाने लगा है। बड़े आहत मन से द्विवेदी जी लिखते हैं, "दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।"[6]

अपना काम निकालना और मतलब पूरा होने पर उसे छोड़ देने वाला यह व्यवहार मनुष्य का केवल वस्तुओं के प्रति ही नहीं बल्कि मनुष्यों के प्रति भी है, चाहे वह संबंध कितना भी आत्मीय क्यों न हो जब तक उससे स्वार्थ सिद्धि होती है तब तक ठीक लेकिन जैसे ही मतलब पूरा हो जाता है उसे स्वयं से अलग कर फेंक देना मनुष्य की आदत बनती जा रही है। मनुष्य की मनुष्यता तभी सार्थक होती है जब वह दूसरों को साथ लेकर चलता है, दूसरों के विषय में भी सोचता है और उसका यही आचरण उसके मानव-जीवन की सार्थकता है। द्विवेदी जी का मानना है कि "मनुष्य जितना ही अधिक 'मनुष्य' होता है, उतना ही अधिक वह दूसरों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकता है और इसको अंतिम तर्कसंगत परिणाम तक ले जाया जाए तो कह सकते हैं कि 'एकत्व' की अनुभूति ही मनुष्य की चरम मनुष्यता है।"[7]

अपने निबंध 'शिरीष के फूल' में द्विवेदी जी लिखते हैं, "कम फूल इस प्रकार की गर्मी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं।"[8] 'शिरीष' एक ऐसा फूल है जो विपरीत परिस्थितों से लड़कर भी खिलता है। विपरीत परिस्थितियाँ भी इस फूल को पराजित नहीं कर सकती हैं। द्विवेदी जी के अनुसार "शिरीष एक अद्‌भुत अवधूत है। दु:ख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी हजरत न-जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठो याम मस्त रहते हैं।"[9] 'शिरीष' किसी भी तरह की कठिनाई आने पर साहस नहीं छोड़ता, हार नहीं मानता, वह सुख-दुख दोनों को समान रूप से स्वीकार करता है। वह न तो सुख आने पर अभिमान से भर उठता है और न ही दुख आने पर हताश होकर अवसादग्रस्त हो जाता है। वह जीवन के असली आनंद और उल्लास को पाना जानता है इसीलिए चाहे कितनी भी कठिनाई आए वह प्रसन्न रहता है। अपने इस निबंध में द्विवेदी जी ने 'शिरीष' के माध्यम से एक ऐसी जीवनी-शक्ति से परिचय कराया है जो विपरीत परिस्थितियों में भी व्याकुल नहीं होता, बाहरी वातावरण चाहे जितना भी अस्थिर हो वह अंदर से शांत बना रहता है। अपने मन पर उसका इस प्रकार नियंत्रण है कि विपरीत परिस्थितियाँ भी उसे विचलित नहीं कर सकती हैं। संयम और धैर्य मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है और इस गुण का न होना मनुष्य के जीवन और उसके आत्मीय संबंधों पर अपना विपरीत असर दिखाता है।

'देवदारु' निबंध के माध्यम से द्विवेदी जी ने मनुष्यों के निजी लाभ हेतु समझौतावादी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। एक ओर जहाँ मनुष्य छोटे-छोटे सुखों एवं स्वार्थ के लिए अपने अतीत, अपनी पहचान एवं अपने सम्मान से भी समझौता करने में नहीं हिचकता है वहीं 'देवदारु' है जो विकट से विकट समस्या के समाधान हेतु भी गलत मार्ग नहीं अपनाता, समझौता नहीं करता। यही कारण है कि उसकी जड़ें गहरी हैं और उसे आकर्षण की हवा हिला भी नहीं पाती है। वहीं दूसरी ओर मनुष्य है कि उसका मन कहीं टिकता ही नहीं है, वह किसी आदर्श पर चलना ही नहीं जानता है। वह हवा का रुख देखकर अपने निर्णय, विचार और जीवन शैली को बदलता है। 'देवदारु' के विषय में द्विवेदी जी लिखते हैं कि, "जमाना बदलता रहा है, अनेक वृक्षों और लताओं ने वातावरण से समझौता किया है, कितने ही मैदान में जा बसे हैं, लेकिन देवदारु है कि नीचे नहीं उतरा, समझौते के रास्ते नहीं गया और उसने अपनी खानदानी चाल नहीं छोड़ी।"[10]

'देवदारु' का वृक्ष मनुष्य के समान क्षणिक सुख हेतु समझौता नहीं करता, अनैतिकता को अपना धर्म नहीं बनाता, भोग-विलास की वस्तुएँ न ही उसे लुभा सकती हैं और न ही उसे उसके जीवन-उद्देश्य से भ्रमित कर सकती हैं। इसके विपरीत वर्तमान में स्थिति यह हो गई है कि लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी हद तक जा रहे हैं, वे किसी भी सीमा को तोड़ने को आतुर हैं। दूसरों से अधिक भौतिक सुख-साधनों को जुटाने एवं अधिक से अधिक समृद्ध एवं आधुनिक बनने-दिखने की होड़ में मनुष्यता मरती जा रही है, जीवन का उल्लास मरता जा

रहा है और विडंबना यह है कि इसका आभास भी उसे मारने वाले को नहीं है। आगे बढ़ने की दौड़ में मनुष्य इतना उलझ गया है कि सहजता, सरलता, ईमानदारी जैसे मूल्य उसके जीवन में कोई स्थान नहीं रखते हैं।

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध में द्विवेदी जी मनुष्य के जीवन में 'नाखून' के बढ़ने जैसी साधारण सी घटना से बात शुरू करते हुए उसे संपूर्ण मानव जाति की चिंता से जोड़ देते हैं। द्विवेदी जी मनुष्य के 'नाखून' को उसकी पशुता की निशानी मानते हैं। मनुष्य के 'नाखून' का बढ़ना जहाँ उसके हिंसक पशु होने का लक्षण है वहीं उसे बढ़ने से रोकना उसके मनुष्य होने की निशानी है। अपने निबंध में द्विवेदी जी लिखते हैं, "नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है...वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है।"[11] लेकिन द्विवेदी जी के मन में यह प्रश्न भी उठता है कि यदि 'नाखून' का बढ़ना पशुता की निशानी है तो क्या उसे काट देने से मनुष्य के भीतर की पशुता मर जाती है? यदि हाँ तो निरंतर हथियारों के निर्माण होने की वजह क्या है? मनुष्य द्वारा निर्मित हथियारों के बल पर जो नरसंहार होता है उसका खामियाजा मानव जाति वर्षों तक भुगतती है जिसका सबसे क्रूर उदाहरण हिरोशिमा और नागासाकी की घटना है। वास्तव में मनुष्य की पशुता मरी नहीं है बल्कि उसके भीतर ही कहीं दबी है जो अवसर पाते ही बाहर निकलने को आतुर है और शायद यही वजह है कि हिंसक पशु से मनुष्य बन जाने के बाद भी, "मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह बढ़ती ही जा रही है!...मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।"[12]

मनुष्य इसीलिए श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें संयम, श्रद्धा, त्याग, संवेदना, सहानुभूति और दया जैसे भाव हैं, वह दूसरों की पीड़ा को अनुभूत का सकता है, एक वृहत्तर समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सकता है एवं विश्व को बेहतर बना सकता है। अपने इसी निबंध में द्विवेदी जी लिखते हैं, "मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है! आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दु:ख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है।"[13] लेकिन इन गुणों को अपने भीतर विकसित करना या इन्हें विस्मृत कर देना दोनों ही मनुष्य के हाथ में हैं। वह इनमें से कौन सा मार्ग चुनेगा यह उसके अपने विवेक और समझ पर ही निर्भर करता है। मनुष्य जैसे-जैसे उन्नति करता जा रहा है वैसे-वैसे उसके भीतर संवेदना घटती जा रही है। वह मशीनों का निर्माण करते-करते स्वयं मशीन बनता जा रहा है-संवेदना एवं भावविहीन। एक ओर तो वह स्वयं को और अधिक विकसित सिद्ध करने में लगा है तो वहीं दूसरी ओर आदिम प्रवृत्तियों की ओर लौट रहा है। समभाव, संवेदना और सहनशीलता को बढ़ावा देने के बजाए वह हथियारों के निर्माण में लगा है। यह कैसी उन्नति है? क्या वह सच में आगे की ओर बढ़ रहा है या वापस उसी आदिम युग में लौट रहा है, जहाँ से निकलने में उसे वर्षों लगे हैं। द्विवेदी जी लिखते हैं, "मेरा मन पूछता है-किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर। ...जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ-जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी है।"[14]

मनुष्य पशु से इसीलिए बेहतर है क्योंकि उसके अंदर कुछ करने का संकल्प है, सही-गलत में अंतर समझने का विवेक है, तर्क करने और उसके आधार पर निर्णय लेने की क्षमता है एवं वैज्ञानिक सोच है। उसके यही गुण उसे पशु से भिन्न करते हैं। इन सभी उपलब्धियों के बाद भी उससे पशुगत आचरण की उम्मीद कैसे की जा सकती है। जिन हिंसक आदिम प्रवृत्तियों को वह वर्षों पहले छोड़ आया था उसमें वापस लौटना विकसित होना नहीं है। प्रतिदिन पहले से थोड़ा अधिक बेहतर बनना ही विकास का क्रम होना चाहिए लेकिन मनुष्य निरंतर पशुगत आचरण को अपनाकर पीछे की ओर लौट रहा है। एक ओर तो भौतिक रूप से वह उन्नति कर रहा है, समृद्ध हो रहा है वहीं व्यावहारिक रूप से वह पशुगत व्यवहार अपना रहा है, उन्नति का यह विरोधाभास मानवता के लिए सबसे बड़ा खतरा है क्योंकि "पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता।.....अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।"[15]

मनुष्य द्वारा हथियारों के निर्माण की तेज गति और उसके प्रयोग की आतुरता यह दिखाती है कि उसके भीतर दबी पशुता किस तरह उस पर हावी होती जा रही है। वास्तव में चिंता का विषय केवल हथियारों का बढ़ना नहीं है बल्कि मानव की वह अनुचित लालसा है जो उसे हथियारों के निर्माण की ओर प्रेरित करती है और इस अनुचित लालसा के मूल में है-स्वार्थ, अहंकार, ईर्ष्या, अधिक से अधिक पाने की इच्छा एवं दूसरों के अधिकारों को छीनने की निर्मम आकांक्षा। मनुष्य के भीतर से

इन क्रूर प्रवृत्तियों का मरना जरूरी है, जो उसे मनुष्य बनने से रोकती हैं। मनुष्य को अपने हृदय एवं मस्तिष्क से इन पाशविक और बर्बर प्रवृत्तियों को दूर करना होगा, मानवीय मूल्यों का विघटन रोकना होगा तभी वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी बन सकेगा। मनुष्य में मनुष्यता का गुण होना उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है और इस उपलब्धि की कामना द्विवेदी जी के निबंधों के केंद्र में है और यही उनके निबंधों की प्रासंगिकता है।

संदर्भ

1. प्रसाद, रत्नशंकर (1977), प्रसाद ग्रंथावली-1, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-542
2. मिश्र, कृष्णबिहारी (2010), अराजक उल्लास (संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ-133
3. सिंह, नामवर (संप.) (2001), हजारी प्रसाद दिवेदी संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृष्ठ-12
4. वही, पृष्ठ-15
5. वही, पृष्ठ- 15
6. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद (1948), अशोक के फूल संग्रह, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृष्ठ- 7
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2013), हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-7 (साहित्य का मर्म), राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ- 153
8. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद (संवत 2012), कल्पलता (निबंध संग्रह), ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, पृष्ठ-19
9. वही, पृष्ठ-21
10. सिंह, नामवर (संप.) (2001), हजारी प्रसाद दिवेदी संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृष्ठ-23
11. वही, पृष्ठ-38
12. वही, पृष्ठ-35
13. वही, पृष्ठ-37
14. वही, पृष्ठ-36
15. वही, पृष्ठ-36

❖

बी-8, एफ-407, सुभाष नगर हाउसिंग कॉम्प्लेक्स,
ग्लास फैक्ट्री के समीप, श्रीराम पुर, हुगली
पोस्ट-प्रभास नगर-712249 पश्चिम बंगाल, मोबाइल : 9339715766

रचनाकारों से अनुरोध

- ★ कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- ★ कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- ★ कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- ★ रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- ★ रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- ★ रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- ★ रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ भी भेज सकते हैं।
- ★ यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- ★ यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- ★ रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- ★ स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- ★ आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

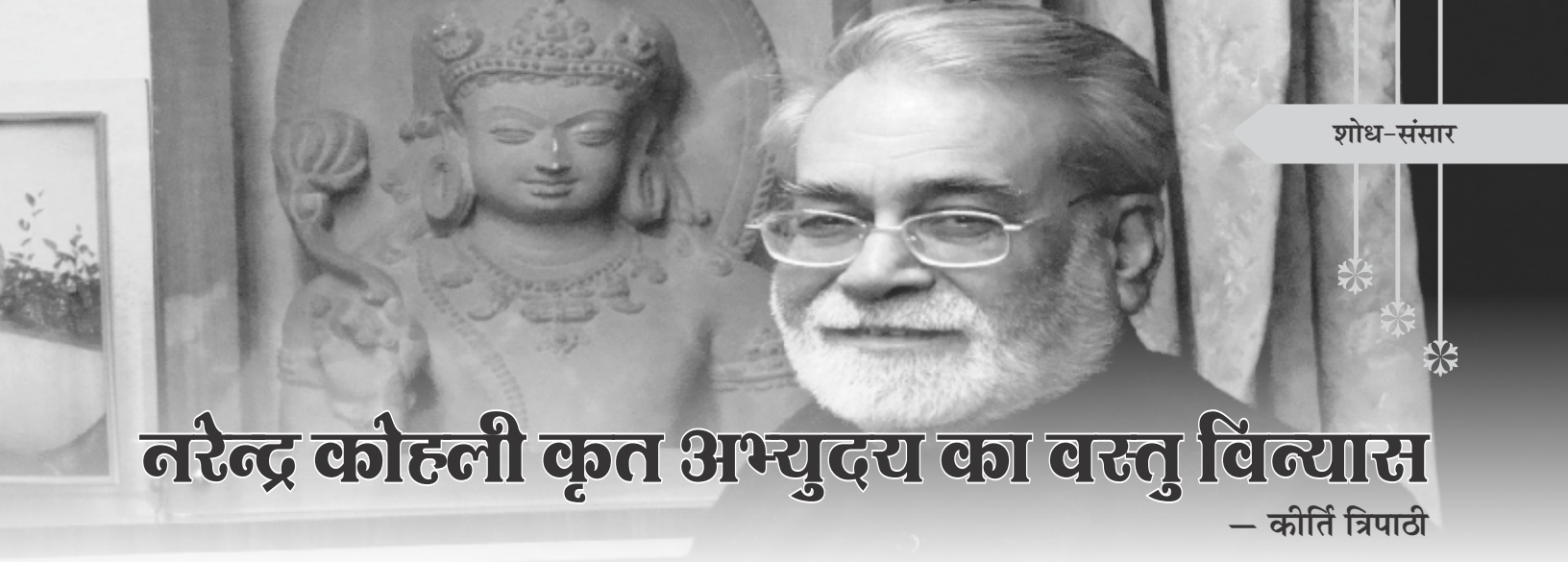

नरेन्द्र कोहली कृत अभ्युदय का वस्तु विन्यास

— कीर्ति त्रिपाठी

दीक्षा उपन्यास की दूसरी प्रमुख व प्रख्यात घटना है अहिल्या का शापवश पत्थर हो जाना। कोहली जी ने इस प्रख्यात तथ्य में कल्पना व मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ द्वारा अहिल्या के पाषाण बन जाने वाले प्रसंग को प्रतीक रूप में लिया। अन्याय का शिकार और समाज द्वारा उपेक्षित व प्रताड़ित होकर अहिल्या जड़ सी हो गयी, यह तर्क अधिक सार्थक और विश्वसनीय लगता है। इसी तरह राम-सीता विवाह को भी अवतार से परे हटकर राजनैतिक गठबंधन व दो सुदृढ़ राष्ट्रों के मिलने का रूप देकर चित्रित किया जिसमें आर्यावर्त में छिट-पुट व छोटे-बड़े राज्य इन बड़े राज्यों में मिलकर संगठित होकर मजबूत व सुदृढ़ हो सके। कथा संगति के साथ उपन्यास 'दीक्षा' के परिवेश में भी नवीन तथ्यों का संयोजन किया गया है। लेखक द्वारा मुख्य परिवर्तन से स्पष्ट होता है कि अति प्राचीन व पौराणिक कथा होकर भी यह आधुनिक समस्याओं को चित्रित करती है।

नरेन्द्र कोहली एक पौराणिक उपन्यासकार हैं। जिन्होंने पौराणिक कथाओं को नए कलेवर में ढालकर प्रस्तुत किया है। कुछ लोगों ने कोहली जी के ऊपर पिष्टपेषण का आरोप लगाया है। परन्तु कोहली जी ने जो भी पौराणिक रचनाएँ की हैं, वह पिष्टपेषण नहीं अपितु सर्वथा मौलिक है। कोहली जी ने अपनी कथा के वस्तुविन्यास को इस तरह से विन्यस्त किया है कि कोई भी पाठक पढ़ते समय इससे आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता है।

कहा जाता है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य में जो द्वार खोला उसे नरेन्द्र कोहली ने उसका युग जैसा विस्तार किया। परंपरागत विचारधारा एवं चरित्र-चित्रण से प्रभावित हुए बिना स्पष्ट एवं सुचिंतित तर्क के आग्रह पर मौलिक दृष्टि से सोच सकना, साहित्यिक तथ्यों विशेषत: ऐतिहासिक, पौराणिक तथ्यों का मौलिक वैज्ञानिक विश्लेषण, यह वह विशेषता है जिसकी नींव आचार्य द्विवेदी ने डाली थी और उस पर रामकथा, महाभारत कथा एवं कृष्णकथाओं आदि के भव्य महल खड़े करने का श्रेय आचार्य नरेन्द्र कोहली को जाता है। भारतीय संस्कृति के मूल स्वर आचार्य द्विवेदी के साहित्य में प्रतिध्वनित हुए और उनकी अनुगूँज नरेन्द्र कोहली में प्रतिफलित हुई।

'अभ्युदय' नरेन्द्र कोहली द्वारा रचित एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसकी रचना कोहली जी ने सर्वप्रथम 'दीक्षा', 'अवसर संघर्ष की ओर' 'युद्ध-1' व 'युद्ध-2' के रूप में की थी। तत्पश्चात इसे समग्र रूप से 'अभ्युदय' नाम से संकलित किया। 'अभ्युदय' परंपरा और नवीनता का अद्‌भुत संगम है। इसे पढ़कर पाठक अनुभव करेगा की वह पहली बार ऐसी रामकथा पढ़ रहा है, जो सामयिक, लौकिक, तर्कसंगत तथा प्रासंगिक भी है। यह किसी अपरिचित और अद्‌भुत देश काल की कथा नहीं है। यह इसी काल और लोक की, आपके जीवन से संबंधित समस्याओं पर केंद्रित एक ऐसी कथा है, जो सार्वकालिक और शाश्वत है। प्रत्येक युग के व्यक्ति का इसके साथ पूर्ण तादात्म्य होता है। 'अभ्युदय' प्रख्यात कथा पर आधृत अवश्य है : किंतु यह सर्वथा मौलिक उपन्यास है, जिसमें न

कुछ अलौकिक है न अतिप्राकृतिक। यह आपके जीवन और समाज का दर्पण है।

अभ्युदय की विशेषता यह है कि लेखक ने एक पौराणिक कथा को यथार्थवादी वातावरण प्रदान किया है। इस अभिनव प्रयास में कोहली जी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। प्रख्यात तथ्यों को नवीन तथा तार्किक रूप देने के लिए उन्होंने कल्पना के तथ्य जोड़े हैं और इस वास्तविक तथ्य के साथ कैसे संगति बैठाते हैं इसमें लेखक की औपन्यासिक शिल्प की महारथता प्रदर्शित होती है।

महेश दर्पण से हुई वार्ता का अंश दृष्टव्य है-''मुझे अगर कुछ नया नहीं जोड़ना था तो फिर रामकथा को नए सिरे से लिखने की जरूरत ही क्या थी।''[1] अर्थात् कोहली जी ने परंपरागत रामकथा को कल्पना के रंग से रंगकर नवीन रूप सायास प्रस्तुत किया है।

'अभ्युदय' का पहला खण्ड दीक्षा है जिसे पढ़ते समय पता चलता है कि परंपरागत तथ्यों को नए संदर्भ में लिखकर उसमें काल्पनिक तथ्य जोड़कर कथा को आज के सजग पाठक के लिए विश्वसनीय बनाने के साथ-साथ रोचक भी बना दिया गया है एवं अपने युग की समस्याओं को प्राचीन व पौराणिक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

''दीक्षा उपन्यास लिखते समय मेरे मन में अपना वर्तमान था, एक प्रख्यात कथा का ढाँचा था, उसका सौंदर्य था, उसके कथानक की असंगतियाँ थीं, उसके चमत्कार तथा अलौकिकता थी। मैं उपन्यास लिख रहा था, उपन्यास अर्थात् अपने युग की समस्याओं को अपने युग के लोगों तक अपनी टिप्पणियों के साथ पहुँचाने का प्रयत्न। उस कथा की घटनाओं चरित्रों को समकालीन मनोविज्ञान चिंतन तथा संस्कृति में ढालना था। मेरा मन इस बात को स्वीकार नहीं करता की दशरथ को कोई संतान नहीं थी, इसलिए अनेक विवाह किए, पुत्रेष्टि यज्ञ से चार पुत्र प्राप्त किए। मैं ये भी नहीं मान सकता कि राम-लक्ष्मण बिना किसी योजना के जनकपुर पहुँच गए और संयोग से सीता का विवाह हो गया। चारों भाइयों के विवादित होने का भी कहीं कोई आधार मुझे नहीं मिला। अहिल्या का पत्थर हो जाना और राम की चरण धूलि का स्पर्श के पुनः युवती हो जाना इत्यादि बातें भी मैं कभी स्वीकार नहीं कर सका।''[2]

इन्हीं विचारों को लेकर कोहली जी ने 'दीक्षा' उपन्यास की कथा का ताना-बाना बुना। विश्वामित्र को बुद्धिवादी चिंतक की भूमिका दी गई है जो राष्ट्र में फैलते हुए अन्याय पूर्ण राक्षसी साम्राज्य व उनके आतंक से चिंतित भी है तथा उनका आतंक खत्म हो इसके लिए उन्हें सक्रिय और जागरूक बताया गया है। कथावस्तु में नवीनता आरंभ में ही है जैसे लेखक कथा का शुभारंभ पुत्रेष्टि यज्ञ से न करके विश्वामित्र के आश्रम से करते हैं।

रामकथा का प्रख्यात तथ्य तो यह है कि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को राक्षसों के नाश हेतु दशरथ से मांग कर लाते हैं किंतु कथा में लेखक ने यह नवीनता लाई है कि राक्षसों के आतंक के पीछे उनके अपने साम्राज्य के विकास का उद्देश्य था, जिसे वे बहुत योजनाबद्ध तरीके से पूरा करते हैं। विश्वामित्र इस योजना से परिचित हैं, इसलिए वे राम को दशरथ से मांगकर लाते हैं। उन्हें दीक्षित करते हैं। कोहली जी उपन्यास में राम के चरित्र और कार्यों का तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना चाहते थे इसीलिए प्रख्यात कथा में व्याप्त अलौकिकता को हटा उसे विश्वसनीय और वैज्ञानिक रूप दिया है। कथा के प्रसंगों की ऐसी विवेचना की कि उनका औचित्य पाठकों को समझ आ जाए और घटनाओं की मनोवैज्ञानिकता, यथार्थता भी बनी रही।

दीक्षा उपन्यास की दूसरी प्रमुख व प्रख्यात घटना है अहिल्या का शापवश पत्थर हो जाना। कोहली जी ने इस प्रख्यात तथ्य में कल्पना व मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ द्वारा अहिल्या के पाषाण बन जाने वाले प्रसंग को प्रतीक रूप में लिया। अन्याय का शिकार और समाज द्वारा उपेक्षित व प्रताड़ित होकर अहिल्या जड़ सी हो गयी, यह तर्क अधिक सार्थक और विश्वसनीय लगता है। इसी तरह राम-सीता विवाह को भी अवतार से परे हटकर राजनैतिक गठबंधन व दो सुदृढ़ राष्ट्रों के मिलने का रूप देकर चित्रित किया जिसमें आर्यावर्त में छिट-पुट व छोटे बड़े राज्य इन बड़े राज्यों में मिलकर संगठित होकर मजबूत व सुदृढ़ हो सके। कथा संगति के साथ उपन्यास 'दीक्षा' के परिवेश में भी

नवीन तथ्यों का संयोजन किया गया है। लेखक द्वारा मुख्य परिवर्तन से स्पष्ट होता है कि अति प्राचीन व पौराणिक कथा होकर भी यह आधुनिक समस्याओं को चित्रित करती है- जैसे-शासन तंत्र में भ्रष्टाचारिता का होना, आपराधिक तत्वों से उत्कोच ले उन्हें अपराध के लिए बढ़ावा देना, स्त्रियों के साथ अन्याय चाहे वह किसी भी वर्ग से संबंध रखती हो। लेखक ने उपन्यास का आरंभ अत्याचार के विवरण से किया और अंत इन अत्याचारों में फँसी युवतियों के उद्धार से। जिन प्रसंगों ने कोहली जी को अपनी ओर आकृष्ट किया था उनका पुनः सृजन दीक्षा उपन्यास में हुआ है।

कौशल्या के माध्यम से ऐसी स्त्री का चित्र खींचा गया जो पति की उपेक्षा सहन करके भी घर व राज्य की मर्यादा को बनाए रखने में संलग्न है। इसी तरह जनक के महल में अज्ञातकुल-शील सीता की मनोव्यवस्था का उद्घाटन, जो समाज द्वारा प्रताड़ित व उपेक्षित रहती हैं। जिस कन्या को राजा का संरक्षण मिलता है उसे भी समाज उचित सम्मान नहीं दे पाता। आधुनिक पाठक, मुक्त कंठ से इन तथ्यों को स्वीकार करता है।

अभ्युदय का दूसरा खण्ड 'अवसर' है जिसमें भी कोहली जी ने नवीन कथा का विन्यास किया है। प्रख्यात कथा में वर्णित है कि दशरथ किसी ज्योतिष योग के कारण राम का अभिषेक करने को उत्सुक होते हैं और देवतागण राम के अभिषेक से खुश नहीं होते। अतः वे सरस्वती की मदद लेकर कैकेयी की मति को भ्रष्ट करते हैं। तब वह राम के लिए वनवास और भरत के लिए राज्य मांगती है। जबकि कोहली जी ने इसमें तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए यह दिखलाया कि दशरथ अपनी रक्षा का दायित्व केवल राम पर सौंपकर निश्चिंत हो सकते थे। ऐसा सोचकर दशरथ गुप्त रूप से राम के अभिषेक की तैयारी कर रहे हैं। कोहली जी ने दशरथ को अपनी पत्नी कैकेयी, उसके भाई युद्धजित व पुत्र भरत से भयभीत बताया है। इसी चित्रण द्वारा राम व कैकेयी के संबंधों की भी नई व्याख्या की है। कोहली जी ने कैकेयी को दोषमुक्त कर चित्रित किया है। दशरथ के अविश्वास के कारण कैकेयी ऐसा व्यवहार करने के लिए बाध्य होती है। प्रख्यात कथा में चारों भाइयों का विवाह एक साथ माना गया है जबकि कोहली जी ऐसा नहीं मानते उन्होंने लक्ष्मण को अविवाहित माना है। वनवास काल में लक्ष्मण को रात में सोते हुए भी चित्रित किया है। प्रख्यात कथा में राम के एक वर्ष तक चित्रकूट में रहने के विषय में कोई कारण नहीं बताया गया है किन्तु कोहली जो इसके पीछे राम का अयोध्या नगरी व अपनी माताओं की रक्षा की आशंका बताया है।

वे भरत के विचारों को जानना भी चाहते थे। राम चित्रकूट में रहकर अयोध्या की गतिविधियों पर नज़र रखना चाहते थे। ऋषियों को जागरूक चिंतक के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने हवन यज्ञ में तल्लीन नहीं रहते अपितु अपने आस-पास के परिवेश से भली-भाँति परिचित हैं। परिवेश चित्रण में भी नवीनता हेतु अयोध्या की राजनीति को अभिनव रूप से प्रस्तुत कर दशरथ को समकालीन सत्ता का लोभी शासक के रूप में चित्रित किया है। अयोध्या के राजनैतिक कलह के साथ-साथ अन्तःपुर के क्लेश का भी चित्रण विस्तार से किया गया है।

अभ्युदय का तीसरा खण्ड 'संघर्ष की ओर' है जिसके अन्तर्गत प्रख्यात रामकथा के अरण्यकाण्ड की कथा का चित्रण है। प्रख्यात कथा में ऋषि शरभंग के आत्मदाह करने का चित्रण है लेकिन इसके पीछे कोई तर्क नहीं दिया गया है। केवल यह लिख दिया गया है कि ऋषि अग्नि समाधि लेने जाते हैं। कोहली जी ने इसे अग्नि समाधि न मान आत्मदाह के रूप में चित्रित किया है तथा तर्क यह बताया है कि ऋषि शरभंग जब वन में पिछड़ी जन जाति के उत्थान में असमर्थ होते हैं तब अपने जीवन को असफल और व्यर्थ समझ आत्मदाह करते हैं। दण्डक वन में ऋषियों के अलावा लेखक ने वन्य जन जातियों का उनके जीवन स्तर, उनके जीविकोपार्जन आदि के विवरण में कल्पना का संयोजन किया है।

खान, श्रमिकों के साथ-साथ खेतिहर मजदूरों का भी चित्रण किया गया है। प्रस्तुत प्रसंगों के वर्णन द्वारा एक शाश्वत सामाजिक समस्या की प्रस्तुति की गयी है। सीता हरण

के संदर्भ में प्रख्यात कथा में वर्णित है कि सीता स्वर्ण मृग को देख प्रभावित होती है। सीता हरण के समय आश्रम में सीता अकेली नहीं थी बल्कि मुखर नामक काल्पनिक पात्र था। कथा में कोहली जी ने वानर, भालू, जटायु आदि को जानवर व पक्षी के रूप में नहीं अपितु वन-जाति के रूप में चित्रित किया है। जटायु को गोरिल्ला योद्धा के रूप में चित्रित किया है। राम को जन-जातियों को शिक्षित व आर्थिक रूप से सुदृढ़ करते हुए बताया है। शूर्पणखा के माध्यम से विलासमय जीवन का चित्रण किया गया है। लेखक ने शूपर्णखा को विलासी व कामुक के साथ-साथ ईष्यालु भी चित्रित किया है। जिससे यह प्रख्यात कथा से अलग दिखाई पड़ती है। वह रावण को सीता हरण के लिए उकसाती है। लंका में गृह कलह के साथ-साथ राजनैतिक कलह भी करवाती है। पूरा वर्णन उसकी कुटिल राजनीतिक चालों की व्याख्या करता है।

अभ्युदय का अन्तिम खण्ड 'युद्ध' है। यह उपन्यास दो भागों में विभाजित है। इसके अंतर्गत किष्किंधा काण्ड, लंका काण्ड व सुंदर काण्ड की कथा समाहित है। प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में कोहली जी ने कहा है-''मेरे लिए यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण था कि राम, सुग्रीव, तथा विभीषण की मैत्री का आधार क्या था? राम ने बाली से मित्रता क्यों नहीं की? सुग्रीव और विभीषण ने अपने भाइयों के विरुद्ध राम का साथ क्यों दिया? अंगद और तारा को सुग्रीव व राम के विरुद्ध शिकायत क्यों नहीं थी? इन्हीं से संबंधित प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न मैंने अपने इस उपन्यास के दोनों भागों में किया है।''[3] प्रख्यात कथाओं में वर्णित है कि बाली-सुग्रीव में वैचारिक मतभेद है उनके विचारों में भिन्नता के कारण है। जबकि कोहली जी ने राजनैतिक दाँव-पेच, सत्ता का दुरुपयोग, आम नागरिक के दु:ख दर्द से बेखबर होना, शासक का क्रूर व उदासीन होना चित्रित किया है।

बाली व सुग्रीव के राजनैतिक, मतभेदों की स्थितियों को इस प्रकार चित्रित किया गया है जैसे शीत युद्ध चल रहा हो। सीता हरण के पश्चात् राम की मन:स्थिति, उनके चिंतन का चित्रण भी नवीनता के साथ किया गया है। राम और सुग्रीव की मैत्री का वर्णन भी नवीनतापूर्वक किया गया है। सीता संधान के विषय में भी नवीनता का वर्णन है। प्रख्यात कथा में अंगद दल पूर्ण रूप से राम से प्रभावित है। वे भक्ति के प्रभाव से सीता का संधान करता है, जबकि कोहली जी ने अंगद के नेतृत्व में जो दल भेजा उनका चित्रण शुद्ध मानवीय स्तर पर किया है। वे कठिनाइयों से ऊबते हुए चित्रित हैं। सागर संतरण के संबंध में भी नवीनता का चित्रण है। कोहली जी ने हनुमान को सागर तैरकर पार करते हुए चित्रित किया है। सागर पार करने के संदर्भ में प्रख्यात कथा में वर्णित है कि राम सागर से विनय करते हैं कि उन्हें मार्ग दे। उनके विनय को सागर अनसुना करता है तब राम क्रोधित होकर बाण द्वारा सागर को जल विहीन करने के लिए तैयार होते हैं, जबकि लेखक ने सागर से विनय का अर्थ सागर तट पर रहने वाले राक्षस, व्यापारी वर्ग से जलपोत मांगने के विनय के रूप में चित्रित किया है।

इस प्रकार नरेन्द्र कोहली जी ने परंपरा से चली आती प्रख्यात राम कथा में अपनी सूझ-बूझ के साथ मौलिकता का समावेश कर इसे एक नया आयाम प्रदान किया है। उनका उपन्यास परंपरा का पिष्टपेषण नहीं बल्कि पुन: सृजन है, जो अपने में सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को समाहित किए हुए है। कोहली जी की रामकथा ने उपन्यास साहित्य में रामकथा को एक नई दृष्टि से देखने का मार्ग प्रशस्त किया है। अत: उनकी रामकथा सर्वथा मौलिक और मानवीय धरातल पर चित्रित कथा है।

संदर्भ :

1. व्यक्तित्व एवं कृतित्व बातचीत-नरेन्द्र कोहली, पराग प्रकाशन, पृ. 14
2. व्यक्तित्व एवं कृतित्व मैं और मेरा लेखन, पराग प्रकाशन, पृ. 14

❖

शोध छात्रा, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ग्राम-भरुहा, पोस्ट-खैराही, थाना-करमा, जिला-सोनभद्र-231216 (उ.प्र.)
मोबाइल : 8004881197 ई-मेल : kirtitripathi9415@gmail.com

पर्यावरण-चिंता, भूमंडलीकरण और हिंदी कविता

— डॉ. नीरज

भूमंडलीकरण के साथ जिम्मेदारी विहीन औद्योगिक विकास एवं उपभोग में वृद्धि हुई है। उसने भयावह रूप से पर्यावरण-संकट की स्थिति पैदा कर दी है। नदियों में औद्योगिक कचरों के बहाव से प्रवाह बाधित हो रहा है, उसकी पेटी उथली हो रही है। पृथ्वी का तापमान बढ़ने से मौसम चक्र अनियमित हो गया है। भू-जल स्तर में गिरावट हो रही है। "अनुमान है कि सन् 2025 तक पृथ्वी का 70 प्रतिशत इलाका सूखाग्रस्त हो जाएगा, जबकि आज 40 प्रतिशत इलाका ही सूखा है।" संकट कृषि क्षेत्र पर भी है। अत्यधिक उत्पादन एवं मुनाफा भूमंडलीकरण का मूल मंत्र है। इसकी जद में अब हमारा कृषि उत्पाद भी आ रहा है। उत्पादन बढ़ाने के लिए "जैव विविधता का विनाश करने वाले निरबंसिया (बी.टी.) बीज, जीन टेक्नोलॉजी और कारपोरेट खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है।

पर्यावरण की समस्या विशुद्ध रूप से भूमंडलीय विकास के मॉडल के द्वारा पैदा की गई समस्या है। भूमंडलीकरण वर्तमान समय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित अवधारणा है, इसे वरदान मानें या अभिशाप लेकिन इससे हम बच नहीं सकते। समाज में इससे अनेक सकारात्मक परिवर्तन संभव हुए हैं लेकिन इससे उत्पन्न नकारात्मकता इतनी अधिक और दूर तक प्रभावित करने वाली है कि विश्व का बहुत बड़ा भाग इस प्रक्रिया के विरोध में आ खड़ा हुआ है। सूचना और संचार में आए तेजी एवं बाजार पर अत्यधिक निर्भरता ने सबको यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि क्या वाकई में भूमंडलीकरण हमारा विकास कर हमें मानवीय बना रहा है अथवा इसके दुष्परिणाम पूरी मानवता के लिए 'खतरा' बनते जा रहे हैं। प्रकृति और मनुष्य का साहचर्य अनादि काल से ही है। मनुष्य का अस्तित्व ही प्रकृति पर निर्भर है। यही कारण है कि रोजमर्रा की जरूरतों से लेकर उपासना-पद्धति तक में वह हर जगह मौजूद है। हमारा प्राचीन वाङ्मय प्रकृति के इर्द-गिर्द ही रचा गया। हिंदी कविता में भक्ति रचनाओं से लेकर छायावादी तथा प्रगतिवादी कवियों तक प्रकृति की उपस्थिति प्रचुरता से विद्यमान है। उसकी अभिव्यक्ति कभी अलौकिक सत्ता के रूप में तो कभी विभिन्न भावों के आलंबन के रूप में होती रही है। समकालीन रचनाशीलता में इसकी उपस्थिति वैसी ही है जैसी मनुष्य की उपस्थिति वहाँ है। यही कारण है कि जब हम समकालीन कविता में पर्यावरण की समस्या पर बात करते हैं तो यह कविता में प्रकृति-निरूपण की पारंपरिक परिपाटी से भिन्न है। यहाँ हम उन समस्याओं, संकट एवं चुनौतियों के अध्ययन की बात करते हैं जिसके कारण पर्यावरण में लगातार नकारात्मक बदलाव हो रहा है और यह समस्त जीव-जगत के लिए खतरा बनता रहा जा है।

पर्यावरण को क्षति-पहुँचाने की प्रक्रिया दरअसल औद्योगिक समाज के विकास के साथ ही शुरू हो गई थी। आधुनिक औद्योगिक समाज प्राकृतिक संसाधनों के लगातार दोहन पर आश्रित है, इस स्थिति ने भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य को प्रकृति से बहुत दूर कर दिया। मुनाफे की हवस वाली औद्योगिक व्यवस्था ने कभी यह नहीं सोचा कि उनके द्वारा पर्यावरण को जो क्षति पहुँचाई जा रही है इसके कारण आने वाली पीढ़ी के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा हो जाएगा। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत एवं विस्तार के साथ यह समस्या उत्तरोत्तर गंभीर होती गई। "अस्सी के दशक के बाद से वैश्विक राजनीति पर कॉरपोरेट भूमंडलीकरण के मॉडल का

वर्चस्व रहा है। एक समूची पीढ़ी ने ऐसी दुनिया में आँख खोली है जहाँ कॉरपोरेट के बिना शायद ही कुछ भी संभव हो। समाज के अंतर्निहित लक्ष्यों में आर्थिक प्रगति और उपभोग को शामिल कर लिया गया है। उन्हें हासिल करने के लिए जाहिर है लगाम पूरी तरह बहुराष्ट्रीय निगमों के हाथ में दे दी गई है। 90 के दशक में भारत में तथाकथित आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के साथ ही हम बहुराष्ट्रीय निगमों के उपभोक्तावादी-बाजारवादी प्रभावों एवं दुष्प्रभावों के प्रत्यक्ष भोक्ता हैं। उदारीकरण- भूमंडलीकरण के साथ परिघटना यह हुई कि राष्ट्र-राज्य धीरे-धीरे अपने उत्तरदायित्व से पीछे हटता चला गया। वह कॉरपोरेट दबाव में निर्णय करने लगा है। राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध निजीकरण की नीति अपना लेने से राज्य अब कॉरपोरेट समूहों के साथ एकाकार हो गया है और उसकी स्वायत्त भूमिका कई मामलों मे काफी कम हो गई। यही कारण है कि पर्यावरणवादी आंदोलनकारियों का कोई समूह अब जल, जंगल और जमीन के मामले में राष्ट्रीयकरण की या राज्य को इन चीजों का अधिकार देने की मांग नहीं करता। कोई अब यह उम्मीद नहीं करता कि राज्य को अधिकार देकर कॉरपोरेट समूहों से प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा हो जाएगी।"[1]

तकनीकी पिछड़ापन एवं पूँजी के अभाव के कारण गरीब एवं विकासशील देश विकसित देशों द्वारा प्रसारित विकास के मॉडल के आगे घुटने टेक रहे हैं। यह मॉडल तकनीक एवं बाजार पर आधारित है। कृत्रिम उपभोक्ता सामग्री का प्रसार बढ़ता जा रहा है और इस कारण पर्यावरण को लगातार दूषित किया जा रहा है। उदाहरणस्वरूप रेफ्रिजरेटर से निकलने वाली गैस वायुमंडल के ओजोन परत को नुकसान पहुँचा रही है। "अंधाधुंध औद्योगीकरण से होने वाली ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण धरती के तापमान में दो डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हो चुकी है और विकास की वर्तमान रफ्तार के अनुसार सदी के अंत तक इसमें एक से साढ़े पाँच डिग्री सेल्सियस तक की बढ़ोत्तरी का अनुमान है।"[2]

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में औद्योगीकरण की गति तो तीव्र हुई ही है, उच्च जीवन स्तर की लालसा में भी बेतहाशा वृद्धि हुई है। इस कारण ऊर्जा पर भी दबाव बढ़ा है, जगह-जगह बाँध बनाकर पनबिजली उत्पादन का प्रयास जारी है। इस प्रक्रिया में हजारों एकड़ जंगल नष्ट हुए, आबादी क्षेत्र के डूब क्षेत्र में बदल जाने के कारण जनता को विस्थापित होना पड़ा। ऐसा नहीं है कि यह समस्या पहले नहीं थी। लेकिन भूमंडलीकरण के साथ इसमें अत्यधिक तीव्रता आई है। भूमंडलीकरण द्वारा पैदा की गई बाजारवादी लालसा का दुष्परिणाम बढ़ते निजी वाहन एवं उससे पर्यावरण को होने वाले नुकसान को इस तथ्य के माध्यम से समझा जा सकता है-"निजी मोटर कार रखना उच्च और संपन्न मध्यम वर्ग की शानो-शौकत का प्रतीक है जबकि 70 प्रतिशत वायु प्रदूषण के लिए गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ ही जिम्मेदार है। हमारे देश में पिछले 20 वर्षों में वाहनों से होने वाले प्रदूषण में आठ गुणी और औद्योगिक प्रदूषण में चार गुनी वृद्धि हुई है जबकि आर्थिक विकास में महज ढाई गुणे की बढ़ोतरी हुई है।"[3]

भूमंडलीकरण के साथ जिम्मेदारी विहीन औद्योगिक विकास एवं उपभोग में वृद्धि हुई है। उसने भयावह रूप से पर्यावरण-संकट की स्थिति पैदा कर दी है। नदियों में औद्योगिक कचरों के बहाव से प्रवाह बाधित हो रहा है, उसकी पेटी उथली हो रही है। पृथ्वी का तापमान बढ़ने से मौसम चक्र अनियमित हो गया है। भू-जल स्तर में गिरावट हो रही है। "अनुमान है कि सन् 2025 तक पृथ्वी का 70 प्रतिशत इलाका सूखाग्रस्त हो जायेगा, जबकि आज 40 प्रतिशत इलाका ही सूखा है।"[4] संकट कृषि क्षेत्र पर भी है। अत्यधिक उत्पादन एवं मुनाफा भूमंडलीकरण का मूल मंत्र है। इसकी जद में अब हमारा कृषि उत्पाद भी आ रहा है। उत्पादन बढ़ाने के लिए "जैव विविधता का विनाश करने वाले निरबंसिया (बी.टी.) बीज, जीन टेक्नोलॉजी और कॉरपोरेट खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। देश के कई अन्य इलाको में डॉलर कमाने के लोभ में खाद्यान्न की जगह जट्रोफा, केला, युक्लिप्टस, नारियल, फूल, सफेद मूसली और पीपरमेन्ट की खेती को बढ़ावा देकर पर्यावरण का विनाश किया जा रहा है।"[5] कुल मिलाकर देखें तो भूमंडलीकरण का जो मॉडल है, उसमें पर्यावरण संतुलन पर जरा भी जोर नहीं। पूरा जोर उपभोग पर है इस कारण वे उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन का अनियंत्रित दोहन कर रहे हैं। वंदना शिवा के अनुसार, "पश्चिम के विकास का जो मॉडल है, उसका सीधा सा मतलब है कि जितने भी संसाधन हैं उनका जल्दी से व्यावसायिक बनाकर, वस्तु (माल) बनाकर उपभोग कर लिया जाए।"[6] इस कारण से जानवरों की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। कृषि का उत्पादन-स्तर गिर रहा है। जमीन सूखे का शिकार होकर बंजर में तब्दील होती जा रही है। मानसून-चक्र की

गड़बड़ी फसल के लिए विनाशकारी साबित हो रही है। तात्पर्य यह है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में वास्तविकता के धरातल पर पर्यावरण पूर्णत: उपेक्षित क्षेत्र बनकर रह गया। वंदना शिवा का यह कहना सर्वथा सत्य प्रतीत हो रहा है कि "आज उपभोक्तावाद इतना फैल गया है कि पर्यावरण की चिंता मर रही है। आप या तो उपभोक्ता हो सकते हैं या फिर पर्यावरण की चिंता करने वाले एक सजग व्यक्ति। आप जैसे ही उपभोक्तावाद की तरफ बढ़ते हैं उपभोक्ता बनते हैं वैसे ही आप पर्यावरण के प्रति बेहोश हो जाते हैं।"[7]

यद्यपि आज का विश्व पर्यावरण की समस्या से अनजान नहीं है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के समक्ष चुनौती के समाधान के लिए मंच बनाए गए, सम्मेलन हुए। 1992 का रियो-द-जेनेरियो का 'पृथ्वी सम्मेलन', हो या 1997 का क्वेटो प्रोटोकॉल, या फिर 2009 के कोपेनहेगेन सम्मेलन आदि से कोई उम्मीद नहीं बँधती। विकसित देश अपने अर्थ-तंत्र की शक्ति के कारण किसी भी बाध्यकारी समझौते को स्वीकार करने के लिए अब तक तैयार नहीं हुए हैं।

जहाँ तक समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण संबंधी चिंता का प्रश्न है, तो इस पर उतनी मुखरता दिखाई नहीं देती। हालाँकि भूमंडलीकरण से उत्पन्न अन्य चुनौतियों, यथा- पारिवारिक-सामाजिक संबंधों में आने वाले तनाव-बदलाव, बाजार द्वारा मनुष्य को अपदस्थ करना इत्यादि की गहन अभिव्यक्ति है, लेकिन पर्यावरण के प्रति सचेतता कम है। कदाचित् इसका कारण यह भी हो सकता है कि हिंदी पट्टी के रोजमर्रा के पारिवारिक-सामाजिक जीवन की अन्य समस्या जो आमजन को सीधे और तत्काल प्रभावित कर रही है, वह इस क्षेत्र के कवियों की चिंताओं एवं सरोकार में प्रमुखता से जगह छेकता है। पर्यावरण मुख्य रूप से पुराने पैटर्न में प्रकृति के स्वरूप में अब भी दिखाई दे जाता है। कई बार कविताएँ उपभोक्तावादी लालसाओं के प्रति अपनी अरुचि प्रकट करते हुए भूमंडलीकरण द्वारा प्रसारित भौतिकता को अस्वीकार करती एवं अपना प्रतिरोध दर्ज करती दिखाई दे जाती है। भूमंडलीकरण में तकनीकी विकास पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। तकनीकी सक्षमता से लैस यह उपभोक्तावाद अपने को कल्पवृक्ष की तरह पेश कर रहा है, जिसके पास हर लालसा का समाधान है, लेकिन भूमंडलीकरण द्वारा प्रसारित इस लालच को समकालीन कविता स्वीकार नहीं करती-

"मुझे कल्पवृक्ष नहीं चाहिए/नहीं चाहिए कामधेनु/इस पृथ्वी पर/जिंदा चींटी अपने चोंच में लेकर चलती है/उतनी ही जमीन कि पसर सके लौकी की लतर/और उतना ही कपास कि ढँक जाए/लाज/स्मृतियों से कल्पना लोक तक एक सड़क/और नैतिक होने पर शिक्षा/किसी कुबेर का खजाना हमें नहीं चाहिए/हमें नहीं चाहिए मगरमच्छों से भरी/दूध की शातिर नदी"[8]

यहाँ प्राकृतिक विनाश की चर्चा सीधे न करके कवि प्रकारान्तर से चिंता को व्यक्त कर देता है। जरूरत भर की चीजों की आकांक्षा जहाँ उपभोक्तावादी दौर से बचने का प्रयास है वहीं लौकी की लतर, कपास की चर्चा चीजों को मूल रूप में बचाए रखने की चिंता है।

प्रकृति से अनावश्यक एवं अति छेड़-छाड़ सभ्यता के लिए विनाशकारी है। इसे हम अनेकानेक संदर्भ में देख चुके हैं। जापान में सुनामी से परमाणु संयत्र को हुई क्षति एवं उससे उत्पन्न विकरण की समस्या हो या हाल ही में उत्तराखंड के केदारनाथ क्षेत्र में आयी अनायास एवं अप्रत्याशित बाढ़। ये चीजें कहीं-न-कहीं उपभोक्तावादी लालसाओं की देन है। प्रकृति से अनावश्यक छेड़-छाड़ के दुष्परिणाम पर काफी पहले एंगेल्स ने चेतावनी दी थी कि "हमें प्रकृति पर इंसान की जीतों को लेकर खुद पर बहुत इतराना नहीं चाहिए। ऐसी हर जीत का प्रकृति हमसे बदला लेती है। हर जीत, यह सच है कि पहले पहल वे परिणाम लाती है जिनकी हम अपेक्षा करते हैं। लेकिन दूसरे और तीसरे स्तर पर उसका बिल्कुल अलग और कल्पनातीत परिणाम होता है, जो बहुधा पहले को निरस्त कर देता है-हर स्तर हमें याद दिलाता है कि हम प्रकृति पर उस तरह से शासन नहीं कर सकते जिस तरह से कोई विजेता दूसरे देशों के लोगों पर करता है।"[9] विष्णु खरे 'शाप' शीर्षक कविता में पर्यावरण को बेरोक-टोक क्षति पहुँचाने के दुष्परिणाम को सामने लाते हैं। इस कविता में वे दर्शाते हैं कि किस प्रकार पेड़ों का विनाश किस प्रकार बाढ़ एवं सूखे को जन्म देता है और इस प्रकार व्यापक मानवीय विनाश की भूमिका बनती है-

"बचे हुए पेड़ धीरे-धीरे अपने पैरों के पास/रेतीली जमीन या पहाड़ों की नंगी रीढ़ /सरकते आते देखते हैं/और समझ जाते हैं/बादल नदियाँ जानवर और चिड़ियाँ/सुनते हैं पेड़ों की आखिरी साँसों को/और मिलकर शाप देते हैं/जानवर और चिड़ियाँ चले जाते हैं कहीं और/अंत में घेरकर मार दिए जाने के लिए/लेकिन उससे पहले बादल और नदी से/वचन लेते हैं बदला चुकाने

का/बादल और नदियाँ सूरज हवा और धरती से मिलकर/अपना निर्मम और व्यापक बदला लेते हैं/बारी-बारी से कभी सुखाते हुए कभी डुबोते हुए"[10]

विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता में इससे आगे की विडंबना को व्यक्त करते हैं। वे आशंका व्यक्त करते हैं कि पर्यावरण के दोहन की प्रक्रिया इसी तरह चलती रही तो एक दिन पृथ्वी ही नष्ट हो जाएगी और पृथ्वी के न रहने पर मनुष्य का अस्तित्व ही मिट जाएगा-

"पृथ्वी से क्या कुछ नष्ट नहीं हो गया होगा/और वह सब कुछ है/जिससे नष्ट हो जायेगी पृथ्वी, पृथ्वी शब्द,/पृथ्वी चित्र, पृथ्वी घटनाएँ, पृथ्वी कहानियाँ/मनुष्य चित्र, मानुष कथा।"[11]

भूमंडलीकरण के बाद के वर्षों में जिस प्रकार पर्यावरण के दोहन की कोई सीमा नहीं रही है उसी प्रकार प्रकृति का प्रतिकार भी अप्रत्याशित हो गया है। उसके बर्ताव का भूगोल बदल गया है। आज कल ऐसी प्राकृतिक परिघटनाएँ आम होती जा रही हैं जो सामान्यतया अपेक्षित नहीं रही है। ऐसे शहर-महानगर जो मौसम की मार से अक्षुण्ण थे, वहाँ एक-दो दिन की अतिवृष्टि बाढ़ ला देती है। प्रतिकूल सामुद्रिक प्रतिक्रिया की बारंबारता बढ़ गई है। तरह-तरह के तूफान, चक्रवात, सुनामी आम हो गए हैं। अपनी कविता 'सुनामी-4' में अरविंदाक्षन एक अन्य संदर्भ में प्रकृति के अप्रत्याशित व्यवहार का मेटाफर इस्तेमाल करते हैं-

"सुनामी हर जगह आती है / इधर कुछ दिन पहले सुना / कि खजुराहो में सुनामी आई / बकरी चराने वाली औरत / सुनामी में बह गई"[12]

भूमंडलीय समाज में तकनीक का जोड़ बहुत ज्यादा बढ़ा है। तकनीक का प्रयोग फ्रीज, वाशिंग मशीन, कार या अन्य मनुष्य निर्मित उपभोक्ता सामग्री के लिए हो रहा है और वह अपने ढंग से पर्यावरण को नष्ट भी कर रहा है। इससे आगे बढ़कर मनुष्य प्रकृति प्रदत्त चीजों में भी जैव तकनीक के माध्यम से हस्तक्षेप कर रहा है, और इस प्रकार प्राकृतिक विविधता एवं मौलिकता से छेड़-छाड़ कर रहा है। हलाँकि वंदना शिवा ऐसे प्रयासों की असफलता एवं उल्टे परिणाम की ओर संकेत करती है। उनके अनुसार, "जेनेटिक इंजीनियरिंग से बीस साल में अभी सिर्फ दो ही फसलें निकली हैं। एक जो खर-पतवार को खत्म करने के लिए किया गया, जिसके कारण खर-पतवार में और प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो रही है। दूसरा बीटी कपास और बीटी बैगन, जिससे बीटी के खिलाफ ही प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो रही है और नए-नए कीड़ों की प्रजातियाँ पैदा हो रही है। यह एक असफल काम था और इन दोनों कामों के लिए उलट परिणाम आ रहे हैं।"[13] लीलाधर जगूड़ी अपनी एक कविता में इसी जैविक छेड़-छाड़ के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं-

"तुम्हारे पास पुराने बीजों के नये पौधे हैं/कइयों में से उनकी निजी गंध गायब करने के लिए/उनमें बीस और गुण डाले गये हैं/हमारी प्राचीन भूख ले आई है नयी रोटियाँ/अपनी भूख तुम्हें और भी नयी लगेगी।.../मेरे बच्चे यह भी जान लो कि प्राकृतिक संसाधन/भोजन के मूल स्रोत हैं टेक्नॉलाजियाँ नहीं/जो कच्चा माल है उसमें एक पका हुआ फल भी है।"[14]

अति तकनीकीकरण, अति मशीनीकरण मनुष्य की सहजता एवं चैन को छीन रहा है। आज हमारे चारों ओर इतना शोर है कि इसने हमारी शांति छीन ली है एवं हमारी उद्विग्नता को बढ़ा दिया है। निलय उपाध्याय अपनी कविता 'डीजल पंप' में इसकी अभिव्यक्ति इन शब्दों में करते हैं-

"डीजल पंप/बहुत फट-फट करता है न मनबोध बाबू/बहुत मुश्किल है इसके साथ और रह पाना/मुश्किल है विनाश के बिचौलियों को/और सह पाना...।[15]

औद्योगिक समाज में विकास के नाम पर जो एक बड़ी विडंबना घटी है वह है जंगल, पेड़-पौधे का अनियंत्रित खात्मा। भारत का ही संदर्भ लें तो "पर्यावरण संतुलन के जमीन के 33 प्रतिशत भाग में जंगल होना चाहिए लेकिन अंधाधुंध कटाई के चलते अब भारत में मात्र 19.27 प्रतिशत वन भूमि बची है।"[16] नरेश सक्सेना अपनी एक कविता में इसी चिंता को व्यक्त करते हैं। इस कविता में कवि इच्छा व्यक्त करता है कि मृत्यु के बाद उसका दाह-संस्कार बिजली से हो ताकि पेड़ कटने से बचे और भावी पीढ़ी को एक सुंदर संसार विरासत में दिया जा सके-

"कितनी लकड़ी लगेगी/श्मशान की टालवाला पूछेगा/गरीब से गरीब भी सात मन तो लेता ही है/लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में/कि बिजली के दाह घर में हो मेरा संस्कार/ताकि मेरे बाद/एक बेटे और एक बेटी के साथ/एक वृक्ष भी बची रहे संसार में।"[17]

वन क्षेत्र के घटने, पृथ्वी के तापमान बढ़ने एवं जीव-जन्तुओं के अनुकूल परिस्थिति नष्ट होने के कारण आज मनुष्य जानवरों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। एक बेहद

परेशान करने वाला आंकड़ा यह है कि "इस समय पशुओं और पौधों की लगभग 17,000 प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर है।"[18] अपनी प्रसिद्ध कविता बाघ में केदारनाथ सिंह भविष्य में जानवरों के विलुप्त होने की इसी दुश्चिंता को व्यक्त करते हैं–

"उन्हें डर है कि एक दिन / नष्ट हो जाएंगे सारे-के-सारे बाघ कि एक दिन ऐसा आएगा / जब कोई दिन नहीं होगा और पृथ्वी के सारे-के सारे बाघ / धरे रह जायेंगे बच्चों की किताबों में"[19]

भूमंडलीय समाज ज्यों-ज्यों सुविधावादी जीवन-पद्धति में ज्यादा से ज्यादा ढलता जा रहा है, वह अपने उपभोग से जो उच्छिष्ट पैदा कर रहा है उसके कारण मलबे का ढ़ेर बढ़ रहा है। नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं। स्वच्छ वातावरण विशाक्त परिवेश में बदलता जा रहा है। अपनी एक कविता में विजय कुमार इसी स्थिति का चित्रण एवं प्रतिकार करते हैं–

"निकालो इस गाद को निकालो/पॉलिथिन की थैलियों को निकालो/जस्ते और तेजाब को निकालो/इसके नीचे हमारा बचपन दबा हुआ है/नाथों इसमें बैठे कालिया नाग को/नदी के विषैले जल में/हमारी खोई हुई रबड़ की गेंद/कूद-फांद असहमतियाँ संशय"[20]

पर्यावरण के साथ जो फरेब वैश्विक मंच पर चल रहा है उसी की अभिव्यक्ति 'पृथ्वी दिवस, 1991' शीर्षक कविता में हुई है–

"अवाक है पृथ्वी/अब तो वह चीख भी नहीं सकती/हत्यारे उसका शृंगार कर रहे हैं/घावों पर चिपका रहे हैं/हरे वृक्ष के रंगचित्र/अभी सूखे भी नहीं हैं/उन उंगलियों के जख्म/जिनमें महावर लगा बिछुआ पहना रहे हैं।"[21]

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि समकालीन कविता में पर्यावरण संबंधी चिंता की अभिव्यक्ति कम होने के बावजूद उसका स्वरूप विविधता से भरा एवं बहुआयामी है। यद्यपि पिछले वर्षों में पर्यावरण चिंता की झूठी वैश्विक गहमा-गहमी में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला है। वहाँ ताकत एवं दबाव का खेल चल रहा है। पर्यावरण का विनाश जिस प्रकार से मनुष्य की अस्मिता के लिए ही प्राणघातक होता जा रहा है, समकालीन कवि उसे उतनी ही बेचैनी से बयाँ नहीं कर रहे हैं। अस्तित्व-समस्या से जुड़े होने के कारण पर्यावरण-संवदेनशीलता न केवल कवियों के लिए बल्कि प्रत्येक मनुष्य की मांग है।

संदर्भ

1. पूँजीवादी प्रपंच में प्रकृति और पर्यावरण, संपादक-रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, शब्दसंधान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृ.-16
2. महेश राठी, योजना, मई-2012, पृ.-21
3. देश-विदेश (पुस्तिका-4), मई - 2011, संपादक-उमा रमण, पृ.-14
4. वही
5. वही, पृ.-20
6. समकालीन जनमत, नवंबर - 2010, प्रधान संपादक-रामजी राय, पृ.-9
7. वही, पृ.-8
8. निलय उपाध्याय-कटौती, पृ.-35
9. समकालीन जनमत, नवम्बर, 2010, पृ.-5
10. विष्णु खरे-पिछली बाक़ी, पृ.-87
11. विनोद कुमार शुक्ल-सब कुछ होना बचा रहेगा, पृ.-82
12. ए. अरविंदाक्षन-राग लीलावती, पृ.-56
13. समकालीन जनमत, नवंबर-2010, पृ.-9-10
14. लीलाधर जगूड़ी-अनुभव के आकाश में चाँद, पृ.-48
15. निलय उपाध्याय-कटौती, पृ.-6
16. देश-विदेश (पुस्तिका-4), मई-2011, पृ.-26
17. नरेश सक्सेना-समुद्र पर हो रही बारिश, पृ.-36
18. समकालीन जनमत, नवंबर-2010, पृ.-4
19. केदारनाथ सिंह-बाघ, पृ.-51
20. विजय कुमार-मीठी नदी का शोकगीत, पहल (संपादक ज्ञानरंजन), में प्रकाशित
21. जनसत्ता, 20 फरवरी 1998

❖

सहायक प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
314, कनिष्का अपार्टमेंट्स , सी एंड डी ब्लॉक, शालीमार बाग
मैक्स हॉस्पिटल के नजदीक, दिल्ली-88
मोबाइल : 9910560552

तवांग यात्रा

— वीरेन्द्र कुमार यादव

हिमालय के जिस प्रांगण में सूरज की पहली किरण का प्रवेश होता है उसका नाम है अरुणाचल प्रदेश। यही विदर्भ और चीनी राज्य थे। यह केवल लोक विश्वास नहीं इस बात के पुरातात्विक अवशेष भी यहाँ के भीष्मक नगर में मिलते हैं। श्रीकृष्ण यहीं से रुक्मी और शिशुपाल को हराकर रुकमणी को हरण कर द्वारिका ले गए थे।

पर्वतों-वनों-नदियों से हरा भरा या प्रदेश विभिन्न जनजातियों की बहुरंगी संस्कृतियों का संगम है। इनके पारंपरिक पहनावे और त्योहारों पर होने वाले नृत्यों का देखना किसी के लिए भी कौतुक है। यहाँ के सेला दर्रे तवांग मायोदिया की बर्फीली वादियाँ किसी को भी रिझा सकती हैं।

यहाँ की मिशमी, आदी, निशी, आपातानी, तागिन आदि जाति प्रकृति पूजक हैं। ये चाँद, सूरज, धरती, जल को ईश्वर मानकर अपने विधि-विधान से पूजा करती हैं। यहाँ का म्यांमार की सीमावर्ती खामति, सिम्फो, फकियाल आदि जातियाँ जहाँ हीनयानी बौद्ध हैं, वहीं तिब्बत की सीमा पर वास कर रही मोन्पा, शरेतुकपेन मेम्बा, मेयोर आदि महायानी बौद्ध हैं। तवांग का बौद्ध गोन्पा और उसमें विराजित छब्बीस फीट ऊँची बुद्ध भगवान की स्वर्ण जड़ित मूर्ति के दर्शन कर अभिभूत हुए बिना नहीं रहा जाता। यहाँ मेंगा की शिव गुफा और अभी हाल ही में जमीन के नीचे निकले पच्चीस फीट ऊँचे विशाल शिवलिंग को देखे बिना किसी को कदाचित ही विश्वास आए।

यहाँ यह जानना समीचीन होगा कि अरुणाचल में जाने के लिए सड़क के सिवाय कोई साधन नहीं है। अभी सिर्फ ईटानगर जाने के लिए रेल शुरू की गई है जो नाहरलागून स्टेशन तक जाती है। कुछ जगहों के लिए हेलीकॉप्टर सेवा अवश्य उपलब्ध है किंतु यह सबके बूते की बात नहीं है। यहाँ विभिन्न स्थानों पर जाने के लिए सारे रास्ते असम से होकर है ।

जगदम्बी प्रसाद यादव स्मृति प्रतिष्ठान एवं अंतर्राष्ट्रीय हिंदी परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राजभाषा सम्मेलन गुवाहाटी में करने के बाद, 'तवांग' यात्रा की योजना बनी तो लगा कि मन का रीता घट उमंग के जल से छलछला आया।

गुवाहाटी से सड़क मार्ग से तेजपुर आए तथा रात्रि विश्राम वहीं किया। सुबह 5.30 बजे की सूमो से तवांग के लिए अग्रिम आरक्षण करवाया। तेजपुर से भालुकपंग 56 कि.मी. और वहाँ से तवांग 284 कि.मी. है। सूमो में सहयात्री के तौर पर कनाडा की दम्पति के दो जोड़े और तवांग के रहने वाले एक तिब्बती शरणार्थी के साथ दो व्यवसायी भी थे। एक सीट खाली थी।

इस बार मैं हिमालय की विस्तृत शृंखला पर अवस्थित अरुणाचल की दस हजार फुट से ज्यादा ऊँचाईयों पर जा रहा था। अब तक इस प्रदेश की पूर्वी और मध्य भाग के पाँच-साढ़े पाँच हजार फुट ऊँचे पर्वतों पर गया था। क्या हुआ जो मायोदिया जैसी जगह आठ हजार फुट रही हो यही सब सोचते भालुकपुंग पहुँचे, तब सुबह की सात बजे थे। इनर लाईन परमिट की औपचारिकता पूरी करने में हमें तो क्या समय लगना था किंतु उन विदेशी पर्यटकों को समय लगा।

भालुकपुंग असम और अरुणाचल में बँटा एक छोटा सा कस्बा है। सीमा के एक तरफ भालुकपुंग (असम) और दूसरी ओर भालुकपुंग (अरुणाचल) लिखा है। दोनों सीमाओं के बीच सीमेंट का बना एक गेट हैं। एक बंगाली की होटल में पराठों का नाश्ता किया। भालुकपुंग से अरुणाचल के वेस्ट कामेंग जिले की सीमा शुरू हो जाती है। यह कामेंग नदी के किनारे बसा ऐतिहासिक स्थान है। उसके पास बहती कामेंग को असम में भोरेलो नदी के नाम से जाना जाता है। इस स्थान पर शोणितपुर (वर्तमान तेजपुर) के राजा वाणासुर के पौत्र भालुक का राज्य

रहा है। भालुक का तो अरुणाचल की भूमि से पीढ़ियों का संबंध रहा है। हिरण्यकशिपु का राज्य यहाँ के प्रभु पहाड़ पर था। यह प्रभु पर्वत सुवणशिरी नदी के घाटी क्षेत्र में है। हिरण्यकशिपु के हरिभक्त पुत्र प्रहलाद उसके पुत्र विरोचन और उसके पुत्र बलि की दानवीरता की कथा प्रचलित है, जिससे स्वयं विष्णु को दान लेने के लिए वामन-रूप धरना पड़ा। बलि का पुत्र वाणासुर था। इसी वाणासुर का पौत्र भालुक था।

अरुणाचल प्रदेश आर्कीड फूलों की विचित्र प्रजातियों के लिए जाना जाता है। भालुकपुंग से सात-आठ किलोमीटर के बाद कामेंग नदी के किनारे बसा तिपी आता है। यहाँ एशिया की सबसे बड़ी आर्कीड पौधशाला है। आर्कीड के इस नंदन वन में 7500 किस्म के आर्कीडों को ग्लास हाउसों के बीच बड़ी सँभाल के साथ उगाकर सहेजा जाता है। आर्कीड की प्रजातियों में मैंने दो फूलों 'सीता पुष्प' और 'द्रौपदी पुष्प' के नाम पर्यटन पुस्तिका में पढ़े थे। यहाँ तक लिखा है कि इन पुष्पों को सीता और द्रौपदी अपने आभूषणों की तरह पहना करती थी। यहाँ की घाटी में दिसंबर से मार्च तक बहती तेज बयार और जलवायु में ये पुष्प अपनी रंग-बिरंगी छटा बिखेरते हैं। प्रकृति इन सुमनों की विभिन्न आकृतियों को पता नहीं, अपने किन हाथों से गढ़कर इनमें ऐसे अनोखे रंग भरती है।

सूमो कामेंग घाटी के पहाड़ों पर चढ़ रही थी और कामेंग नदी पहाड़ों से उतर रही थी। हमारी दाहिनी ओर झाग उगलती फेनील कामेंग के विस्तृत पाट में कल कल करता पानी दूध जैसा बह रहा था। बहुत सी जगह चट्टानों पर सफेद रंग से सूर्य की आकृति बनीं थी, जिसके नीचे रोमन में लिखा था 'आतुरतो आने दोन्यी' अर्थात हे सूर्य माता हमें शक्ति दो। रास्ते पर कहीं कहीं छोटे-छोटे शिवाले और देवल भी बने थे जिन्हें ग्रेफ वाले सड़क निर्माण करते समय बनाया था।

सड़क के घुमावदार मोड़ों को पार करती गाड़ी दोपहर होते-होते बोमडिला पहुँची। आगे के दृश्य मेरे लिए एकदम अनजान थे। आगे ऊँचाई बढ़ती गयी। पहाड़ी सड़क से नीचे विस्तृत घाटी दिखाई दे रही थी। उस घाटी के बीच धूल धूसरित बलावती सड़क साफ दिख रही थी। अब रास्ता ढालान पर था ढालान भी ऐसी कि हम मंजिल दर मंजिल नीचे उतरते गए।

बोमडिला से 44 किलोमीटर दिरांग के पेट्रोल पंप पर तेल लेने गाड़ी रूकी। आगे दिरांग के कस्बाई बाजार से गाड़ी गुजरी तो उसे नजर भर देखा। स्वच्छ और योजनाबद्ध तरीके से बसे दिरांग शहर के बीच हमारी गाड़ी चली जा रही थी। दिरांग में याक फार्म और इसके अगल-बगल की बस्तियों में कीवी और सेव के बगीचे हैं। यहाँ के याक फार्म में याक और मिथुन की संकरित नस्ल पैदा की जाती है। दिरांग से 40 किलोमीटर आगे बढ़े तो बैशाखी आया। चारों ओर सेना के शिविर थे। वहाँ से रास्ता फिर ऊपर की ओर जाने लगा। एक जगह गाड़ी ढाबे पर रूकी। उस जगह का नाम मोहन बाजार है। अपने क्षेत्र की भाषा के अनुरूप नहीं लगा। पता चला कि 1914 में तिब्बत, चीन और भारत के बीच सीमा का रेखांकन हो रहा था तब उस काम के कर्ता धर्ता सर हेनरी मैकमोहन का यहाँ कैम्प था। उसी के नाम पर मेहोन कैम्प कहलाने लगा वही बाद में मोहन बाजार हो गया।

तवांग जाने के रास्ते में पीछे छूटी सड़कों को ऊपर से देखने का आनंद भी किसी नदी घाटी को देखने से कम नहीं। गाड़ी जैसे पर्वतों के चक्रव्यूह को भेदती आगे बढ़ रही थी। हम प्रकृति के सात-आठ पता नहीं कितने अनगिनत द्वारों को एक-एक कर पार कर रहे थे। अब गाड़ी धीरे-धीरे पर्वतारोहण करतीं विश्व की सबसे ऊँची दूसरे क्रम की 'सेला दर्रे' पर बनीं सड़क की ओर बढ़ी। सेला दर्रे पर ही सड़क के पास की झील का नाम ही स्वर्ग झील है। इसकी गोलाकार आकृति किसी रतन कटोरा जैसी लगी। बर्फीली हवा की हथेलियाँ जैसे उस रतन को समेट लेना चाह रही थी। सौंदर्य कोई दीर्घाकार या लघुकार थोड़े न होता है। हीरे की छोटी-सी कणी भी सौंदर्यमय होती है। झील में प्रचुर मात्रा में ट्राइट मछलियाँ मिलती हैं।

मेरी एकाएक दृष्टि वहाँ पास बने शिवालयों पर गई। जिसे भारतीय सेना के जवानों ने बनाया है। इस वक्त ऐसी अनुभूति हो रही थी, जैसे शंकर के निवास कैलाश के नीचे मानसरोवर के पास हम खड़े हों। 18 किलोमीटर बाद जसवंत गढ़ आया। सड़क के किनारे ही चीन की लड़ाई के समय चीनी सेना को वहाँ 72 घंटों तक रोक कर अपने प्राणोत्सर्ग करने वाले वीर सेनानी जसवंत सिंह का स्मारक बना है।

मैं अपने मन में तवांग के बारे में सोचता हुआ किसी कल्पना लोक में विचर रहा था। मेरे तसब्बुर में तवांग में एक बौद्ध गोन्पा और उसके आस-पास रहने वाले कुछ लोग थे। मैंने उसे वैसा नहीं सोच रखा था जैसा कि उसे पाया। इस क्षेत्र में पहुँच कर तो सब कुछ बदला हुआ लगा। अरुणाचल के शेष भाग में मिलने वाले मिथुन यहाँ नहीं है। लोगों का पहनावा, रहन-सहन, भाव-बर्ताव, घरों की बनावट, रूचि पसंद, खान-पान, सब कुछ बदला हुआ है। यहाँ मिथुन की जगह याक है।

सेला दर्रा पार करने के बाद ही हम तवांग जिले में प्रवेश कर चुके थे। इस जिले की उत्तरी सीमा पर तिब्बत (चीन), पश्चिम और दक्षिण की ओर भूटान है। इसका दक्षिण पूर्वी भाग केवल वेस्ट कामेंग जिले से मिला हुआ है।

सूमो तवांग में प्रविष्ट हुई तब तक अँधेरा हो गया था। आसमान पर पूर्णिमा का चंद्रमा चमक रहा था। हमें अपने आवास की चिंता नहीं थीं। किसी गोन्पा के अधीन तवांग शहर के बाहरी सीमा पर बना अतिथि गृह आरक्षित था।

सामने दूर पहाड़ी पर खड़े बौद्ध गोन्पा पर गिरती चंद्र किरणों को विद्युत प्रकाश ने ढाँप रखा था। फ्लड लाईट की कृत्रिम रोशनी से पूरा गोन्पा किसी विशाल हीरक खण्ड की तरह चमक रहा था। हमारे आवास के सामने स्थित विस्तृत मैदान में

चाँदनी का सरोवर भरा था। दूर पहाड़ों की हिमाच्छादित चोटियाँ चाँदी के पर्वत जैसी चमक रही थी।

तवांग के बाजार की साफ सुथरी, कहीं ऊँची तो कहीं ढलानदार सड़कें और उनके दोनों ओर बनी दुकानों ने मन मोहा। अन्य जीवनावश्यक वस्तुओं की दुकानों के साथ तवांग में बनने वाले हस्तशिल्प और कालीनों के शोरूम भी थे। उन्हें चलाने वाले बंगाली, बिहारी, मारवाड़ी, स्थानीय लोगों के साथ-साथ तिब्बती शरणार्थी भी हैं।

तवांग का बौद्ध गोन्पा, बाहर से देखने पर यह गोन्पा एक किले जैसा लगता है। अब तक गोन्पा माने बौद्ध मंदिर मात्र समझे थे। अब समझा, गोन्पा में मंदिर के सिवाय बौद्ध लामाओं और छात्रों की पूरी बस्ती होती है। गोन्पा का मुख्य मंदिर ल्हासा के महल जैसे पोटाला गोन्पा के बाद विश्व का दूसरा गोन्पा माना जाता है। भीतर भगवान बुद्ध की छब्बीस फुट ऊँची स्वर्ण जड़ित मूर्ति के दर्शन हुए। उसके बाद हम लोगों ने नागुला झील में झाँकते हिम सौंदर्य को देखा।

तवांग पहुँचे तो वहाँ के युद्ध स्मारक के सिवाय अब भला हमारा गन्तव्य और क्या होता! बौद्ध शैली में बने स्मारक के चारों तरफ सेना के विभिन्न रेजीमेण्टों की ध्वजाएँ फहरा रही थीं। स्मारक के चारों ओर खड़ी सेना की गाड़ियों के साथ सैनिकों का भी जमावड़ा था। दरअसल वह स्मारक सैनिक क्षेत्र में बना है। सीढ़ियाँ चढ़कर हम ऊपर पहुँचे। वहाँ शहीद हुए ढाई हजार सैनिकों के नाम उनकी रेजीमेंट के साथ दीवारों पर लिखे थे। उन सभी नामों को पढ़ना संभव नहीं था। फिर भी असम राइफल्स के कुछ शहीदों के नाम पढ़े। उनमें असमिया वीरों के साथ अरुणाचल की जनजातियों के रणबांकुरों के नाम समाहित थे। सिख, मराठा, मद्रासी आदि विभिन्न जातियों के शहीदों के नाम को देखकर कविवर प्रदीप की ये पंक्तियाँ बरबस याद आ गई।

"ऐ मेरे वतन के लोगों
जरा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
जरा याद करो कुर्बानी
कोई सिख, कोई जाट मराठा
कोई गुरखा कोई मदरासी
सरहद पर मरने वाला
हर वीर था भारतवासी।"

इस गीत को स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर के कण्ठ से जब नेहरू जी ने सुना तो वे रो पड़े थे। कवि प्रदीप का पता कर उन्हें मिलकर बधाई दी।

मायोदिया और तवांग की बर्फीली वादियाँ सेला दर्रे और नागुला की गगनचुम्बी ऊँचाइयाँ, तवांग के आस-पास हिमाच्छादित नयनाभिराम झीलों को न जाने कब दोबारा देखने का अवसर हाथ लगेगा। कल-कल बहती, हे लोहित, दिबांग, सियांग, सुवणशिरी, पापम् पारे, कामेंग, नवडिहिंग, कामलांग, आदि नदियाँ अब तुम सबसे विदा लेकर जा रहा हूँ। तुम्हारी स्मृतियाँ ही अब मेरी धरोहर हैं।

❖

सदस्य हिंदी सलाहकार समिति, भारत सरकार
अध्यक्ष अंतरराष्ट्रीय हिंदी परिषद्
153-एम आई जी, लोहिया नगर
कंकडबाग, पटना-800020

पांडेय जी और उनका छज्जा

लालित्य ललित

पांडेय जी छत पर बैठे हैं उनका छज्जा भी किसी छत से कम नहीं है उन्होंने यह महसूस किया है आगे बढ़ने के लिए कभी भी किसी को भी पुल बना सकते हैं वैसे साहब कहा भी गया है कि पुल तो उस पार जाने के लिए ही होते हैं। देखने में यह भी आया है के पार्क के गेट पर जंजीर बँधी हो तो गाय कैसे भी करके अंदर चली जाती है, पानी रास्ता बना ही लेता है चोर-चोरी करने से बाज नहीं आता। चाहे कोरोना आए कोरोना का चाचा उसका फूफा आए, उसका दादा आए है लेखक ने तो काम करना है माली ने पानी देना है हिंदुस्तान इतना अच्छा है, कहीं जाने का मन ही नहीं होता। मैं पर्यटन की बात कर रहा हूँ। ऐसे भी कई देश होते हैं साहब जहाँ जाने का न मन करता है!

देखिए ना कुछ लोगों को सड़क पर चलने की आदत होती है सड़क पर कोई ट्रैफिक ना हो सामने कोई तांगा हो ना तो भी यह जनाब हॉर्न बजाने से बाज नहीं आते पांडेय जी के अंतर्मन कुमार ने कहा साहब यह मन की बात है किसी के समझ में आती है किसी की समझ में नहीं आती और वैसे भी अपना संसार भी बहुत बड़ा है हिंदुस्तान इतना अच्छा है कि कहीं दूसरे देश को देखने का न मन होता। हम वह भारतीय हैं बेशक हमारा पासपोर्ट दराज में पड़ा-पड़ा अपने प्रामाणिकता खो दे। एक बात पांडेय जी को समझ में क्यों नहीं आती। वो अक्सर सोचते भी हैं एक बात बताओ भैया विदेश में जाते हैं वो क्या खोजते हैं क्या अपने देश में ऐसी कोई जगह नहीं अपना देश तो सात समंदर से भी अच्छा है एक समोसा 5 रुपये का, 10 रुपये का मिल जाता है हमें कम से कम 205 रुपये का मिलता है हिंदुस्तान में तो आप कहीं भी हल्के हो लेते है। महाराज बाहर देश में कर के कर देखो ऐसे भारी हो जाओगे। राम जी करेंगे बेड़ा पार।

इसलिए कहा गया है शास्त्रों में अपने देश से बड़ा कोई देश नहीं है।

पांडेय जी सोच रहे हैं कि बड़े दिन से रामकिशन पुनिया से बात नहीं हुई अरे साहब कोरोना है अब पुनिया जी बैठे होंगे कहीं दरबार में चुपके से उनसे बात हुई थी सपने में। हकीकत में हुई थी अब राम जाने आप सोचना।

जो कह रहे थे कि कोरोना वायरस नहीं है अखबार में खबर आई है जितनी ठंड पड़ेगी इतना कोरोना फैलेगा उतना।

भैया कोरोना तुम यह बताओ हमने तो तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो तुम हमारे देश के पीछे पड़ गए राशन पानी लेकर! कोरोना दूसरी तरफ डेंगू तीसरी तरफ चाइना अब अपनी इन बीमारियों से लड़ें या सीमा पार के युद्ध से! राम जाने क्या होगा!

वैसे जो भी होगा, वो सब ठीक होगा। पांडेय जी कहते हैं जो भी होता है सबके विकास के लिए होता है, और होगा भी।

बटेश्वर नाथ पांडेय जी के अच्छे दोस्त हैं बटेश्वर नाथ कहते हैं भैया मैंने जो कमाया वह मेरे बच्चों का लेकिन पांडेय जी कहते हैं यदि आपने अपना पैसा अपने पर खर्च नहीं किया उस कमाने का क्या फायदा!

बात तो सही है। पांडेय जी ज्ञानी बहुत है। ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं है लेकिन दुनिया को चलाते हैं। उनका कहना है भारतीय संसद में जितने एमपी हैं क्या वे सारे पढ़े लिखे हैं! सारे विद्वान हैं नहीं न। इसलिए अपना रोजगार करना चाहिए। चाहे वे पकौड़ा बनाएँ। वैसे तो सर्दियों में पकोड़े का काम खूब चलता है पकोड़े के साथ हलवा भी बना ले सूजी का बेसन का तो कहना ही क्या!

क्योंकि कल पांडेय जी फेसबुक पर देख रहे थे कि गोलगप्पे 25 तरह के होते हैं अब आप बताओ आपकी जानकारी बड़ी ना बड़ी।

मनुष्य को सजग रहना चाहिए। एक्टिव रहना चाहिए। और अगर आप एक्टिव नहीं रहे। तो दूसरा आप को निष्क्रिय मानता हुआ पुल बनाता हुआ आगे बढ़ जाएगा। आप पीछे रह जाओगे।

अब यह बताओ क्या आप पीछे रहना पसंद करोगे। नहीं न।

तो आगे बढ़ो। बढ़िया सोचो। कुछ काम करोगे तो कुछ नाम भी होगा और यदि काम नहीं किया तो साहब छज्जे पर बैठकर हल्की-हल्की धूप में मूँगफली छीलकर खाने का जो स्वाद है वह दुनिया के किसी भी कोने में नहीं है। अभी कोई बता रहा था बड़े वाले लेखक थे अब क्या लिखते हैं क्या नहीं लिखते यह किसी को भी मालूम नहीं लेकिन एक जासूस ने पता लगाया कि भाई ने लिखने के लिए 5 लोगों को किराए पर रखा। हद हो गई साहब किराए पर तो घर दिए जाते हैं यहाँ तो लोगों ने अपने दिमाग ही किराए पर रख दिए। क्या होगा क्या नहीं होगा! सोचने की बात है...देखते हैं आगे आगे क्या होगा! ठंड ने जो करना है।

जो करना है वह करेगी। हर मनुष्य को एक्टिव मोड पर रहना चाहिए। चिलमन ने कहा साहब जी आज दफ्तर नहीं जाओगे। पांडेय जी ने कहा सरकारी नौकर हूँ भैया। कुछ छुट्टियाँ रहती हैं उस का आनंद ले रहा हूँ।

तभी रामप्यारी ने कहा कि सुनिए नाश्ते में क्या बनाऊँ!

पांडेय जी ने कहा कि जो मैं कहूँगा, वह आपने बनाना नहीं, ऐसा करो कि ऑमलेट बना लो। तभी हुकुम हुआ कि ब्रेड तो नहीं है, मिर्ची भी खत्म है।

पांडेय जी ने कहा कि लो कर लो बात!

ले आते है, इसमें कौन सी बड़ी बात है!

पांडेय जी ने नाश्ता किया और तभी रामप्यारी ने कहा कि धनिया और पिसी हुई हल्दी का पैकेट भी ले आओ। खत्म होने को आया।

पांडेय जी नाश्ता कर चुके थे। दौड़ गए, ओपी की दुकान पर। सौदा लिया कि सामने नरेश पहलवान दिख गए।

पहलवानी रही नहीं। काम धंधे सब कोरोना की भेंट चढ़ गए। पहलवान आलू के परांठे बनाने लग गए। परिवार है, आखिर काम तो करना ही पड़ेगा।

पांडेय जी उसके अड्डे पर गए और कहा कि क्या हाल-चाल!

सब बढ़िया है, पांडेय जी। आज गए नहीं, ऑफिस।

पांडेय जी ने कहा कि भइये हम ठहरे, सरकारी आदमी। आज गजटेड हॉलिडे है। हम्म, पहलवान ने परांठे सेंकते हुए कहा। अच्छा ऐसा करो कि एक प्लेट लगा ही दो, देखी जाएगी। जबकि पांडेय जी नाश्ता कर चुके थे।

रामप्यारी ने उनके हाथ में धनिया और हल्दी के पैकेट के अलावा एक और पैकेट देखा तो मुँह सूज गया।

पांडेय जी चुप हो गए। जिंदगी में कितने ही रंग है उन सभी रंगों को करीने से देखने का अभ्यास हो गया है पांडेय जी को।

पांडेय जी घर पर। कभी जमादार आता है तो कभी कुरियर वाला। कभी सब्जी और फलवाला। पांडेय जी सोचने लगे कि घर पर रहना मजा तो है ही पर किसी सजा से कम भी नहीं। जिसका मन जब चाहे वह घंटी दबा देता है।

पांडेय जी की बेटी के नाम एक कुरियर आया था।

पूछने वाला क्या नाम है! मोबाइल नंबर बताइए।

पांडेय जी ने कहा कि भैया क्या प्रोपर्टी नाम करनी है!

नाम पूछ लिया, नंबर पूछ लिया, अब कुतुबमीनार नाम कर दूँ क्या!

कहो तो ताजमहल भी कर दूँगा, कुरियर बॉय मुस्कराता हुआ नमस्ते कर चला गया।

पांडेय जी सोचने लगे जब तक जीवन है, तब तक आदमी उसके झमेले में पड़ा रहता है।

मरने के बाद बंदे को तो मुक्ति मिल जाती है पर जी मुक्ति उसके परिजन को तब जाकर मिलती है, जब उसकी पॉलिसी का धन स्वीकृत होकर परिजन जोकि ऑथोराइज्ड है, उसके खाते में ट्रांसफर हो जाता है।

सारा खेल पैसे का है और माया जिसके पास रहती है वह व्यक्ति उछलता रहता है, आखिर पैसा बोलता है।

लेकिन पांडेय जी ने यह भी महसूस किया है कि बिलो पॉवर्टी वाले अमीरों से ज्यादा सुखी और खुश रहते है, बेचारे अमीर लोग यही सोचते रहते है कि कहाँ गाड़ी खड़ी होंगी! कहाँ नहीं खड़ी होगी!

इसी चक्कर में आदमी दुनिया से प्रस्थान कर जाता है।

पांडेय जी कुछ सोच ही रहे थे कि अचानक से क्रिएटिव मॉड में कन्वर्ट हो गए।

❖

प्रसिद्ध व्यंग्यकार
बी 3/43, शकुन्तला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
ई-मेल : lalitmandora@gmail.com

रामबाबू और घटते पानी की मछली

अनीता यादव

रामबाबू ने यूनिवर्सिटी की नौकरी ऐसे ही नहीं की थी। 9 से 5 की नौकरी को वह 2 से 5 समझकर बड़ी शिद्दत से कर रहा था। आगे भी यूँ ही करता रहता अगर इस मुए कोरोना वायरस की एंट्री देश दुनिया में ना हुई होती। इधर कोरोना की एंट्री हुई उधर स्कूल से लेकर कॉलेज और कॉलेज से लेकर यूनिवर्सिटी के एंट्री गेट एग्जिट गेट में तब्दील हो उठे। परिणामस्वरूप स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी और सभी ऑफिस 'वर्क फ्रॉम होम' की दुंदुभी बजा उठे। काम करने का अब केवल यही एक फार्मूला दुनिया के पास बचा था। इसी फार्मूले की गोद का सहारा लेकर पूरी दुनिया 'घर से' काम करने लगी। वे लोग दफ्तरों में काम नहीं करते थे वे अब न केवल 'घर से' काम करने लगे बल्कि 'घर का' काम भी करने लगे। बड़े-बड़े अधिकारी जो मुलाजिमों पर हुकूम चलाते थे, अब रसोई के सैफ क्या कंधे पर पोचा डाले बाई वाली भूमिका में उतर अपनी गृह मंत्री का हुकूम बजा रहे थे।

फिर कोरोना की थोड़ी लहर कम हुई तो दुनिया भी खुलने लगी। कॉलेज और यूनिवर्सिटी के गेट अब भी बंद थे लेकिन कर्मचारी वर्ग जाने लगा था। कैसे ना जाता भला! परंपरा निर्वाह जरूरी जो था। अनावश्यक-आवश्यक नोटिस और आर्डर कैसे निकलते? ये नोटिस ही तो है जो किसी भी संस्था की पहचान ही नहीं जान भी होते हैं और पहचान खोकर कोई कितने दिन जीवित रह सकता है! अब यूनिवर्सिटी भी भला कहाँ जानती थी कि रामबाबू 9 से 5 की बजाय दो से पाँच की ड्यूटी बजाने की आदत पाले बैठे हैं। और आदत भी ऐसी जो छुड़ाए ना छूटे। तो साहब! कोरोना ने दुनिया की जनसंख्या के आंकड़ों में बदलाव से लेकर अर्थव्यवस्था की गति में बदलाव-सब कर डाला लेकिन अब तक जो नहीं बदला वह थी रामबाबू की आदत। कहते हैं आदत बदल गई तो आदमी बदल गया। अब रामबाबू भले ही गिरगिट नहीं थे लेकिन कोरोना तो वह शय निकला जिसका उद्देश्य केवल और केवल मात देना। रामबाबू किस खेत की मूली जो न बदलते? अब ये घर पर काम यानि 'वर्क फ्रॉम होम' तो ठीक था लेकिन घर का काम पर आकर माँ का लाड़ला रहा रामबाबू की सुई अटक गई। परिणामस्वरूप जैसे चुनावों के वक्त नेताओं की देशभक्ति उछाल मारने लगती है वैसे ही रामबाबू की ऑफिस काम के प्रति ईमानदारी उछालें मारने लगी। घर के काम से बचने का उपाय था-ऑफिस का काम करना।

नोटिस का मतलब यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी का मतलब काम और काम का मतलब अब रामबाबू हो उठा था। 2 से 9 का आदी हो चुका बाबू अब 9 से 9 तक लैपटॉप में नाक घुसेड़े रहता। अब लैपटॉप ही वह खिड़की थी जिससे रामबाबू यूनिवर्सिटी के आँगन में झाँक तो सकता था लेकिन मूँगफली के छिलके नहीं उड़ा सकता था और न ही अपनी आरक्षित सीट पर लंबे लंच ब्रेक की तख्ती टांग घंटों यूनिवर्सिटी ग्राउंड में धूप में टांग सेंक सकता था। घर पर ही लैपटॉप पर फ्लैश हुए हर नोटिस का नोटिस लेता और देता। हर आदेश का बखूबी पालन चल रहा था। भले ही लैपटॉप पर बैठे-बैठे रामबाबू की बैक बोन जवाब दे चुकी थी। संडे और मंडे का फर्क तक मिट चुका था। यह फर्क मिटता देख घर की बैकबोन उर्फ पत्नी की आँखें रामबाबू को देखने के बजाय घूरने लगी थीं। घर का सीन एकदम चूहे और बिल्ली माफिक हो उठा।

अपनी बैकबोन को तो राम बाबू ठस्सा दे भी दें लेकिन घर की बैकबोन का क्या करें? रामबाबू समझ नहीं पा रहा था। घर की रसोई से आती कटार से भी तीखी नजर रामबाबू की उन उंगलियों को माथे पर बल डालकर घूरती जो लैपटॉप कीबोर्ड से प्रेमिका सी उलझी रहती। उंगली और लैपटॉप के सद्भाव को देखकर रामबाबू खुद आश्चर्यचकित ही नहीं बल्कि रश्क भी कर उठते।

ऐसा नहीं है कि रामबाबू की हालत हमेशा से ऐसी थी। लॉक डाउन के शुरू में तो 'वर्क फ्रॉम होम' करते रामबाबू की सेवा उसी अतिथि की भाँति हुई जो मेजबान के घर मिठाई और फल के टोकरे लेकर पहुँचता है और मात्र दिन भर ठहर कर अपने घर का रास्ता नाप लेता है। ऐसे अतिथि बड़े भाग्य से मिलते हैं, सिर आँखों पर बिठाए जाते हैं लेकिन रामबाबू ऐसे अतिथि सा भाग्य अधिक वक्त तक सँभाल नहीं पाए और जल्द ही घर का मौसम बदल गया। पहले पहल तो रामबाबू मुँह से चाय का 'च' और पकोड़े का 'प' बोलते उससे पहले ही टेबल पर चाय का प्याला, रोस्टेड मूँगफली, पकोड़े और कचोड़ी की प्लेट सज जाती लेकिन बहार के बाद तो पतझड़ आता ही है। सो, मौसम बदलते ही पहले कप गायब हुआ, फिर प्लेट और अब तो हालत ये कि चार हाँक लगती तो एक कप चाय मिलती। घर में रामबाबू की इज्जत मुट्ठी के रेत की भाँति फिसल रही थी और वह इसे फिसलते देखने को बाध्य था। बंदूक से निकली गोली और गई इज्जत कभी वापिस नहीं आती वह जानता था। सो, उसने परिस्थितियों को भाँपा और लैपटॉप और उंगलियों का उलझा रिश्ता खत्म करने की ठानी। क्योंकि उसका अपना रिश्ता पानी जो माँग रहा था।

अब सरकारी बाबू काम न करने की ठान लेता है तो उसे अंत काल तक निभाता है। रामबाबू को अपनी बैकबोन ही सीधी नहीं करनी थी बल्कि गृहमंत्री की तीखी और टेढ़ी हुई नजर को भी सीधा करना था। पर कैसे? वाणी में खुरदरी स्पष्टवादिता का अभाव भी रामबाबू की कमजोरी ठहरी जो कि बाबुओं का गुण होता है। फिर बड़े बाबू से कैसे बात करे? कोताही कैसे बरते, परिणाम भयावह हो सकता था। वह युगीन यथार्थ के खुरदरेपन को भी खूब समझता था। सो, आज उसने ठान लिया था कि लैपटॉप पर मेल में चमकते नोटिस की तरफ ध्यान नहीं देना है। घर में खिचड़ी बनेगी या बिरयानी यह अब उसके नाक में था। उसने मन ही मन बिरयानी का इंतजाम कर लिया। घर का मेडिकल बॉक्स खोला तो सामने ही ईयर बड दिख गया। इसकी सहायता से छींक मारने का इंतजाम हुआ। बस! देर केवल और केवल बड़े बाबू को फोन लगाने की थी। फोन लगते ही उधर से बड़े बाबू की आवाज आई और इधर से रामबाबू की लगातार छह छींक। उधर से बड़े बाबू बोले 'हैलो'! इधर से आवाज आए-आ...छी...आ...छीं...एक हैलो! दो छींक। बस! फिर क्या था। बड़े बाबू समझ गए कि छोटे बाबू खतरे में हैं। खतरे को भाँपते ही बड़े बाबू ने छोटे बाबू को कोविड-19 की छुट्टी सैंक्शन कर दी। छुट्टी का नाम सुनते ही छोटे बाबू उर्फ रामबाबू के शरीर में उल्लास की बिजली दौड़ गई। छींक कमाल कर सकती है यह केवल और केवल कोरोना काल में ही संभव है। इतनी आसान छुट्टी आज तक किसी सरकारी, गैर सरकारी, अर्द्ध सरकारी महकमे ने कभी अप्रूव नहीं की। गिनीज बुक में यह रिकॉर्ड भी दो हजार बीस को ही मिलेगा। रामबाबू को चैन आया कि अब न केवल उसकी बैकबोन बल्कि घर की बैकबोन भी सीधी रहेगी और खिचड़ी की जगह बिरयानी। रामबाबू ने फोन रखते ही कमर को बीन बैग के हवाले किया और हाथ से लैपटॉप का माउस त्याग टीवी का रिमोट उठा लिया। चेहरे पर भयानक वाली मुस्कान काबिज हो चुकी थी आखिर घटते पानी में मछली जो मार डाली थी। अपनी मेहनती प्रवृति और वक्र बुद्धि के चलते छोटे बाबू की मछली मरते ही रेत में नहीं सीधे गोद में आन पड़ी थी। पत्नी ने इसे आपदा में अवसर कहा। अब किचन बिरयानी पका रहा था तो ड्रॉइंग रूम का टीवी गाना बजा रहा था-'आज बोतला खुल्लन दो, दारू सारू ढुलन दो....

❖

6/10, तृतीय तल, इंदिरा विकास कॉलोनी,
मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
मोबाइल : 8920225355, 9873650465
ई-मेल : dr.anitayadav77@gmail.com

तितलियाँ मरा नहीं करतीं

बलराम अग्रवाल

इंतजार का वह आखिरी दिन था। मैंने पागलों की तरह अलमारी खोली। उसमें से उस पैकेट को निकाला जिसे गत 20 वर्षों से रोज-ब-रोज सिर्फ देखता और जहाँ का तहाँ रखता आ रहा था। पैकेट पर लिपटे टेप को मैंने बेरहमी से उधेड़ डाला। अंदर से किताब निकालकर कवर का गत्ता उलटकर जो देखा, तो पहले ही पन्ने पर लिखी छोटी-सी एक कविता ने बुरी तरह चौंकाते हुए मुझे 20 साल पहले के जुवेनाइल पार्क में पहुँचा दिया था...

"तो, हमारी यह आखिरी मुलाकात है?" सब-कुछ समझते हुए भी लगभग सुबकते हुए मैंने पूछा था।

इस सवाल पर गजब की चुलबुली वह लड़की गीली पलकों को झपकाती निश्चल बैठी रही थी। दर्द उसकी नाक से भी बहने लगा था जिसे सोखने के लिए अपना रूमाल उसने स्थायी तौर पर नथुनों से सटा लिया था। अचानक मेरी निगाह उसके पास वाली फूलों की क्यारी में निस्पंद पड़ी एक तितली पर पड़ी।

"वो मर चुकी है शायद।" प्रेम के दुखद अंत की ओर से अपना और उसका ध्यान हटाने की कोशिश करता मैं बोला।

प्रमिला ने गरदन घुमाकर उधर देखा। प्यार से कभी-कभार मैं उसे 'तितली' भी कह दिया करता था। समझ गयी कि क्या कहना चाहता हूँ। कुछ देर देखती रही फिर बोली, "मरी नहीं है। आँखें बंद करके उसे उड़ता महसूस करो। जितनी देर चाहोगे, आसपास मँडराएगी, फिर चली जाएगी!"

उसका मन रखने के लिए, मैंने आँखें बंद कर लीं। कुछ देर बाद, उसके कहने पर जैसे ही खोलीं, वाकई, तितली वहाँ नहीं थी!

"कहाँ गई?" मैंने व्यग्र स्वर में पूछा।

"उड़ गई।" उसने सहजता से कहा।

"मरी हुई?" मैं बुदबुदाया।

"तितलियाँ मरा नहीं करतीं अमित। हालात के हाथों मार दी जाने के बावजूद जिंदा रहती हैं वो।" सुबकन पर काबू पाकर उसने आँखें पोछीं, किताब सँभाली और हठात् उठ खड़ी हुई। मैं भी उठ लिया।

पार्क से निकलकर, मेरा हाथ पकड़ वह स्टेशनरी की दुकान की ओर बढ़ चली।

"तितली की सिर्फ देह जा रही है अमित, तितली नहीं!" चलते-चलते उदास स्वर में उसने कहा और दुकान के अंदर चली गयी। वहाँ उसने एक बॉक्स, एक लिफाफा और सैलो टेप खरीदा। अपनी किताब को बॉक्स में बंद कर लिफाफे में रखा और सैलो टेप से सील कर दिया। पैकेट पर अंग्रेजी में लिखा-'टु बी ओपन आफ्टर ट्वेंटी ईयर्स फार दिस डे' और तारीख डालकर मेरी ओर बढ़ा दिया।

"सब-कुछ तो मेरे सामने रखा है इसमें! फिर बीस साल बाद क्यों?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"एंड नॉट बिफोर दैट वेरी डेट!" मेरी बात को अनसुना कर, उदास होने के बावजूद कठोर स्वर में हिदायत दी उसने।

उसके बाद, जैसा कि उसने वादा लिया था, मैंने मालूम ही नहीं रखा कि वह कहाँ गई, कैसे रही...कैसी है।

लेकिन, पैकेट खोलकर किताब जो निकाली तो विदाई के दिन जैसे उदास भाव से अपलक निहारती हुई प्रमिला मेरे सामने थी, इस कविता के रूप में—

तुम्हारी यादों में
महकती-मँडराती रहना
जानती है तितली!
यह बुढ़ाएगी नहीं कभी
और न मरेगी ही...

प्रमिला

❖

दीवार से पीठ टिकाए बैठा वह बूढ़ा

ऑफिस से छुट्टी पाकर मैं घर की ओर लौट रहा था। इस समय दिल्ली की ज्यादातर सड़कें कारों, बाइकों आदि वाहनों से जाम हो जाती हैं। फुटपाथ, भीड़-भरा इलाका बन जाती हैं। जिस रास्ते से मैं गुजर रहा था, देखा, कि फुटपाथ से काफी पीछे दीवार से पीठ टिकाए एक बूढ़ा बैठा था। जैसे ही नजरें मिलीं, उसने हाथ के इशारे से निकट बुलाया। मैं एकबारगी झिझका जरूर, क्योंकि हाथ के इशारे से निकट बुलाने वाले अभिजात्य-जैसे लगने वाले अनेक लोगों द्वारा मैं ठगा जा चुका था। फिर सोचा, जरूरी नहीं कि हर शख्स ठग ही हो, कोई-कोई जरूरतमंद भी हो सकता है। सो, निकट चला गया।

"मैं आपका नाम नहीं पूछूँगा बेटा, लेकिन यह जरूर पूछूँगा कि क्या आप रोजाना इधर से गुजरते हैं?" उन्होंने पूछा।

"जी।" मैंने कहा, "शनिवार और इतवार के अलावा।"

"इसी समय?"

"जी, करीब-करीब।"

"एक मेहरबानी करोगे?"

अब शुरू होगा भीख माँगने का सिलसिला-मैंने सोचा और सावधान होते हुए कहा, "कोशिश करूँगा, आप सेवा बताइए।"

"अकेला हूँ बेटा।" बुजुर्ग ने कहा, "इधर-उधर से भीख मांग, पेट भरकर यहाँ आ पड़ता हूँ। बतियाने के लिए पाँच-सात मिनट निकाल लोगे तो मेहरबानी होगी।"

मैं दुविधा में पड़ गया। यह कोई मुश्किल काम नहीं था लेकिन वादा करना मुश्किल था। सभी जानते हैं कि शाम को घर की ओर रुख किए शख्स का एक-एक पल कितना बेचैनी-भरा होता है।

"देख लेना, अगर कर सको तो..." दुविधा में पाकर उन्होंने कहा, "आपका बहुत समय ले लिया, अब जाइए।"और विदा कर दिया।

और उस दिन के बाद, अनायास, घर-वापसी का मेरा रास्ता ही बदल गया।

हाँ, घर पहुँच जाने के बाद मुझमें यह बेचैनी जरूर जाग जाती है कि वह बूढ़ा उधर से गुजरते हर साइकिल-सवार में मुझे तलाशता होगा... कि मैं किस डर से उसकी उम्मीद को तोड़ रहा हूँ... कि कल से पल, दो पल उसके पास बैठकर आऊँगा, जरूर!

❖

शेर की कहानी

पिताजी कई दिन से नाराज थे। किस बात पर? नहीं मालूम। वह पिता ही क्या, जो नाराजगी की वजह बच्चों पर जाहिर हो जाने दे।

अम्मा से पूछा, तो बोलीं, "मुझे क्या मालूम! तू खुद ही पूछ ले।" खुद पूछना, मानो शेर के मुँह में हाथ डालने की हिमाकत करना। परिणामत: पूरे परिवार का काँपते-घिघियाते खड़े हो जाना दहाड़ती-गरजती उस मौत के आगे। कुछ न कह पाना। थरथराते रहना। मौन।

लेकिन एक आदत थी, जिसे वह नाराजगी के दौरान भी छोड़ते नहीं थे। सुबह-सुबह उठकर घूमने जाने से पहले, सो रहे हमारे माथे पर हल्के-से चुम्मी जरूर चिपकाते थे।

बस, यहीं से निकला समाधान। मैंने दीदी को समझाया, दीदी ने अम्मा को। और अगली सुबह जैसे ही पिताजी चुम्मी चिपकाने को मुझ पर झुके, मैं हँसते हुए उनकी गरदन में लटक गया। पिताजी एकदम-से हकबका गये। थोड़ा सँभलते, उससे पहले ही हँसती हुई अम्मा उठ बैठीं। बोलीं, "झूठ-मूठ क्यों नाटक किए हो नाराज होने का?"

लेटे-लेटे ही दीदी ने ताली बजा डाली "नाराज नहीं हैं, असलियत में तो प्यार करते हैं पिताजी!"

और उस दिन के बाद गजब की दो बातें हुईं। पहली यह, कि शेर ने हमें अपने सीने से चिपकाकर सुलाना शुरू कर दिया। दूसरी यह, कि हम बच्चों पर दहाड़ना तो दूर, मरते दम तक वह कभी गुर्राया भी नहीं।

❖

समकालीन हिंदी लघुकथा के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर
एम-70, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मोबाइल : 8826499115
ई-मेल : 2611ableram@gmail.com

चक्रव्यूह के घेरे में

सुमन कुमारी

जब भी हम इस समाज में स्त्री की बात करते हैं तो स्त्री को लेकर मन में एक ही सवाल उठता है कि क्या हमारा समाज स्त्री के लिए सुरक्षित है? और ये सवाल हमें हर बार निरूत्तर कर देता है। हम आज 21वीं सदी में रह रहे हैं। लेकिन स्त्री को लेकर आज भी हमारी सोच वही रूढ़ीवादी ही है। इज्जत-प्रतिष्ठा, समाज के नाम पर स्त्रियों को आज भी घर से निकलने से रोका जाता है। अगर स्त्री अपने दायरे से आगे बढ़कर कुछ करना चाहे तो पुरुष सत्तावादी समाज उसे आगे बढ़ने नहीं देता है। एक तो समाज रूढ़ीवादी सोच से अपना पीछा नहीं छुड़ाता और ना ही स्त्रियों को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आवाज उठाने देता है। इन्हीं सब समस्याओं का नतीजा है- बलात्कार। बलात्कार समाज को खोखला करती जा रही है और समाज को खोखला करने में समाज, पुलिस, न्याय-व्यवस्था और कानून इन सभी का बराबरी का योगदान है। समाज, पुलिस, न्याय-व्यवस्था और कानून इन सब के अलावा घर भी एक ऐसी जगह है जहाँ किसी ना किसी रूप में बलात्कार जैसी भयानक अपराध की नींव रखी जाती है। कभी लड़का-लड़की में भेद करके, कभी इज्जत-प्रतिष्ठा के नाम पर घर में लड़कियों पर हो रहे दुर्व्यहार को छुपाकर, लड़कियों को हद में रहना सीखा कर और लड़कों को बिना हद के मनमानी करने को बढ़ावा देकर नींव रखी जाती है। काश कि घर से ही नींव समान रूप से रखी जाए, लड़कियों को बचपन से ही मजबूत रहने और गलत बात पर आवाज उठाने की सीख दी जाए ताकि लड़कियाँ कम से कम इज्जत-प्रतिष्ठा के नाम पर चुप रहकर खुद को अबला नारी ना बनने दे।

हमारा समाज लड़का-लड़की को दो अलग-अलग तराजूओं में तोलता है। अगर समाज जितना ज्ञान-उपदेश लड़कियों को सीखाता है उतना ही ज्ञान-उपदेश लड़कों को सिखाए तो बलात्कार जैसे घिनौने अपराध में काफी हद तक गिरावट आ जाएगी। 'चक्रव्यूह' पुस्तक में इस मुद्दे को गंभीरता से व्याख्यायित किया गया है। 'चक्रव्यूह' पुस्तक की लेखिका 'इन्दु वीरेन्द्रा' की है, जो अपनी पुस्तक में समाज की सबसे बड़ी समस्या बलात्कार के दोषी घर, समाज और कानून की कई परतों को खोलती है।

पुस्तक	-	चक्रव्यूह
लेखिका	-	इन्दु वीरेन्द्रा
पृष्ठ	-	128
मूल्य	-	350 रुपये
प्रकाशक	-	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली

इस पुस्तक को लिखने का एकमात्र उद्देश्य "स्त्री के मनोबल को बढ़ाने में उसके प्रति समाज की संवदनाएँ जगाने में, न्याय की दीपशिखा जलाकर उसे राह दिखाने में सहायक सिद्ध हो।"

इस गंभीर समस्या को लेकर मन में कई सवाल उठते हैं कि कोई बलात्कार क्यों करता है, हमारे देश में लड़कियों की सुरक्षा इतनी लचीली क्यों है, लड़के और लड़कियों की स्वतंत्रता में फर्क क्यों है, बलात्कार झेल चुकी लड़की को समाज एक अपराधी के रूप में क्यों देखता है, बलात्कारी दोषी होने पर भी कानून से कैसे बच जाता है या फिर दोषी को सजा देने में कानून को सालों-साल का वक्त क्यों लग जाता है? इन सभी सवालों के जवाब हमें कभी नहीं मिलते हैं और न ही इन सवालों पर समाज और कानून विचार करता है। शायद इन सवालों पर विचार किया जाए तो बलात्कार की बढ़ती हुई संख्या में काफी हद तक गिरावट आ सकेगी।

हमारा समाज प्राचीन काल से ही स्त्री के अस्तित्व को दोहरा स्थान प्रदान करता आ रहा है "अहिल्या, सीता ये सब शक्ति, सामर्थ्य से भरपूर पुरुष की पत्नियाँ थीं। उनकी देह दूसरे पुरुषों के छल कपट युक्त आचरण से दूषित या लांछित हुईं तब भी वे ही दंडित हुईं।"

'चक्रव्यूह' पुस्तक इन सभी सवालों के जवाब ढूँढ़ने का भरसक प्रयास करती है। पुस्तक के दूसरे अध्याय 'नारी-अस्मिता पर प्रहार' में कहा है कि "सारी सामाजिक प्रताड़ना निर्दोष स्त्री के लिए ही है। सच्चरित्रता के ये मापदंड भी स्त्री के लिए ही हैं। पुरुषों को इसमें भी छूट दी गई है। ये ही दोहरे मापदंड पुरुषों को ऐसे कुकृत्य दोहराने की पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं।"

सदियों से जब स्त्रियों के साथ दोहरा मापदंड रहा है तब यही लगता है कि समय हमें अपने साथ तो बहुत आगे ले आया

लेकिन हमारी सोच सदियों पुरानी वहीं के वहीं है। रील से रीयल जिंदगी तक आज भी हर जगह स्त्री का ही शोषण दिखता। कहीं मानसिक रूप से तो कहीं शारीरिक रूप से। जाने-अनजाने स्त्री इस अपराध को इज्जत-प्रतिष्ठा के नाम पर झेलती आ रही है। जबकि इज्जत-प्रतिष्ठा के पैरामीटर को वही लोग तय करते हैं, जो इस अपराध को अंजाम देते हैं।

स्त्रियों के लिए कानून तो खूब बना लेकिन कानून को लागू शायद ही किया गया। कानून की धज्जियाँ उड़ाता पुस्तक के तीसरे अध्याय 'समाज' में लिखा—

"कलकत्ते में संभ्रांत वर्ग की स्त्रियों के साथ घटा रविंद्र सरोवर कांड।

तीन सौ आठ आदिवासी स्त्रियों के साथ बलात्कार।

चार सौ चार हरिजन स्त्रियाँ बलात्कार की शिकार।

रामाखंड में स्त्रियों को निर्वस्त्र घुमाकर शारीरिक यातनाएँ।

राजधानी का सुनीता कांड।

मउरानी का द्रौपदी कांड।

माया त्यागी और मथुरा कांड।

बमतला कांड और बिराटी कांड।

ननों के साथ बलात्कार।"

ये सभी घटनाएँ साबित करती हैं कि स्त्रियों पर हो रहे इस अत्याचार के लिए सभी कानून सिर्फ नाम के लिए बने हैं। हमारे देश की सबसे बड़ी कमजोरी यह भी है कि वो हमेशा अपराध होने का इंतजार करता है बल्कि कानून ऐसा हो कि लोग अपराध करने से पहले सौ बार सोचे और वो अपराध की सजा से ही इतना भयभीत हो कि अपराध करने के ख्याल से ही काँप जाए। भारत में बलात्कार को लेकर कुछ कानून तो बने हैं जो पुस्तक के छठे अध्याय 'कानून' में बताया गया है कि "भारतीय दंड विधान 376 के तहत बलात्कार की निम्नलिखित छह स्थितियों में दस साल की कठोर सजा का प्रावधान है।

1. स्त्री की इच्छा के बिना बलात्कार।
2. स्त्री की सहमति के बिना बलात्कार।
3. मौत का खौफ दिखाकर सहमति के साथ बलात्कार।
4. विश्वास में लेकर (झूठा पति) बलात्कार।
5. विक्षिप्त महिला के साथ बलात्कार।
6. सोलह साल से कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार।

इसके अलावा बारह वर्ष से कम उम्र की बच्ची के साथ बलात्कार के लिए आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है तथा पन्द्रह साल से कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार, चाहे वह उसका पति ही क्यों न हो, के लिए आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान है।" समाज में स्त्रियों को लेकर जो दोहरा मापदंड है, अगर इस दोहरे मापदंड को समाज से ही उखाड़ फेंक दिया जाए तो स्थिति काफी हद तक सुधरती हुई मिलेगी। स्त्रियों को समाज में बराबरी का दर्जा मिले, साथ ही स्त्रियों को अपनी सुरक्षा के हक में मजबूत कानून का साथ मिले।

'चक्रव्यूह' के आठवें (अंतिम अध्याय) में कुछ ऐसी बातों का उल्लेख हुआ है, जिसका पालन समाज को करना चाहिए। "सबसे ज्यादा जरूरी है पुरुषों में नैतिक संस्कारों के विकास करना, स्त्रियों के प्रति सम्मान भाव जागृत करना, जैसे सांस्कृतिक मूल्यों के पुर्नस्थापन समाज की प्रथम आवश्यकता है।"

कहा जाता है कि जिस बात को जितना छुपाया या दबाया जाता है, सामने वाला उसी बात को ज्यादा करने को लालायित है। तब ही चाहिए कि "आज माँ-बाप या शिक्षकों को अपने बच्चों या छात्र-छात्राओं की यौन-संबंधी जिज्ञासाओं को टालने या दबाने की बजाय उन्हें इस विषय पर सही और विज्ञानसम्मत जानकारी देनी चाहिए, जिससे वे बेहतर जी सके।"

इस पूरी पुस्तक में जहाँ बलात्कार अपराध के हर पहलू को विस्तार रूप से रखने की पूरी कोशिश की गई है वहीं इस अपराध की नींव पर भी विचारणीय तथ्य को सामने रखा गया है। बलात्कार जैसे अपराध पर हमें आए दिन किसी न किसी पत्र-पत्रिकाओं में कोई ना कोई लेख पढ़ने को मिल ही जाता है। लेकिन कोई भी लेख बलात्कार के प्रत्येक पहलू पर बारीकी से अपनी बात नहीं रख पाता है। 'इन्दु वीरेन्द्रा' की पुस्तक 'चक्रव्यूह' में बलात्कार के चक्रव्यूह की परत को एक-एक करके खोला गया है और इसके समस्या-समाधान तथा नींव पर गहराई से बात की है।

'निर्भया' से 'निशा' तक का सफर देखने में जरूर बहुत लंबा है लेकिन दोनों का अंजाम सदियों पुराना है। ये पुस्तक पाठकों को कुछ घड़ी के लिए झकझोर देगी। कहा जा सकता है कि पाठकों को सोचने पर मजबूर करने में ये पुस्तक सफल रही है।

❖

मकान नं. 246, गली नं. 9, ब्लाक-एफ, मोलड़बंद
बदरपुर, नई दिल्ली-110044, मोबाइल : 9968362721
ई-मेल : aashisumankumari@gmail.com

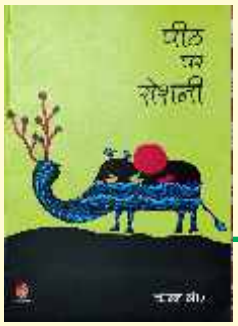

पीठ पर रोशनी : जनपक्षधरता और प्रेम को अभिव्यक्त करती कविताएँ

डॉ. नीलोत्पल रमेश

'पीठ पर रोशनी' नीरज नीर का दूसरा कविता-संग्रह है जो हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। इससे पहले उनका एक कविता-संग्रह 'जंगल में पागल हाथी और ढ़ोल' प्रकाशित होकर चर्चित हो चुका है। वैसे नीरज नीर का एक कहानी संग्रह 'ढुकनी एवं अन्य कहानियाँ' भी प्रकाशित होकर अभी-अभी आया है।

कवि-कथाकार नीरज नीर की कविताएँ अपनी अनूठी काव्य शैली, नवीन बिंब योजना और भाषा की सहजता के कारण पाठकों के बीच ज्यादा लोकप्रिय है। ये वैसे कवि हैं जो अपनी स्पष्टवादिता के लिए जाने जाते हैं। यानी इन्हें झूठ को झूठ और सच को सच कहने में तनिक भी देर नहीं लगती है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में वर्तमान समय की झनक महसूस की जा सकती है। इनकी कविताओं का मुख्य स्वर एक तरफ जनपक्षधरता है तो दूसरी तरफ प्रेम की गहन अनुभूति भी है।

'पीठ पर रोशनी' में नीरज नीर की 66 कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ साहित्य की विभिन्न उत्कृष्ट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इन कविताओं के माध्यम से कवि नीरज नीर ने समसामयिक परिवेश को अभिव्यक्त करने की धारदार कोशिश की है। यह परिवेश कवि के आसपास का भी है और देश की वर्तमान परिस्थितियों का भी है, जो कवि को लिखने के लिए बाध्य करते हैं। कवि नीरज नीर ने अपनी कविताओं के बारे में अपनी बात में लिखा है-"मेरी कविताएँ मेरे नितांत निजी अनुभवों, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है, जो व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होने का प्रयत्न करती हैं, कुछ सफल होती हैं, कुछ असफल...सिर्फ अपने लिखे से पढ़ने वाले को

पुस्तक	-	पीठ पर रोशनी : कविता-संग्रह
कवि	-	नीरज नीर
वर्ष	-	2020 ई.
पृष्ठ	-	152
मूल्य	-	200 रुपये
प्रकाशक	-	प्रलेक प्रकाशन, मुंबई-401303

चमत्कृत करना, बिम्बों का ऐसा जाल बुनना, जिसमें कविता का अभिप्राय ही गुम जाए, ऐसी मेरी कोई मंशा नहीं है...मेरे लिए मेरी कविताएँ उदासियों के अँधेरे घेरे से बाहर, उजाले में निकलने की जीवंत कोशिश है।" बात स्पष्ट है कि कवि पाठकों को कविताओं से चमत्कृत करने की कोशिश करने के बजाय अपनी भाषा की सहजता से मोहित करता है। कवि की भाषा सहज, सरल और हृदयग्राह्य है, जो पाठकों को कविताओं के साथ जुड़ने में थोड़ी भी रुकावट नहीं डालती यानी पाठक कविताओं के अर्थ को समझने में परेशानी अनुभव नहीं करता है।

'पीठ पर रोशनी' शीर्षक नामित कविता से ही अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा। इस कविता के माध्यम से कवि नीरज नीर ने देश की असंतुलित प्रगति की ओर इशारा किया है। पूरबिया लोगों की पीड़ा, खासकर झारखंड के लोगों का दु:ख एवं विकास की दौड़ में उनके पीछे रहे जाने का दर्द बड़े ही मर्मांतक तरीके से इस कविता में व्यक्त होता है। कवि कहता है कि -

"हमारे ही कंधे पर धरा है/विकास का जुआ/हम ढो रहे हैं, इसका भार/सलीब की तरह/और चल रहे हैं सामने की ओर मुँह करके/नजरें झुकाए/और पीछे छूटता जा रहा है/हमारे अपने विकास का सपना/मिट्टी में गायब होते/लीक की तरह..."

जिस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में अथक एवं सतत श्रम करने के बाद भी एक मजदूर बदहाली एवं गरीबी को झेलने के लिए अभिशप्त होता है, ठीक उसी तरह भारत में जिस तरह से विकास हुआ है, उसमें पूरबिया लोग अपने परिश्रम एवं हुनर के बाद भी छोटे स्टेशनों पर खड़े तेजी से भागते विकास की राजधानी एक्सप्रेस को बस देखते रहने के लिए विवश है। 'विकास का भार सलीब की तरह ढोना' अपने आप में गहरे भाव को अभिव्यंजित करता है।

'विस्थापन' कविता के माध्यम से कवि ने प्रगति के नाम पर लोगों को विस्थापित करने की भयावहता को वर्णित किया है। कहा जाता है कि तुम्हें विस्थापित करके यहाँ बिजली घर बनाया जाएगा, जिसमें तुम्हें नौकरी दी जाएगी लेकिन इसके बाद की भयावह स्थिति की ओर कवि ने ध्यान दिलाया है कि खेत फसल

के लायक नहीं रह गए हैं, उनकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो गई है।

"धान के खेतों में/पसरी हुई है/कोयले की छाई/दावा है चारों तरफ/बिजली की चमकदार रोशनी/फैलाने का,/ बनाया जा रहा है बिजलीघर/पर उसके जीवन में फैल रहा है अंधेरा..."

'बाजार' कविता के माध्यम से कवि ने समाज पर बाजारवाद के बढ़ते दुष्प्रभाव की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। बाजार जिनके कंधों पर चढ़कर हमारे घरों में अपनी पहुँच बना रहा है, वे ही मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित हैं। बाजारवाद की पहुँच हमारे घरों तक हो गयी है। इस बात को कवि ने बहुत ही सहजता से इस कविता में प्रस्तुत किया है। इसे इस प्रकार देखा जाए-

"बाजार ने पैदा की है/नई नस्ल/जो स्वयं बाजार से दूर रहकर/बाजार को पहुँचा रहा है/हमारे घरों के अंदर/पसीने से लथपथ।"

'प्रवास से वापसी' कविता के माध्यम से कवि नीरज नीर ने कोरोना महामारी के दौरान प्रवासी मजदूरों के पलायन की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। ये मजदूर अपने गाँव, घर को छोड़कर रोजी-रोजगार के लिए प्रवास में गए थे लेकिन वैश्विक महामारी कोरोना ने इनका रोजी-रोजगार छिन लिया। विवश होकर लौटना पड़ रहा है फिर वहीं, जहाँ से वे गए थे। इन्हें भरोसा है अपने लोगों पर कि गाहे-बगाहे ये उनका साथ जरूर देंगे। कवि ने लिखा है कि-

"वे वापस आना चाहते हैं,/उसी घर में /जहाँ घर जैसा घर नहीं है/विवशता है, लाचारी है/वही भूख, वही बेरोजगारी है/जहाँ बूढ़े बाप के लिए दवाई नहीं है/जहाँ खेतों से कमाई नहीं है/वे जानते हैं, उनका स्वागत नहीं है/गाँव की गलियाँ क्लांत हैं/फिर भी साग-घास खोंट कर खाने के दृष्टांत हैं,/चार काँधों का भरोसा है..."

'कौआ और कान' कविता के माध्यम से कवि ने 'कौआ कान लेकर भागा' लोकोक्ति को वर्तमान समय में चरितार्थ होते दिखाया है। आज एक नई रीति विकसित होती जा रही है कि लोग सोशल मीडिया पर किसी के द्वारा फैलाए गए झूठ को ही सच मान लेते हैं एवं उसके पीछे लग जाते हैं। वे उस खबर की सत्यता को परखना नहीं चाहते हैं। कवि कहता है कि-

"तर्क, बुद्धि, विवेक को अंगूठा दिखाते हुए/दौड़ने में कोई पीछे नहीं छूटना चाहता है,/जो नहीं दौड़ रहे/वे कम-से-कम दौड़ते हुए दिखना चाहते हैं।"

'पीठ पर रोशनी' की कविताओं को नीरज नीर ने पाँच खंडों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है, जिनमें पाँच विभिन्न तरह के विषयों/विमर्शों की कविताओं को संकलित किया गया है। आग की कविताएँ : जनपक्षधरता की कविताएँ हैं, इसमें आम आदमी के जीवन की पीड़ा, उनके संघर्ष एवं प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हुई है। पानी की कविताओं में प्रेम विषयक कविताएँ हैं। जिस तरह पानी निर्मल होता है एवं जिधर ढलान मिले उधर ही बह चलता है लेकिन पहाड़ों, चट्टानों से टकराने से भी पीछे नहीं हटता उसी तरह का स्वभाव प्रेम का भी तो होता है। इस तरह से देखें तो प्रेम कविताओं को पानी की कविता शीर्षक में रखना अत्यंत अर्थपूर्ण है। संग्रह में स्त्री विमर्श की भी अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं, जिन्हें वायु की कविताएँ शीर्षक में रखा गया है। सच में स्त्री वायु की तरह ही तो होती है, जिनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्त्री नेपथ्य में रहकर भी जीवन के लिए उसी तरह आवश्यक होती हैं, जैसे कि हवा। कुछ कविताएँ अध्यात्म विषयक भी हैं, जिन्हें "आकाश की कविताएँ" खंड में रखा गया है। अध्यात्म के लिए आकाश से बेहतर निरूपण भला और क्या हो सकता था? इसी तरह क्षितिज खंड की कविताओं में वैसी कविताएँ हैं जो उपरोक्त किसी विषय से जुड़ी नहीं है, पर सत्य का बेलाग बयान करती है। जैसे 'हत्यारे' शीर्षक वाली इस कविता को देखें-

"कुशल हत्यारे/नहीं छोड़ते हैं/हत्या की कोई शिनाख्त../पीढ़ियों के अभ्यास से/उपजती है/ऐसी लयबद्ध सिद्धहस्तता/कि लोग हत्या को भूलकर/करने लगें/चर्चा/ हत्यारे की चतुराई और कला की..."

इस तरह से विभिन्न विषयों को संग्रह में अलग-अलग खंडों में प्रस्तुत करना पाठक के लिए अत्यंत रुचिकर है।

संग्रह की कविताएँ इतनी, सहज, सरल व प्रवाहमयी हैं कि पाठक इनके साथ भावात्मक रूप से तुरंत ही जुड़ जाते हैं और कविता के साथ हो जाते हैं। ये कविताएँ अत्यंत पठनीय हैं। वर्तमान समय की कविताओं का कोई भी मूल्यांकन इनकी कविताओं के बिना अधूरा है। पुस्तक की छपाई साफ-सुथरी है और प्रूफ की गलतियाँ नहीं हैं।

❖

पुराना शिव मंदिर, बुध बाजार, गिद्दी-ए
जिला-हजारीबाग, झारखंड-829108
मोबाइल : 09931117537, 08709791120
ईमेल : neelotpalramesh@gmail.com

आत्मनिर्भर भारत के लिए

— संजय कुमार मिश्र

आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने के लिए 'लोकल के लिए वोकल' होने का प्रधानमंत्री का आह्वान स्वाबलंबी भारत के लिए महात्मा गाँधी के सपनों का ही विस्तारित रूप है जिसे आज के समय एवं दुनिया के अनुरूप ढाला गया है। इस आह्वान में एकतरफ जहाँ अपने देशी और स्थानीय उत्पादों का विश्वस्तरीय गुणवत्तापरक निर्माण, ग्रामीण किसानों, हस्तशिल्प कामगारों, बुनकरों आदि का ग्रामीण स्तर पर ही रोजगार निर्माण तथा वितरण एवं बाजार की बुनियादी व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास है। इस आह्वान में जरूरी विदेशी उत्पादों पर प्रतिबंध नहीं है बल्कि गैरजरूरी और विस्तारवादी सोच वाले देशों का मुकाबला आत्मनिर्भर एवं सशक्त भारत बनाकर करने का पूरजोर प्रयास है।

सदियों से आत्मनिर्भरता भारतीय संस्कृति की पहचान रही है। प्रकृति ने इस देश को उर्वर भूमि, प्रचूर वनस्पति, जीव-जंतु, मीठा जल, अनेक तरह के खनिज पदार्थ तथा सबसे बढ़कर सरल, उर्जावान एवं परिश्रमी मानव संसाधन प्रदान कर भारत को पूरी तरह से आत्मनिर्भर बनने में सहायता दी। सभ्यता के प्रारंभ से ही हमारे देश से सुदूर समुद्र पार विदेशों तक जहाजों के माध्यम से व्यापार के अनेक प्रमाण मिलते हैं। यहाँ की समृद्धि और शिल्पकला को देखकर विदेशी लुटेरे एवं आक्रांता देश पर न सिर्फ बार-बार आक्रमण करते रहे बल्कि यहीं डेरा-डंडा जमाकर शासन भी करने लगे। जो यहाँ की अद्भूत सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में सदा के लिए रच बस गए उन्होंने इसमें कुछ जोड़ा भी परंतु जो यहाँ सिर्फ साम्राज्य विस्तार के लिए आए उनसे न केवल हमारी सभ्यता, संस्कृति और संपत्ति नष्टप्राय हुई बल्कि हमारा देश भी निर्धन होता चला गया।

हमारी प्रगति का मूलाधार गाँव रहा है जो अनादिकाल से आत्मनिर्भर थे। हर गाँवों में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के आधार पर कुटीर उद्योगों का संजाल था। हमारे देश से इन कुटीर उद्योंगों द्वारा निर्मित विविध हस्तशिल्प तथा वस्तुओं का देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भारी मात्रा में विदेशों में भी निर्यात होता रहा है। इस तरह ग्रामीण कुटीर उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था की धुरी थी। शेष विश्व जिस समय अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ था उस समय भारतीय कुटीर उद्योगों के अनेक उत्पाद जैसे मलमल, रेशमी वस्त्र, हाथी दाँत की वस्तुएँ, जरी का काम, सोने-चाँदी का काम आदि विदेशों में न सिर्फ लोकप्रिय था बल्कि उनसे प्रचुर मात्रा में देश में धन का आगमन भी होता था।

अंग्रेज गवर्नर जनरल सर चार्ल्स मेटकाफ ने जो ब्योरा अपने देश ब्रिटेन को भेजा था उसमें यह लिखा है-"भारत के ग्राम समुदाय एक प्रकार के छोटे-छोटे गणराज्य हैं, जो अपने लिए आवश्यक सभी सामग्री की व्यवस्था कर लेते हैं तथा किसी प्रकार के बाहरी संपर्क से मुक्त हैं। लगता है कि इनके अधिकारों और प्रबंधों पर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

अंग्रेज अधिकारी के कहे ये शब्द बिल्कुल सही थे। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में एक गाँव के भीतर ही तकरीबन हर तरह की चीजें और पेशे के लोग मौजूद थे। पूरी व्यवस्था कुछ इस तरह से बुनी हुई थी कि सभी जरूरतें कुछ किलोमीटर के दायरे में ही पूरी हो जाया करती थीं। कालान्तर में देश की पराधीनता अंग्रेजों की विद्वेषपूर्ण नीतियों और इंग्लैंड में अठारहवीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रांति ने देश की लघु एवं कुटीर उद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

महात्मा गाँधी चाहते थे कि प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के मामले में स्वावलंबी हो तभी वहाँ सच्चा ग्राम-स्वराज्य कायम हो सकता है। अब ग्लोबलाइजेशन

के दुष्परिणामों के रूप में पनपे कोरोना वायरस के बाद शायद गाँवों को कुछ इसी आधार पर विकसित किया जाना जरूरी हो गया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अब प्राचीन शिल्प के संग नई तकनीक से जोड़कर गाँवों की आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए संकल्पित दिख रहे हैं। प्रधानमंत्री ने कहा है कि कोरोना संकट ने अपना सबसे बड़ा संदेश, अपना सबसे बड़ा सबक हमें दिया है कि हमें आत्मनिर्भर बनना पड़ेगा। गाँव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर बनें, जिला अपने स्तर पर, राज्य अपने स्तर पर, और इसी तरह पूरा देश आत्मनिर्भर बने।

आजादी के बाद सत्ता संभालने वाली सरकारों ने पश्चिमी सोच व मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर मिश्रित आर्थिक व्यवस्था को अपनाया जिसके कारण गरीबी व सामाजिक असमानाताएँ, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी आदि समस्याएँ निरंतर बढ़ती गई। वर्ष 1990 से हमारी नीति वैश्वीकरण की ओर बढ़ी। डब्ल्यू.टी.ओ. में हस्ताक्षर कर अनायास भारतीय बाजार को पूरी दुनिया के लिए खोल दिया गया। देश की कमजोर अर्थव्यवस्था एवं उद्योगों की कमजोर बुनियाद के कारण हमारा बाजार विदेशी सामानों से भर गया। चीन जैसे देश की घटिया नकली सामानों से अब हमारा लघु एवं कुटीर उद्योग बर्बादी के कागार पर आ गया। हमारी मूलभूत समस्याएँ गरीबी, बेरोजगारी और असमानता विकराल रूप लेती गई।

2014 में जब नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार बनी तो उन्होंने बुनियादी ग्रामीण कुटीर उद्योग से लेकर रक्षा एवं अंतरिक्ष तक के क्षेत्र की बुनियाद को मजबूत करने तथा स्वदेशी व स्वाबलंबन के लिए अनेक कदम उठाये गए, जिसकी झलक हमें उनके द्वारा लागू किए गए विभिन्न योजनाओं में मिलती है। इन योजनाओं में प्रमुख रूप से शामिल हैं-मेक इन इंडिया, प्रधानमंत्री जन-धन योजना, सांसद आदर्श ग्राम योजना, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, स्वच्छ भारत अभियान, फिट इंडिया मिशन, मुद्रा बैंक योजना, स्टैंड अप इंडिया स्कीम, आयुष्मान भारत योजना तथा किसान सम्मान निधि योजना आदि। इसके अलावा भी अनेक प्रयास हैं जैसे योग के माध्यम से भारत को शारीरिक तथा आध्यात्मिक रूप से अपनी अलग पहचान दुनिया के सामने रखना हो या अंतरिक्ष, रक्षा और नवीकरणीय सौर उर्जा के क्षेत्र में विज्ञान के माध्यम से आत्मनिर्भरता की बात हो।

इसी बीच कोरोना महामारी का जनवरी 2020 में आगमन हुआ। अर्थव्यवस्था पटरी पर आ ही रही थी कि कारोना महामारी के कारण यह स्थिति और बिगड़ गई। देश को इस महामारी से बचाने के लिए देश में संपूर्ण लॉकडाउन लगाना पड़ा जिसके कारण सभी आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलापों पर रोक लग गई। सबसे बड़ी चोट गरीब मजदूरों पर हुई। लघु उद्योग बंद हो गए, पटरी पर बैठे रोजी रोटी चलाने वालों का कार्य बंद हो गया। महानगरों से मजदूरों का पलायन गाँवों की ओर अकस्मात होने लगी। इसी बीच चीन के साथ युद्ध होने की आशंकाएँ भी उत्पन्न हुईं। देश के पूर्वी तथा पश्चिमी तटों पर चक्रवात ने भी काफी नुकसान पहुँचाया।

चीन अपने देश से प्रारंभ हुए कोरोना वायरस से पूरी दुनिया में फैली महामारी को अपने विस्तारवादी नीति को आगे बढ़ाने के लिए एक मौके के रूप में देखा। वह वायरस से बचाव के विभिन्न उत्पादों जैसे मास्क, टेस्टिंग किट, पीपीई, और वैंटिलेटर आदि उत्पादों को निर्यात कर इस महामारी की मार से भौंचक दुनिया की आपात स्थिति का न केवल फायदा उठा रहा था बल्कि अपनी नकली उत्पादों से दुनिया को पाट रहा था। इस महामारी के पहले से ही चीन अपने सस्ते और घटिया उत्पादों को जोर-शोर से विदेशों में निर्यात कर तमाम देशों की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचा ही रहा था, इस आपात स्थिति का फायदा उठाकर उसने अनेक देशों के प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों में निवेश कर उसे अपने कब्जे में करने की साजिश भी रचा। यहाँ तक कि भारत के अनेक निजी बैंकों एवं व्यापारिक संस्थानों में विविध माध्यमों से उसे कब्जे में करने के लिए निवेश बढ़ाने लगा। ध्यातव्य है कि पहले से ही चीन हमारे दीवाली के दीप, पटाखों और लक्ष्मी-गणेश से लेकर हर तरह के हस्तशिल्प के कुटीर एवं लघु उद्योगों के सस्ती नकली उत्पादों से हमारे बाजारों पर कब्जा जमा लिया था। इतना ही नहीं उसने इस आपदा के समय में हमारे देश की सीमा क्षेत्र लद्दाख पर अतिक्रमण का घृणीत कुचेष्टा किया।

इन सब का संयुक्त प्रभाव यह हुआ कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आपदा को अवसर में बदलने के हेतु अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए भारत सरकार ने लॉकडाउन के साथ ही साथ कई आर्थिक उपायों व सुधारों की घोषणा की। मई में 'आत्मनिर्भर भारत' पैकेज की घोषणा के साथ 'लोकल के लिए वोकल' होने का आह्वान किया।

यह सही है कि आज का भारत आजादी के ठीक बाद का भारत नहीं है। कोई भी प्रधानमंत्री लाख कोशिशों के बावजूद भी ग्लोबल दुनिया से अलग-थलग करके अब भारत को नहीं रख सकता। इसे पूरी दुनिया के साथ कदम ताल मिलाकर चलना ही पड़ेगा। परंतु इसके लिए सर्वप्रथम अपने पाँव को मजबूत करना पड़ेगा नहीं तो बाहर से बह कर आए तेज तूफान के सामने हम

टिक नहीं पाएँगे। इसी प्रयास में आत्मनिर्भर भारत के लिए 'वोकल फोर लोकल' अभियान को दुनिया के संदर्भ में सकारात्मक अभियान के रूप में लेना चाहिए जिसे प्रधानमंत्री मोदी के शब्दों में कहें तो "हमें दुनिया से न तो आँखे झुकाकर, न आँखें उठाकर, बल्कि आँखों में आँखें डालकर बात करनी है।"

12 मई, 2020 को राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में मोदी ने साफ-साफ बताया, "आत्मनिर्भर भारत की यह भव्य इमारत पाँच खंभों पर खड़ी होगी। पहला खंभा है-अर्थव्यवस्था, जिसमें हम धीमे-धीमे बदलाव के बजाए बहुत बड़े परिवर्तन की लंबी छलांग लगाना पक्का करेंगे। दूसरा है आधुनिक भारत के अनुरूप बुनियादी ढांचे का निर्माण करना। तीसरा होगा टेक्नोलॉजी से संचालित प्रणालियों पर जोर, जो 21वीं सदी के सपनों को साकार करे, न कि पिछली सदी के। चौथा है ऊर्जा से भरी हमारी आबादी, जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के नाते आत्मनिर्भर भारत के लिए हमारी ऊर्जा का स्रोत होगी। पाँचवा खंभा हमारी बढ़ती आर्थिक मांग और उसे पूरा करने पर टिका होगा, हमें अपनी आपूर्ति श्रृंखला को ताकतवर बनाना होगा।" उन्होंने इशारा किया कि नई चुनौती से निबटने के लिए अंग्रेजी के एल अक्षर से शुरू होने वाले चार विषयों-लैंड, लेबर, लिक्विडिटी और लॉ में बड़े बदलाव लाए जाएंगे।

प्रधानमंत्री ने 20 लाख करोड़ रुपए के वित्तीय पैकेज का भी ऐलान किया जो आत्मनिर्भर भारत अभियान को दिशा देगा। केंद्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण प्रेस वार्ताओं में रक्षा, अंतरिक्ष, एटमी ऊर्जा, विमानन, निर्माण, रेलवे, कृषि, खनन, बिजली, रियल एस्टेट और लघु एवं कुटीर उद्योगों (एमएसएमई) सरीखे प्रमुख क्षेत्रों में बड़े सुधारों, रियायतों का ऐलान किया।

कोरोना संकट ने दिखा दिया है कि हमें जरूरतें पूरी करने को एक खास भूगोल पर निर्भरता से बचने की जरूरत है। जब कोविड-19 ने टेस्टिंग किट और पीपीई सरीखी बुनियादी चीजों के लिए चीन पर भारत की निर्भरता को उजागर कर दिया तो मोदी ने उसी समय चीन द्वारा सीमा पर जारी तनातनी का इस्तेमाल प्रधानमंत्री ने आपदा को अवसर में बदलने के लिए किया। देश को महीने भर के अंतराल में न केवल टेस्टिंग किट, पीपीई किट और वेंटिलेटर आदि में देश को आत्मनिर्भर किया बल्कि विदेशों में भी निर्यात किया जाने लगा। देश की जरूरी सूचनाओं और जासूसी करने वाले लोकप्रिय चीनी ऐप्स पर पाबंदी लगाकर सरकार ने जता दिया कि इसके जगह स्वदेशी ऐप्स ले रहे हैं।

'वोकल फॉर लोकल' या स्थानीय के लिए मुखर होने के उनके उद्घोष में स्वदेशी की गूंज थी, जिसने उन्हें देश का लाड़ला बना दिया। सरकार ने कई प्रमुख क्षेत्रों में घरेलू उत्पादन और इसके जरिए आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए बहुत-सी योजनाओं और उपायों की शुरुआत कर दी है। रक्षा क्षेत्र, जहाँ भारत दुनिया में उपकरणों का दूसरा सबसे बड़ा आयातक देश है, में रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने हाल ही 3.5 लाख करोड़ रुपए की 101 आयातित चीजों को अगले पाँच साल में उनके देसी विकल्पों से बदलने का ऐलान किया।

संचार क्षेत्र की दोनों बड़ी कंपनियों एपल और फॉक्सकॉन ने भारत में उत्पादन संयंत्र लगाने के मंसूबों का ऐलान किया है। दवाई उद्योग (फार्मास्युटिकल्स), जहाँ भारत एपीआइ (एक्टिव फार्मास्युटिकल इंग्रेडिएंट) और चिकित्सा उपकरणों की अपनी 80 फीसद जरूरतों के लिए चीन पर निर्भर है, में सरकार विशेष मेडटेक औद्योगिक पार्कों की स्थापना के लिए राज्य सरकारों को प्रोत्साहित कर रही है। ऐसे हर पार्क के लिए 1,000 करोड़ रुपए की अनुदान दे रही है।

आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने के लिए 'लोकल के लिए वोकल' होने का प्रधानमंत्री का आह्वान स्वाबलंबी भारत के लिए महात्मा गाँधी के सपनों का ही विस्तारित रूप है जिसे आज के समय एवं दुनिया के अनुरूप ढाला गया है। इस आह्वान में एकतरफ जहाँ अपने देशी और स्थानीय उत्पादों का विश्वस्तरीय गुणवत्तापरक निर्माण, ग्रामीण किसानों, हस्तशिल्प कामगारों, बुनकरों आदि का ग्रामीण स्तर पर ही रोजगार निर्माण तथा वितरण एवं बाजार की बुनियादी व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास है। इस आह्वान में जरूरी विदेशी उत्पादों पर प्रतिबंध नहीं है बल्कि गैरजरूरी और विस्तारवादी सोच वाले देशों का मुकाबला आत्मनिर्भर एवं सशक्त भारत बनाकर करने का पूरजोर प्रयास है। इसकी शानदार बानगी कुछ महीनों में निर्मित कोरोना का अपना स्वदेशी 'भारत बायोटेक' की वैक्सिन 'कोवैक्सिन' टीके में देखा जा सकता है जो भारत में ही उत्पादित 'कोविशील्ड' के साथ टीकाकरण के लिए तैयार है। इन टीकों की माँग अपने पड़ोसी देशों के साथ-साथ पूरी दुनिया से जोरदार ढंग से आ रही है।

❖

सामाजिक लेखक
109/ए कामना, सैक्टर-5, वैशाली, पिन-201010, गाजियाबाद
मोबाइल : 9971189229 ई-मेल : snjmishra90@gmail.com

थायरायड : अभ्यास एवं औषधि

— विराज आर्य

हलासन

विधि

1. पीठ के बल लेट जायें, श्वास अंदर भरते हुए दोनों हाथों की मदद से धीरे-धीरे से दोनों पैरों को 90 डिग्री, पर उठाएं।
2. अब श्वास निकालते हुए दोनों पैरों को सिर के पीछे जमीन पर रखें। दोनों हाथों को अब भूमि पर सीधा रख लें। श्वास सामान्य रहेगा।
3. वापस आते समय जिस क्रम में ऊपर आये थे उसी क्रम में वापस जाएं।

श्वास तकनीक

इस आसन में श्वास सामान्य रहेगा।
इस आसन को 2 से 3 बार दोहराएं।

लाभ

1. मेरूदण्ड (रीढ़) को स्वस्थ एवं लचीला बनाता है।
2. थायरायड ग्रन्थि को चुस्त करके मोटापा एवं दुर्बलता आदि को दूर करता है।
3. अग्न्याशय और मधुमेह को दूर करता है।
4. स्त्री रोगों में लाभकारी है।

सावधानी

1. उच्च रक्तचाप, सर्वाइकल एवं मेरूदंड के रोगी इस आसन को न करें।
2. स्लिप डिस्क तथा कमर में टी.बी. होने पर भी यह आसन वर्जित है।

सर्वांगासन

विधि

1. पीठ के बल सीधा लेट जाएं। हाथों को दोनों ओर शरीर से सटाकर हथेलियाँ जमीन की ओर करके रखें।
2. श्वास अन्दर भरकर दोनों पैरों को सावधानी पूर्वक 90 डिग्री तक उठायें।
3. दोनों हाथों से कमर को सहारा दें कोहनियाँ जमीन पर टिकी रहेंगी।
4. 20 सेकण्ड से 40 सेकण्ड रोकें फिर धीरे-धीरे शवासन की स्थिति में आएं।

श्वास तकनीक

इस आसन में श्वास अन्दर रोकना है।
इस आसन को 2 से 3 बार करें।

लाभ

1. थायराइड ग्रन्थि को सक्रिय बनाता है, जिससे थायराइड की समस्या से छुटकारा मिलता है।
2. जो शीर्षासन नहीं कर सकते वो सर्वांगासन से शीर्षासन के लाभ प्राप्त कर सकते हैं।
3. यह आसन कद वृद्धि में उपयोगी है।

युवा योग शिक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त।
मोबाइल : 9625527236

उषा उपाध्याय की कविताएँ

स्पंद

सात समंदर पार जाने के लिए
पंख फड़फड़ा रहे
ओ बावरे पवन!
जरा रुक जा,
बंद कर दे कुछ देर
तेरी दिगन्त व्यापी पांखों की फड़फड़ाहट
और फिर सुन
धरती भेद कर
सिर उठा रहे
बीजांकुर का स्पंद...

धरावस्त्र

दिगंत तक बिछे हुए
और तप्त सूरज की
कंटीली बाड़ में फँस कर फटे हुए
विशाल मटमैले धरावस्त्र को
दर्जी की सुई से भी
अधिक नुकीली ऐसी
प्रथम वर्षा की जलधारा
कैसी मग्नता से
सी रही है!

पवन की रूपकथा

नहीं है हाथ में करवत
और न ही तो कुल्हाड़ी
पर फिर भी
ईशानी इन हवाओं में
कहाँ से आई होगी
ऐसी कातिल धार!

कोई रोको
रोको जरा!
पर्ण-मर्मर की पायल पहन कर
रुनझुन करती दौड़ जाती
और लहू में नृत्य की लय
जगा जाती
शरद की इस चंचल हवा को...

शहर की सड़कों पर
जहरीली नागिन की तरह
गुस्से से फुत्कार मार रही
इस ग्रीष्म की हवा को
वश में करने के लिए
वह देखो, आकाश सपेरा
झोली में से निकाल रहा है
मेघ की बाँसुरी!

चतुर्थी का चाँद

आक्षितिज फैले हुए
आसमानी करघे पर झुक कर
रुपहले उजास का मुलायम वस्त्र
बुनता
चाँद
गा रहा है
कबीर के दोहे।

सागर की लहर

सदियों पुरानी किसी रात में
चन्द्र के प्रगाढ़ आलिंगन से
टूटी हुई माला के
मोतियों को खोजती
सागर की लहर
फिर एक बार
लौट आई है
किनारे की रेत पर!

गुजरात की वरिष्ठ कवयित्री, आलोचक एवं अनुवादक
14, चौथा मजला, वंदेमातरम आर्केड, वंदेमातरम क्रॉस रोड
न्यू गोता, अहमदाबाद-382481 मोबाइल : 9426415887
ई-मेल : ushaupadhyay2004@yahoo.co.in

माधव कौशिक की ग़ज़लें

(1)

दादी-नानी के सब किस्से ख़त्म हुए
तितली जैसे नाजुक लम्हें ख़त्म हुए।

जाने कैसा सूरज निकला घाटी में
पेड़ हरे हैं लेकिन साये ख़त्म हुए।

चलते-चलते वक़्त ने कैसी करवट ली
गहरे से भी गहरे रिश्ते ख़त्म हुए।

कहाँ बैठ कर सुस्ताओगे, बंजारो
सूख गई सब झीलें, झरने ख़त्म हुए।

कैसे याद करेगा कोई गाँवों को
गीतों के मीठे गलियारे ख़त्म हुए।

छिप कर रहना कोई काम नहीं आया
पीछे चलने वाले पहले ख़त्म हुए।

इक दिन रहबर बोला पूरी मस्ती में
देखो सारे बाग़ी कैसे ख़त्म हुए।

कौन हिफाजत करता कच्ची कलियों की
गुलशन से जब तीखे काँटे ख़त्म हुए।

❖

(2)

दरवाज़े के पार खड़ा असमंजस में
कद से साया हुआ बड़ा असमंजस में।

जो भी खुद से अलग पड़ा असमंजस में
चौराहे के बीच अड़ा असमंजस में।

कुछ तस्वीरें फ्रेम से बाहर जंचती हैं
टूटेगी, गर उन्हें जड़ा असमंजस में।

वो दुनिया से लड़ कर कैसे जीतेगा
अपने से भी अगर लड़ा असमंजस में

खुशियाँ बौनी हो जाती हैं बँटने से
हो जाता है दर्द बड़ा असमंजस में।

शीश महल पर नारे फेंकूँ या पत्थर
सोच रहा हूँ खड़ा-खड़ा असमंजस में।

जिस दिन हाथ लगा कर देखा सपनों को
खंज़र जैसा प्यार गड़ा असमंजस में।

चलो करो मज़बूत इरादा चलने का
कैसे कटेगा कोस कड़ा असमंजस में।

❖

(3)

कहाँ पे शोख उजाला है आप कुछ भी कहें
शहर में घुप्प अंधेरा है आप कुछ भी कहें।

तुम्हारे कानों तक कोई ख़बर नहीं पहुँची
हमारी आँखों ने देखा है आप कुछ भी कहें।

नज़र बचाने से सच्चाईयाँ नहीं मिटती
खुदा सलीब पे लटका है आप कुछ भी कहें।

कोई हमारी ज़ुबां काट ले तो बात अलग
वरना खून उबलता है आप कुछ भी कहें।

खुशी है, अमन है, इंसानियत है लोगों में
ये झूठ, झूठ से ज़्यादा आप कुछ भी कहें।

❖

उपाध्यक्ष, साहित्य अकादमी, दिल्ली
3277, सेक्टर 45डी, चंडीगढ-160047
मोबाइल : 9888535393
ई-मेल : k.madhav9@gmail.com

विजय स्वर्णकार की ग़ज़लें

(1)

तुम्हीं जानो तलब क्या है, सबब क्या
चिराग़ों के लिए क्या शाम, शब क्या

निकल जाती है बाज़ी हाथ से जब
मुझे तब पूछता है वो कि अब क्या

सुबकता दिन मेरी आँखों से गुज़रा
न जाने रात ढाएगी ग़ज़ब क्या

मैं माँ से पूछता था बालपन में
तेरे जैसे नहीं होते हैं सब क्या

हिदायत उनकी है गूँगे भी सीखें
किसे कहना है, कैसे और कब, क्या

(2)

यही दुख है किनारों-सा बदन है
नहीं तो मन मेरा लहरों का वन है

ये सन्नाटों की आहें कोई समझे
इन्हीं में सबके अंतस का रुदन है

तुम्हें यह मन बड़ा करना पड़ेगा
पता है इश्क़ का क्या आयतन है?

हक़ीक़त में ये ख़ुद काला है लेकिन
नज़ारे के लिए नीला गगन है

ये रस्ते क्यों कहीं जाते नहीं हैं
न जाने किस ज़माने की थकन है

(3)

न झूले पर, न ही कोयल के पास बैठा है
कँटीले पेड़ पे सावन उदास बैठा है

न इश्क़ चन्द्रमुखी से इसे न पारो से
हमारे दिल में अजब देवदास बैठा है

ये किसने लूट लिये सब्ज़ पैरहन इनसे
हर इक पहाड़ यहाँ बेलिबास बैठा है

इस आग पर न अभी ख़ाक डाल पाओगी
नज़र जमाए धुआँ आसपास बैठा है

तुम्हारी बज़्म में रुस्वा हैं होशमंद सभी
वो ख़ुशनसीब है जो बदहवास बैठा है

(4)

कश्ती, कछार और किनारों को हार कर
सागर में आ गया हूँ मैं दरिया को पार कर

धरती पे और बोझ की गुंजाइशें कहाँ
हम क्या करेंगे चाँद-सितारे उतार कर

राह-ए-बहार में बिछी पलकें तो देखिये
पेड़ों ने रख दिये सभी पत्ते उतार कर

आँखें खुलीं तो आप ही आँसू निकल पड़े
आँधी चली गयी मेरा आँगन बुहार कर

अक्सर हुआ है छल ये मेरे साथ दोस्तों
खो जाये कोई भीड़ में जैसे पुकार कर

45, कादंबरी अपार्टमेंट्स, सेक्टर-9
रोहिणी, दिल्ली-110085 मोबाइल : 9958556141

डॉ. क्षमा पाण्डेय की कविताएँ

विश्व शांति

सरहदों पर गोलियाँ ही चल रहीं,
बम धमाके हो रहे नित नगर में।
खून के प्यासे हुए हैवान जो,
मच रहा मातम कुटिल नित डगर में॥

अणु तथा परमाणु के विज्ञान से
मानवी संहार होता विश्व में।
शांति की बातें हुईं अब निरर्थक,
क्रांतिकारी हम बनें इस राह में॥

मानवी-संवेदना ही मर रही,
जिंदगी बस चल रही बदहाल में।
शांति दिवसों की रही भरमार है,
भय, निराशा काल के आतंक में॥

बेटियों की अब नहीं पावन-सुरक्षा,
ये सजा है बेवजह कलिकाल में।
चीखतीं चिल्ला रहीं हैं बेटियाँ,
माँगतीं अधिकार अपना विश्व में॥

ईश यह भी तू जरा संज्ञान ले,
पापियों को फेंक दे तू नरक में।
कर रहे पापी कलंकित सबलता,
मच रही हैवानियत हर देश में॥

महामारी, भुखमरी सर्वत्र बिखरी,
मानवी अधिकार से वंचित जनों में।
शांति की बातें निरर्थक कब तलक?
पाठ चलता ही रहेगा विश्व में॥

विश्व शांति है, अहं पर है कहाँ?
दौड़ती हथियार की इस होड़ में।
भागती-मिटती रही यह विश्व से,
दृष्टिगोचर अब नहीं इस विश्व में॥

गौतमी संदेश गाँधी नीति को,
आत्ममय करते रहें यदि गान में।
तो सुरक्षित सृष्टिमय जीवन सदा,
शांति भी कायम रहेगी विश्व में॥

युद्ध यदि परिणाम होते शांति के,
युद्ध द्वय परिणाम देते शांति में।
धन तथा न राज्य देता शांति को,
शांति तो बस मानवी संवेदना में॥

❖

शब्दों की महिमा

अक्षर-अक्षर शब्द रचा है,
ज्यों भाषा संग भाव रमा।
स रे ग म सुरताल सजा है,
उर चाबुक से थाम समा॥

शब्द शब्द से वाक्य बना है,
वाक्यों से है गीत बना
गीतों की सुमधुर तानों से,
जीवन का संगीत बना॥

भाव-भंगिमा वाणी सबकुछ,
शब्दों पर निर्भर करती।
शब्दों को भी मिलती ताकत,
प्रति अक्षर-अक्षर गिनती॥

कविता गीत मनोहर दोहे,
सब कुछ तो शब्दों के संग।
शब्द बिना पूजा न सोहे,
शब्दों की गरिमा है मोहे॥

शब्दों से जिंदा हैं ध्वनियाँ,
ध्वनियों से संचालित दुनिया।
पशु, मानव जीवित ध्वनियों से,
पर, मानव शब्दों की दुनिया॥

शब्द ही अपने मित्र बनाए,
शब्द ही सबके शत्रु बनाए।
मधुर शब्द जो शांति दिलाए
कर्कशता तो युद्ध कराए॥

ॐ शब्द ज्यों परम् ब्रह्म है,
त्यों निनाद संग सत्य समा।
सत्य-असत्य का भेद बताये,
शब्द यहाँ चहुँ ओर रमा॥

गीता रामायण बाइबिल या,
ग्रंथ गुरू कुरान सभी।
शब्दों की महिमा से मंडित,
सम्मानित ये ग्रंथ सभी॥

❖

कंफर्ट गार्डन कॉलोनी, जानकी नगर
चूनाभट्टी, भोपाल-462016 (म.प्र.)
मोबाइल : 9826991191
ई-मेल : kp4222020@gmail.com

आरती सिंह 'एकता' की कविताएँ

अमरत्व का दीया

गंगा मैया की गोद
वो सरका रही हौले-हौले
माटी का दियला
रख, पाती के दोन,
टिमटिमाता, झूमता
लहरों संग मचल
चल पड़ा दियला,
मन्नतों भरी राह,
अमरत्व को पाने...
उसकी, मनोकामना
पूरी करने...
पलटकर कौतुक हो,
दियला, उसे देखता...
आँचर फैलाए...
होंठ कुछ बुदबुदाए
आँख मूँद वो
करती याचनाएँ...
माँग रही
लंबी अरदूआएँ...
पति, बच्चों के खातिर...
दियला शांत, गुमसुम हो
निहार रहा उसको
बीच मँझधार
पहुँच, सोचने लगा
अमरत्व का वरदान तो
ईश्वर ने स्त्रियों को ही दिया है...
आत्मा का, शाश्वत सत्य,
और उसका अस्तित्व,
ये ही तो हैं...।

❖

पुरुषार्थ

तुम इतने सरल
कैसे हो सकते हो?
मैंने तो हमेशा से तुम्हें
वहशी, दरिंदा, भूखा समझा...?
नहीं!
तुम उस तटस्थ पर्वत जैसे हो
या...ये कहूँ तो अतिश्योक्ति न होगी
कि तुम बरगद या चीड़ के उस
वृक्ष की तरह हो...
जो सूरज का उजाला
पहले खुद आत्मसात
करने के लिए ऊँचाइयों पर
तैनात रहता है
ताकि उस उजाले को
अपने अंदर भर
उर्जावान बन...
दिनभर अपनी
पनाह में बैठने वालों को
चैतन्य से उर्जीत कर सके...
या उस विशाल पर्वत की तरह
जो पंचतत्व का अप्रतिम माध्यम बन
उसकी क्रियाओं को कम या ज्यादा कर
जीवन में संतुलन भरता...?
कोई उसे समझ न पाया
या समझना नहीं चाहता...?
अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में भी वह
छाती फाड़ अपना दर्द नहीं कह पाता...
और न खुशियों को
प्रतिकृत कर पाता...
ये अक्स एक हद तक
कठोर सत्य है
और
खूबसूरत भी
सदैव निश्चल
और निस्वार्थ से भरपूर भी...!!

❖

नयनाभिराम

वो जब भी मिलते
रहते जानकर भी अंजान
चाहकर भी अनचाह
अपनी जिंदगी के
पारिजात को सहेजते हुए...
निहारते एक दूजे को,
मानो नदी के दो किनार
जो अलग होकर भी...
संग-संग, तय करते
जिंदगी का सफर
फासले होकर भी
जुड़े होते सतह पर।
वे निहारते एक दूजे की
सुन्दरता को,
अपनी प्रबुद्धता को,
अपनी महत्ता को
अन्तर्मन प्रसन्न होता,
खिल उठता हृदय
देख अपार सफलता को
मन ही मन देते आशीष
एक दूजे की पावनता को...।

❖

368, प्रथम तल, श्रीनगर, नरेन्द्र नगर
नागपुर-440015
मोबाइल : 9823223380
ई-मेल : singhartiekta@gmail.com

कोमल वर्मा की कविताएँ

हिंसा

आज दंगे में जो भी मरा था
उनके खून का रंग
न ही भगवा, न ही हरा था।
जिसने भी धर्म-जिहाद का नाम रटा था
उनके संप्रदाय का रंग
न ही भगवा था, न ही हरा था।
जिनमें अब भी क्रोध भरा था
उन आँखों का रंग
न ही भगवा, न ही हरा था।
लगता है इस शहर का हर एक शख्स डरा था
उनके चेहरे का रंग
न ही भगवा, न ही हरा था।
जिनकी आँखों से आँसू झरा था
उन आँसुओं का रंग
न ही भगवा, न ही हरा था
कौन था दोषी और कौन खरा था
अब तो सच और झूठ का रंग
न ही भगवा, न ही हरा था।

❖

परिवर्तन

बारिश की बूँदो, कुछ यूँ गिरो
परिवर्तन लाओ
फूट जाए घमंड के बादल ,
जो बाँधे है सिर पर
नफरतों के पहाड़,
सब पस्त हो जाए
हम यहाँ सब एक दूजे के
दोस्त हो जाएँ
दीवारें जो खड़ी हैं भेदभाव की,
सब ढह जाएँ
क्यों ना हम सब
अब तो इंसान हो जाएँ
मन है मेरा
चारों तरफ
हरियाली फैला दी जाए
जो अन्नदाता हैं
क्यों न अब तो उनकी
सुन ली जाए
हर जगह प्रेम रूपी
फूल खिला दिया जाए
मन की धूल को क्यों ना
आज ढहने दिया जाए
बारिश की बूँदों, कुछ यूँ गिरो
परिवर्तन लाओ।

❖

महामारी

महामारियाँ
शायद धर्म निरपेक्ष होती
वो नहीं देखती
धर्म-जाति, अमीर-गरीब
वो राष्ट्रीय-सीमाएँ भी नहीं जानती
उसने कभी रंग भेद नहीं किया
जिसमें बँटती हैं, बराबर बँटती हैं
हालाँकि
मैं साम्यवाद और पूँजीवाद
जैसे शब्दों को ही नकारती हूँ
और पूछती हूँ कि
जिसके पैरो में तुम
जूते नहीं दे सकते,
उसके हाथ में
बंदूक देने का अधिकार
तुम्हें किसने दिया... ?
मगर ये महामारियाँ
निश्चित ही समाजवादी होती हैं
इसमें हैरत नहीं।

❖

सी-56, वेस्ट ज्योति नगर एन्क्लेव
लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095
मोबाइल : 7859926773
ई-मेल : komal43857@gmail.com

विश्व हिंदी दिवस : एक दृष्टि

— नेहा गौड़

हर साल 10 जनवरी को पूरी दुनिया में विश्व हिंदी दिवस मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जागरुकता पैदा करना और हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करना है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में विशेष कार्यक्रम होते हैं। साथ ही देश के सरकारी दफ्तरों में हिंदी में व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं। आइये, विश्व हिंदी दिवस और हिंदी के बारे में कुछ रोचक तथ्य जानते हैं।

दुनिया भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित किया गया था। इसलिए इस दिन को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन में 30 देशों के 122 प्रतिनिधि शामिल हुए थे।

2006 के बाद से हर साल 10 जनवरी को विश्व भर में विश्व हिंदी दिवस मनाया जाता है।

पूर्व प्रधानमंत्री डॉक्टर मनमोहन सिंह ने 10 जनवरी 2006 को हर साल विश्व हिंदी दिवस के रूप मनाए जाने की घोषणा की थी।

विदेशों में भारतीय दूतावास विश्व हिंदी दिवस के मौके पर विशेष आयोजन करता है। सभी सरकारी कार्यालयों में विभिन्न विषयों पर हिंदी में कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

नॉर्वे में पहला विश्व हिंदी दिवस भारतीय दूतावास ने मनाया था। इसके बाद दूसरा और तीसरा विश्व हिंदी दिवस भारतीय नॉर्वेजीय सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम के तत्वावधान में लेखक सुरेशचन्द्र शुक्ल की अध्यक्षता में बहुत धूमधाम से मनाया गया था।

विश्व हिंदी दिवस के अलावा हर साल 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' मनाया जाता है। 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया था तभी से 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है।

अभी विश्व के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है और पूरी दुनिया में करोड़ों लोग हिंदी बोलते हैं। यही नहीं

हिंदी दुनिया भर में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली तीन भाषाओं में से एक है।

दक्षिण प्रशान्त महासागर के मेलानेशिया में फिजी नाम का एक द्वीप है। फिजी में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया है। इसे फ़िजियन हिंदी या फ़िजियन हिंदुस्तानी भी कहते हैं। यह अवधी, भोजपुरी और अन्य बोलियों का मिला-जुला रूप है।

पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, संयुक्त अरब अमीरात, युगांडा, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरीशस और साउथ अफ्रीका समेत कई देशों में हिंदी बोली जाती है।

साल 2017 में ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में पहली बार 'अच्छा', 'बड़ा दिन', 'बच्चा' और 'सूर्य नमस्कार' जैसे हिंदी शब्दों को शामिल किया गया।

विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार हिंदी विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

भारतीय भाषाओं के 70 शब्द ऑक्सफोर्ड के शब्दकोश में शामिल हैं।

पीएच.डी. शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9891205751 ई-मेल : neha.gaur90@gmail.com

दिनांक 24 दिसंबर 2020 को पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के जन्मदिवस की पूर्व संध्या पर परिषद द्वारा आयोजित "अटल स्मृति काव्योत्सव" के दौरान परिषद के अध्यक्ष महोदय पुष्प अर्पित करते हुए।

दिनांक 24 दिसंबर 2020 को परिषद द्वारा आयोजित "अटल स्मृति काव्योत्सव" के दौरान परिषद द्वारा प्रकाशित हिंदी द्विमासिक पत्रिका "गगनांचल" का लोकार्पण किया गया।

दिनांक 08 जनवरी 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय, चेन्नई द्वारा होराजन सीरीज के अंतर्गत स्थानीय संस्था श्री अरियाकुंडी म्यूजिक फाउंडेशन के संयुक्त तत्वावधान में भारतनाट्यम नृत्य प्रदर्शन।

क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता द्वारा होराजन सीरीज के अंतर्गत दिनांक 08 जनवरी 2021 को रवीन्द्रनाथ टैगोर सेंटर, कोलकाता में क्लासीकल संध्या का अयोजन।

दिनांक 08 जनवरी 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय पुणे द्वारा होराजन सीरीज के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया जिसमें गुवाहाटी से नटराज गोष्ठी द्वारा बिहु नृत्य का प्रस्तुतीकरण।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्रबुद्धे जी क्षेत्रीय सलाहकार समिति के सदस्यों से 8 जनवरी 2021 वार्तालाप करते हुए।

दिनांक 09 जनवरी 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय हैदराबाद द्वारा नए साल के अवसर पर कव्वाली का आयोजन।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, सिडनी द्वारा 9 जनवरी 2021 को "हिंदी-ऑस्ट्रेलियाई बहुसांस्कृतिक समाज का एक प्रमुख अंग" विषय पर चर्चा का आयोजन किया गया।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी को विकसित करने, आगे बढ़ाने एवं प्रचार-प्रसार करने में अग्रणी लोगों द्वारा इस परिचर्चा में भाग लिया गया जिसमें श्रीमती कुमुद मेरानी (निर्माता, एसबीएस हिंदी), श्रीमती माला मेहता ओएएम (आई ऐ बीबीवी हिंदी स्कूल के संस्थापक), श्री चार्ल्स थॉमसन (हिंदी अध्यक्ष, मीडिया व्यक्तित्व), श्रीमती रेखा राजवंशी (संस्थापक, इलासा)।

दिनांक 09 जनवरी 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय शिलांग और पर्यटन विभाग, मणिपुर मंत्रालय के संयुक्त तत्वावधान में Virtual Cherry Blossom Mao Festival का आयोजन किया गया। इस उत्सव के उद्घाटनकर्ता मणिपुर के माननीय मुख्यपमंत्री श्री एन. वीरेन तथा विशिष्ट अतिथि श्री दिनेश के. पटनायक, महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद व पर्यटन मंत्री श्री ओइनम लुखोई सिंह द्वारा इस उत्सव की अध्यक्षता की गई।

दिनांक 10 जनवरी 2021 को गांधी सेंटर, भारतीय राजदूतावास, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद नीदरलैंड द्वारा "सरहदों के पार" कवि सम्मेलन का आयोजन।

विश्व हिंदी दिवस 10 जनवरी 2021 के अवसर पर अमिकाल सेंटर फॉर कल्चरल एंड एजुकेशनल एक्सचेंज के सहयोग से दी टैगोर सेंटर, भारतीय राजदूतावास बर्लिन द्वारा हिंदी भाषा के महत्व और जर्मनी में हिंदी भाषा के प्रतिष्ठा पर चर्चा करने के लिए आयोजित वेबिनार।

हिंदी दिवस विशेष सम्बोधन : श्रीमती मालती राव वडापल्ली (निर्देशिका, दी टैगोर सेंटर, भारतीय राजदूतावास बर्लिन)

श्रीमती सुशीला शर्मा हक, हिंदी व्यांख्यादता, डॉ. मोनिका फ्रायर, हिंदी प्राध्यापिका, हुम्बोल्ड विश्वविद्यालय और श्रीमती अंजना सिंह (हिंदी व्याख्याता)

भारतीय राजदूतावास काठमांडू नेपाल के स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र में 10 जनवरी 2021 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर मिशन उप-प्रमुख श्रीमती नमग्या खम्पा के प्रमुख आतिथ्य में वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रचार प्रसार हेतु कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

दिनांक 10 जनवरी 2021 को स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केन्द्र, जोहान्सबर्ग में विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर डॉ. शंकर शेष द्वारा लिखित हिंदी नाटक "आधी रात के बाद" पर नाटक का आयोजन।

दिनांक 11 जनवरी 2021 को परिषद के सम्मेलन कक्ष में विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष में "हिंदी के वैश्विक प्रसार: नई चुनौतियाँ, नये उपाय" विषय पर आयोजित व्याख्यान में उपस्थित डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, माननीय राज्य सभा सदस्य एवं अध्यक्ष भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, श्री दिनेश के. पटनायक, महानिदेशक, भा.सां.सं.प., श्री प्रशांत पिसे, उपमहानिदेशक (संस्कृति), डॉ. आशीष कंधवे, संचालक, श्रीमती सुलक्षणा भाटिया, वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी) संयोजक एवं वक्तागण।

राष्ट्रीय युवा दिवस 2021 : 12 जनवरी 2021 भारतीय दूतावास, कुवैत द्वारा आयोजित

भारतीय राजदूत, श्री सीबी जॉर्ज कार्यक्रम को संबोधित करते हुए।

मुख्य अतिथि माननीय श्री विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने इस अवसर पर प्रथम व्याख्यान "Swami Vivekananda – An Embodiment of Indianness in Modern World" संबोधित किया तथा स्वामी विवेकानंद जी के चित्र का आभासी अनावरण किया।

डॉ. विनोद गाइकवाड़, प्रथम सचिव (संस्कृति), भारतीय दूतावास, कुवैत ने सभी को धन्यवाद प्रस्ताव से संबोधित किया।

भारतीय दूतावास, बुदापेश्त के द्वारा हिंदी दिवस इस वर्ष ऑनलाइन मनाया गया जिसमें हिंदी के प्रोफेसर और विद्वानों के द्वारा वीडियो संदेश, कविता पाठ, ऐल्ते विश्वविद्यालय और दूतावास के हिंदी कक्षाओं के द्वारा विशेष वेबिनारों का आयोजन किया गया। सुप्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया ने भी हिंद दिवस पर भारतीय अध्ययन और हिंदी विभाग को शुभकामनाएँ दी। ज्ञात हो कि ममता कालिया 2019 में बुदापेश्त आकर सांस्कृतिक केंद्र में एक सेमिनार में भी शामिल हुई थीं और यहाँ की हिंदी शिक्षा की गतिविधियों को बहुत करीब से देखा था।

हिंदी विभाग ने ऑनलाइन वेबिनार के माध्यम से हिंदी दिवस मनाया जिसमें हिंदी में कथा वचन कविता पाठ इत्यादि किया गया

भारतीय दूतावास ने बुदापेश्त के भारतीय बच्चों के लिए गत वर्ष विशेष हिंदी कक्षा की शुरुआत की है जिसमें विभिन्न प्रकार के हिंदी के कार्यक्रम और गतिविधियाँ होते हैं। हिंदी दिवस को भी इन बच्चों ने बड़े जोर शोर से मनाया जिसमें उन्होंने कविता पाठ गायन और हिंदी में वाचन करके कार्यक्रम को रोचक बनाया. अमृता शेरगिल सांस्कृतिक केंद्र की निदेशिका तनूजा शंकर ने इसका संयोजन किया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क		प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	` 500 (भारत)		
		US$ 100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	` 1200 (भारत)		
		US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय	10%		
	पुस्तक विक्रेता	25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 42 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र के दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनर्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दी पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारत य सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है, विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

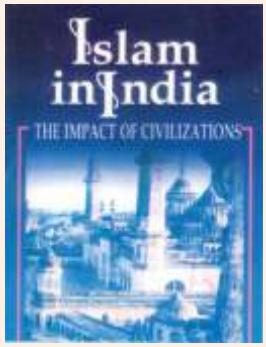

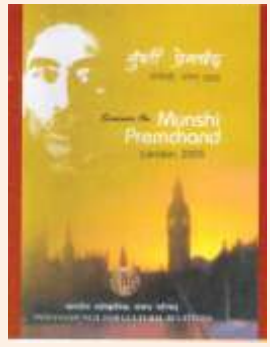

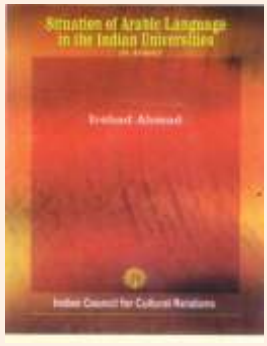

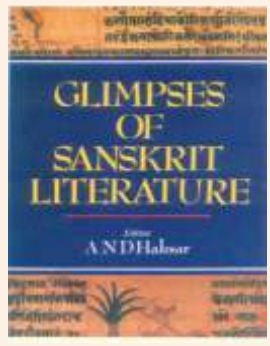

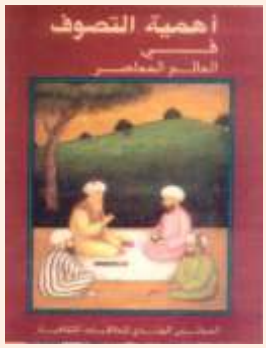
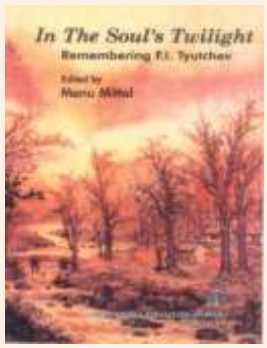

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका